आगम मनीषी
श्री तिलोकचंद जैन द्वारा
संपादित
जैनागम परिचय

जय महावीर
जय गौतमादि

जय गुरु समरथ
जय गुरु चम्पक

जय प्रकाश
जय उत्तम

श्वेताम्बर स्थानकवासी मान्य

जैन आगम परिचय

[जैन आगम साहित्य एवं प्रकीर्णक विचारणा]

आगम मनीषी
श्री त्रिलोकचन्द जी जैन
राजकोट

प्रकाशक : श्री जैनागम नवनीत प्रकाशन समिति, राजकोट

सम्पादक : आगम मनीषी श्री त्रिलोकचन्दजी जैन

प्रकाशन समय : १२।३।२०१४

प्रथम आवृत्ति : प्रत : १२००

मूल्य : अध्ययन (नि:शुल्क)
(एक से अधिक संख्या में मंगाने पर रू. ४०/– लगेगा)

प्राप्तिस्थान : **श्री त्रिलोकचन्द जैन**
ओम सिद्धि मकान
६, वैशालीनगर, रैया रोड,
राजकोट–360 007 (गुजरात)
Mo. 0 98982 39961
www.agammanishi.org / jainlibrary.org

नोट : यह पुस्तक गुजराती भाषा में भी प्रकाशित होनेवाली है, दाता के अभाव में मुल्य ४०/– रखा जायेगा)

मुद्रक :
आज़ाद प्रिन्टर्स
'नझमा', ५–सुभाषनगर, बंद गली
आम्रपाली सिनेमा के पीछे, रैया रोड़, राजकोट.
फोन : (0281) 2451864 – मो. : 099988 54253

प्रकाशकीय - संपादकीय

इस पुस्तक का संक्षिप्त नाम **जैन आगम परिचय** रखा गया है । इसमें सर्वप्रथम जिनशासन के इतिहास की झांकी, फिर जैनगमों का उद्‌भव एवं परंपरा इतिहास की झांकी तथा श्रुत आगमों का ३२, ४५, ७३, ८४ की संख्या में परिचय अनेक जानकारियों, चिंतन-अनुप्रेक्षाओं के साथ दिया है । इसके सिवाय जैन आगम किसे कहा जाय और किसे जैन आगम नहीं कहकर जैन साहित्य या जैनग्रंथ कहना, इसकी भेदरेखा यथाप्रसंग सुस्पष्ट की गई है । जैन आगम और जैन साहित्य की भेदरेखा उल्लंघन कर हर किसी को आगम शब्द से निर्देशित करने वालों को यहाँ पूर्ण सुबोध दिया गया है ।

तदनंतर ३२ आगमों का क्रमशः सुव्यवस्थित विषय परिचय एवं ऐतिहासिक परिचय दिया है । अंत में भाषाविवेक क्या होता है उसे आगमाधार से उल्लिखित किया है । ३२ आगमों की श्लोक संख्या एवं उनके उपधान तप का परिज्ञान दिया है ।

तत्पश्चात् परिशिष्ट विभाग में मुंबई से प्रकाशित **प्रबुद्ध जीवन** मासिक गुजराती से दो निबंध साभार उद्धृत किये हैं अर्थात् हिंन्दी भाषानुवाद करके संपादित किये हैं । अंत में एक लेख **प्रो. सागर मलजी जैन** का भी दिया गया है ।

जैन साहित्य एवं भिन्न-भिन्न अपेक्षा से जैन आगम कहे जाने वाले कुल १४२ आगम एवं ग्रंथों का संकलन तथा उनकी रूपरेखा दी गयी है । इन जैन साहित्यों में आये अंतिम आराधना के संलेखना संथारे की शिक्षा प्रेरणावाले २२ आगमग्रंथों का परिचय संकलन भी दिया है । १४२ और २२ आगमग्रंथों का अधिकांश संकलन, आचार्य विजयकीर्तियश सूरी के द्वारा संपादित **"श्री चतुःशरण**

प्रकीर्णकम्" की प्रस्तावना के अध्ययन से किया गया है।

आभार दर्शन ::-

इस संकलन का अक्षरशः वांचन के साथ बहुमूल्य मार्गदर्शन **मुनिश्री दीपरत्नसागर** (१८ वर्षो में ५०० से अधिक आगम ग्रंथों के अभूतपूर्व संपादक) तथा सुश्रावक विद्वान मनीषी **श्री विमल-कुमारजी** नवलखा सूरत का हमें प्राप्त हुआ । यथाशक्य इनके मार्गदर्शनों को स्वीकार किया गया है । जिससे इस प्रकाशन की सुंदरता और शोभा में अभिवृद्धि हुई है । लींबडी अजरामर संघ के मुनि **श्री प्रकाशचंद्रजी स्वामी**, राजकोट के सुश्रावक **श्री कमलेशभाई** नागोदरा एवं **प्रमोदभाई** हपाणी तथा **दिनेशभाई** महेता आदि ने भी इसका वांचन स्वाध्याय कर सुझाव भाव प्रदर्शित किये हैं । इन सभी आत्मप्रेमी महानुभावों के प्रति पुस्तक प्रकाशन के इस शुभ अवसर पर हार्दिक आभार सह अभिनंदन प्रेषित किया जाता है । श्री विमलकुमारजी नवलखा ने योग्य सूचनों के अलावा **प्राक्कथन** भी लिखकर भेजा जिसे पुस्तक में यथास्थान रखा गया है उसमें उनकी सहज आत्मीयता झलकती है।

इस पुस्तक प्रकाशन के आर्थिक सहयोग दाता का भी सादर आभार स्वीकार किया जाता है । जिनका किंचित् परिचय कवर पृष्ट-३ पर दिया है। सहयोग प्रेरक श्री पी. उत्तमचंदजी जैन, रायपुर है । पाठकों से निवेदन है कि इस संकलन में जो भी अच्छाई लगे उसे धारणकर जीवन को अलंकृत करें और लेखक की कोई भी भाषा या भाव संबंधी भूल नजर आवे उसे छद्‌मस्थता का दोष मानकर उपेक्षाभाव धारण कर अपने समभावों में रमण करें । इति शुभम् ।

आगम मनीषी
त्रिलोकचन्द जैन
राजकोट

०००००

:: प्राक्कथन ::

आप्त महापुरुषों के वचन आगम कहलाते हैं । तीर्थंकर महाप्रभु ने केवलज्ञान प्राप्त होने पर तीर्थ स्थापना की । प्रथम देशना (भगवान महावीर की दूसरी देशना) के समय कई महान आत्माएँ दीक्षा अंगीकार करती है उनमें से कुछ महान व्यक्तित्व और गणधर लब्धि संपन्न होते हैं जिन्हें गणधर पदवी दी जाती है ।

गणधर अपने अपने गणों की स्थापना कर, प्रभु वचनों को आत्मसात कर, आगम वचनों को हदयंगम कर अपने शिष्यों में ज्ञान का संचार करते हैं।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी अविरल मूसलाधार बरसात की तरह जगत के समस्त पदार्थों के रहस्य को समझाने में समर्थ होती है और गणधर उस संपूर्ण देशना को हदयंगम करने में सक्षम होते हैं ।

समस्त तीर्थंकर भगवंतों की आगमधारा में तत्व तो एक समान ही होते हैं परन्तु देशकाल के अनुसार स्थल एवं नामादि में परिवर्तन होते रहते हैं घटनाएँ अपने अपने समयानुसार बनती रहती है । नियमोपनियमों में भी परिस्थिति अनुसार परिवर्तन होता है जैसे कि चर्तुयाम, पंचयाम आदि ।

गणधरों एवं गणों की संख्या भी तीर्थंकरों की अपनी अपनी अलग-अलग होती है । जैसे- प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के ८४ गणधर थे, २४वें भगवान महावीर के ११ गणधर ही थे ।

ये गणधर अत्यंत बुद्धिशाली महापराक्रमी, मोक्षगामी तथा आगमज्ञान संचार में कुशल व्यक्तित्व के धनी होते हैं। जस का तस, विशालतम गूढमय रहस्य को अति कुशाग्र बुद्धि से हदयंगम कर शिष्यों में प्रतिपादित कर देते हैं।

यह आगमज्ञान कंठस्थ परंपरा से हदयंगम होता चला आता है यों इस बार भी भगवान महावीर से प्रतिपादित हो कर गणधरों,

अंतिम केवली जंबूस्वामी, चौदहपूर्वी आचार्य भद्रबाहु स्वामी तक अबाधगति से शिष्य प्रशिष्य परंपरा से चलता रहा । स्थूलभद्र स्वामी से आगे कुछ-कुछ विस्मृतियाँ बनती रही और कालप्रभाव से शनै शनै आगम ज्ञान शीखने वालों की प्रखरता में कमी आने लगी । यों मौखिक आदान-प्रदानरूप ज्ञान देवर्धिगणी क्षमाश्रमण तक चलता रहा ।

देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने भविष्यकाल को मध्य नजर रखते हुए आगमज्ञान को लिपिबद्ध कराने का विचार समस्त विद्वान महापुरूषों को एकत्रित कर उनके समक्ष रखा और सभी को अनुरोध कर लिपिबद्ध कराने में सहयोग दिया ।

यों जैनागम लिपीबद्ध होने लगे । फिर शनै शनै इनमें से कई लुप्त होते गये तथा कई आगमों पर टीकाएँ इत्यादि रचनाएँ समाज के समक्ष प्रसारित की गई ।

इस ज्ञानधारा को अविरल बहाने में कई मूर्धन्य मनीषियों ने अपना सर्वश्रेष्ठ योगदान दिया है, फिर भी आज विशाल आगमज्ञान हमारे समक्ष अनुपलब्ध रहा है, कई प्रतियाँ आज भी अप्रकाशित है, जो भंडारगृहों में दबी पडी है । आवश्यकता है उन महान कृतिओं को जैन विद्वान, समाज के समक्ष लाकर समाज में आगमज्ञान का प्रकाश प्रकाशित करें ।

स्थानकवासी, तेरापंथी, मंदिरमार्गी और दिगंबर सभी संप्रदायें अपनी अपनी मान्यताओं का आरोहण कर अपने अनुरूप इनका प्रकाशन करा रहे हैं । हालाँकि इनमें स्वमान्यताएँ भी व्याप्त हो रही है, फिर भी तटस्थ रूप से चिंतन करें तो जैन समाज में इन प्रकाशनों से आगमों के प्रति रुचि अवश्य बढ रही है ।

आवश्यकता है सभी संप्रदायें अपने-अपने 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' की उक्ति से उपर उठकर आगे बढे जिसमें तटस्थ भावों से आगमों का संकलन हो सके ।

स्थानकवासी समाज में आचार्यश्री अमोलकऋषिजी म.सा., आचार्यश्री घासीलालजी म.सा., आचार्य श्री आत्मारामजी म.सा.,

युवाचार्यश्री मघुकरमुनिजी म.सा. आदि अनेक पुण्यवान पुरूषों ने हिन्दी में तथा गुरूप्राण फाउन्डेशन, राजकोट से गुजराती भाषा में आगमों को प्रकाशित करवाकर समाज पर महान उपकार किया है ।

वर्तमान में भी इसी प्रकार आज जगह-जगह से आगमिक प्रकाशन निकल रहे हैं और स्थानकवासी समाज में तो सभी स्वतंत्र संप्रदायें संभवत: अपनी-अपनी परंपरा अनुसार आगम साहित्य निकालने की होड में लगी है। अगर चिंतन का स्तर ज्ञान के प्रचार-प्रसार में लगाया जाये तो यह सब कुछ समाज के हित में ही है क्योंकि इन सबसे अन्तत: आगमज्ञान का प्रसारण समाज में होगा । आगम मनीषी श्री त्रिलोक मुनिजी ने ३२ आगमों का हिन्दी सारांश एवं ३२ आगमों पर सरल प्रश्नोत्तर आदि प्रकाशित कराकर अपनी विलक्षणता का परिचय दिया है । उनमें समाज के समक्ष कुछ नवीनतम कर दिखाने की अपार क्षमता है। इसी क्षमता को मध्य नजर रखते हुए मैंने आप से ३२ आगमों का हिन्दी में सारांश प्रकाशित कराने का वर्षों पूर्व अनुरोध किया था जिसे आपने सहर्ष स्वीकार किया । जिससे विश्व में प्रथमबार ३२ आगमों का हिन्दी सारांश प्रसारित हुआ ।

यह **आगम परिचय पुस्तिका** भी उनके विशाल ज्ञानार्जन क्षमता की परिचायक है । समस्त आगमों में निहित विशाल तथ्यों को संक्षेप में समेटकर संक्षिप्त रूप से समाज के समक्ष रखना लेखक की महानता का परिचायक है ।

मैं शुभाकांक्षा करता हूँ कि आदरणीय लेखक श्री दीर्घायु बनकर समाज की अविरल सेवा करते रहें । साधु-साध्वियों को ज्ञानार्जन कराकर अपनी ज्ञानक्षमता को उजागर करते हुए अपने शेष जीवन को धर्मारूढ करते हुए उर्ध्वगामी बनें ।

नवलखा निकेतन
पीपोदरा (सूरत)

दिनांक : २६/०९/२०१३

भगवान महावीर की शासन परम्परा का इतिहास

चौवीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के शासन में आगम परम्परा एवं शासन परंपरा कुछ विशिष्ट रूप से प्रवहमान हुई है । इसका मुख्य कारण है- हुण्डावसर्पिणी काल एवं २००० वर्ष का भस्मग्रह; जो भगवान के निर्वाण समय में जन्म नक्षत्र पर लगा था । जिसका कथन वर्तमान मे **पर्यूषणा कल्प सूत्र** में है और वही कथन प्राचीन काल में नंदी सूत्र सूची में कहे **महाकल्प सूत्र** अथवा **चुल्लकल्प सूत्र** में रहा था । नंदी में कहे उन्हीं दोनों सूत्रों को साथ जोडकर तैयार किया गया पर्युषणा कल्प सूत्र विक्रम की चौदहवीं सदी के आस-पास अस्तित्व में आया है । इसी कारण उस समय के पूर्व के मलयगिरि आचार्य तक के आगम व्याख्याकारों की व्याख्या में या उनके ग्रंथों में पर्युषणा कल्प सूत्र के नाम का किसी प्रकार का उल्लेख नहीं है । कल्पसूत्र पर स्वतंत्र व्याख्याएँ भी विक्रम की चौदहवीं सदी में या उसके बाद ही बनने लगी है ।

भगवान महावीर का विशिष्ट शासन ::

तेवीस तीर्थंकरों का शासन बिना किसी छेद-भेद के, बिना उत्थान-पतन के, एक रूप से चलता आता है । महाविदेह क्षेत्र में भी हजारों लाखों वर्षों तक तीर्थंकरों का शासन छेदन-भेदन के बिना एक रूप से श्रंखलाबद्ध चलता रहता है । (कुछ तीर्थंकरों (७) के शासन में विच्छेद रूप अछेरा हुआ है तो भी छेद-भेद एवं उत्थान पतन उसे नहीं कहा जा सकता ।) किंतु भगवान महावीर स्वामी का शासन प्रारंभ से अर्थात् उनके जीवन काल से ही छेदन-भेदन वाला चला है जिसमें आजतक भी समय-समय पर कुछ न कुछ छेदन- भेदन चलता जा रहा है ।

गोशालक ::

भगवान के शासन की शरूआत से ही गोशालक तीर्थंकर रूप में प्रसिद्धि में आया और लाखों जैनी उसने अपने मत प्रमाणे

अलग बनाये । जिनकी संख्या अपेक्षा से भगवान के श्रावकों से अधिक थी । फिर मरने के पूर्व भी उस गौशालक ने सर्वज्ञ सर्वदशी, ३४ अतिशय युक्त भगवान के समक्ष ऐसा तांडव उदंगल खडा किया कि आवेश और आक्रोश में अपनी बहुसंख्यक मंडली के साथ भगवान के समवसरण में पहुँचकर भगवान के सामने बेतुकी निरर्थक कई प्रकार की झूठी बकवास रखी । दो श्रमण श्रेष्ठों को सब के देखते ही देखते तेजोलेश्या से भस्म कर दिया । वे शुभ परिणामों में काल करके देवलोक में गये और आराधक एक भवावतारी बने । उस गौशालक के उपद्रव निमित्त तीर्थंकर स्वयं छः महिना अस्वस्थ रहे। लोगों में अफवाहें चली कि जैनो के दो तीर्थंकर आपस में झगडे और एक कहे तूँ छः महिने में मर जायेगा, दूसरा कहे तूँ सात दिन में मर जायेगा । वास्तव में सात दिन में गौशालक अत्यंत क्लेश पाकर मर गया और भगवान महावीर स्वामी ६ मास बाद पूर्ण स्वस्थ पूर्ववत् बने । उसके बाद १५-१/२ साढे पंद्रह वर्ष सुखपूर्वक सर्वज्ञ-तीर्थंकर अवस्था में विचरे ।

जमाली ::

भगवान के द्वारा दीक्षित महापुण्यशाली ५०० पुरुषों के साथ दीक्षा लेने वाला खुद का संसारी अति निकट का रिस्तेवाला (जंवाई एवं भाणजा- ***कथाओं में वर्णन है)*** जमाली अणगार केवली नहीं होते हुए भी अपने को भगवान के समक्ष केवली होने की सेखी मारने लगा और भगवान एवं गणधर गौतम स्वामी के द्वारा भी सही रस्ते नहीं लगा एवं गलत मान्यता और मिथात्व में आकर उसका अलग पंथ चोथे आरे में चलता रहा ।

निह्नव ::

भगवान के निर्वाण बाद भी कितने निन्हव जिनशासन में छोटी छोटी बातों को लेकर होते रहे । तीर्थंकर गणधर की मौजूदगी में भी जमाली छोटी सी बात में उलझा रहा तो फिर बाद के शासन में अपने अहं में अपनी तानने वालों को कौन कैसे समझावें ।

दिगंबर ::

निह्नवों की संख्या सात प्रसिद्ध हुई । उसके उपरांत आगम लेखन के बाद वीर निर्वाण १००० वर्ष बाद जैन दिगंबर मत नया खडा हुआ । नये ग्रंथ बनाये । जिनागमों को अमान्य किया । और एकांत नग्नत्व से ही साधुपन और मोक्ष होना कहने लगे । वस्त्र का खंडन और वस्त्र बिना रह नहीं सकने के कारण स्त्री मुक्ति का निषेध मनमाने शरू किया ।

प्रश्न- दिगंबर तो देवर्धिगणि के शास्त्र लेखन के पहले हो गये थे ऐसी परंपरा सुनने जानने में आती है तो १००० वर्ष बाद का कथन क्या उचित है ? **समाधान-** यह एक वर्त्तमान प्रवाह है जो देवर्द्धि के बाद कई झूठ के साथ बनता चलता रहा है । कोई भी अपने को प्राचीन बताने के लिये, सिद्ध करने के लिये कुछ भी झूठ या प्रपंच करने लग गये थे ।

वास्तव में समझना यह है कि देवर्द्धि के आगम लेखन संकलन पूर्व दिगंबर मत प्रचलन या आग्रहयुक्त परंपरा चली होती और उनके ग्रंथो में श्वेतांबर धर्म का खंडन और खुद का मंडन प्रारंभ हो गया होता तो शास्त्र लेखन संकलन एवं नये शास्त्र संपादन में श्वेतांबर क्यों पीछे रहते, वे भी, दिगंबरों का खंडन शास्त्रों में घुसाते और नये शास्त्रों में उन्हें जडमूल से उखाडने का लेखन करते, यह छद्मस्थ मानव स्वभाव रुक नहीं सकता । किंतु देवर्धि के संकलन संपादन, लेखन से आये आज के उपलब्ध आगमों में दिगंबरों का कहीं भी खंडन होवे ऐसी एक लाइन भी नहीं है । उल्टे में अचेल धर्म की मुक्त दिल से प्रशंसा प्ररूपणा इन शास्त्रो में है । इससे स्पष्ट है कि श्वेतांबर के शास्त्र मूल शासन परंपरा से प्राप्त प्राचीन एवं एकांत के आग्रह, दुराग्रह, मताग्रह की गंध से रहित है । इसीलिये ऐसा कथन किया गया कि आगम लेखन संकलन के बाद दिगंबर धर्म का आग्रह चला है । अतः उपलब्ध खोटे इतिहास तो अपने को प्राचीन होने का खोटा

सिक्का लगवाने की करामातों से बने बनाये होने में कोई आश्चर्य नहीं है । मध्यकाल में ऐसी कई करामातें हुई है । खोटे-खोटे शिलालेख, मूर्तियाँ भी बना बना कर जमीन में गाड़ दी गई हैं ।

मूर्तिपूजक ::

दिगंबरों के बाद श्वेतांबरो में समय प्रभाव से शिथिलाचार एवं लोकेषणा के पनपने से मूर्ति मंदिर धर्म समुत्पन्न किया गया जो भस्मग्रह के प्रभाव के कारण पूर्णशिखर पर पहुँचता गया है । फिर भी ज्ञानी ध्यानी, प्रकांड विद्वान संत, आचार्य समय-समय पर होते रहे हैं । जिन्होंने आगम सेवा, जिनशासन सेवा प्रभावना अपनी-अपनी सीमा में अवश्य करी है । उसी से उतरता-चड़ता, गिरता-पड़ता जिन शासन वीर निर्वाण के २००० वर्ष तक आगम भाषा में अपेक्षा से अवनतोवनत चलता रहा अर्थात् कुल मिलाकर हायमान अवस्था में उत्तरोतर बढता रहा ।

लोकाशाह :: क्रियोद्धार ::

वीर निर्वाण २००१ में उन्ही शिथिल संत वर्गों के लोकागच्छ नामक गच्छ में से कुछ संत भस्मग्रह के समाप्ति निमित्त आगे आये और क्रियोद्धार प्रारंभ किया । अनेक संकटों से परिपूर्ण वह क्रियोद्धार पनपता बढता चला । कुछ ही वर्षो में १५ लाख जैनों में से ८ लाख जैनों ने उस क्रियोद्धार में अपनी सहमती दिखाई । यही प्रवाह, वही समाज, चतुर्विध संघ बनकर स्थानक वासी धर्म के नाम से प्रख्यात हुआ । **[मंदिर मार्गियों के लोंकागच्छ के अपने स्वतंत्र मंदिर एवं उपाश्रय भी थे उसी गच्छ में से लक्ष्मीविजयजी म.सा. आदि दस संत की टुकडी ने यथासमय पुनः नई दीक्षा लेकर क्रियोद्धार-जिनशासन का पुनरुत्थान किया ।]**

स्थानकवासी धर्म ::

ऐसे समय में अवशेष श्वेतांबर मूर्तिपूजक संत समाज ने भी अपने संगठन के प्रयत्न किये कुछ आचार को भी उन्नत बनाया ।

साथ-साथ मंत्र-तंत्र बल से विरोध भी किया किंतु कल्पसूत्र कथित २००० वर्ष के भस्मग्रह हटने के कारण शासन उन्नतोन्नत होता रुका नहीं। स्थानकवासी साधु-साध्वी संख्या भी बढती गई । एक लोकाशाह (लोकागच्छीय उत्तम संत पुरुष) खडे होने पर उसके सहयोगी अनेक क्रांतिकारी वीर लोकाशाह रूप श्रमण आदि बनते गये और जिनशासन उन्नतोन्नत होता रहा ।

पुनः उत्थान पतन के चक्र में ::

सैकडों वर्ष के इस उत्थान के बाद हुंडावसर्पिणी के पाँचवें आरे के कारण पुनः उत्थान-पतन, चढाव-उतार चलते-चलते आज जिन-शासन में १४ हजार जैन संत सतीजी एवं लाखों करोड़ों (५ करोड) जनता रूप जैन समाज अपने अपने दायरे-संप्रदाय में बढता जा रहा है साथ ही वक्र जड़ता की बुद्धि के कारण कुछ छिन्न-भिन्न, संप्रदायभेद, फूट-कलह, राग-द्वेष, मेरे तेरे, आपसी मन मुटावों आदि अनगिनत ग्रहों के साथ भी ज्ञानदर्शन चारित्र तथा तप में चहुँ ओर सापेक्ष (स्थूल दृष्टि से) प्रगति भी होती जा रही है ।

वर्तमान जिनशासन की सत्य दशा ::

एकता के अभाव में जहाँ महावीर जयंती, पर्यूषणा-संवत्सरी भी अलग-अलग मनाते जा रहे हैं; शिथिलाचार, लोकप्रवाहादि दूषण बढते ही जा रहे है एवं पुनः आडंबर, आरंभ-समारंभ, मिथ्या प्रवृतिएँ बढती ही जा रही है । यों धर्म के रूप को विकृत बनाते हुए भी जिनशासन के एवं जिनधर्म के प्रति जनता में एवं व्यक्ति में अतिशय भक्ति की वृद्धि आज भी शिखर पर चढ रही है । लोग धर्म के नाम पर या धर्मगुरुओं के नाम पर धन को समर्पण करने में महादानवीर बनते देखे जाते है । तो तपस्याओं में भी अनेक प्रकार से सूरवीरता सामने आ रही है । ज्ञान प्रचार भी सभी संघो में अनहद होता जा रहा है । अनेक मुमुक्षु आत्माएँ जवान, बालक, वृद्ध संसार त्याग कर आश्चर्य उत्पन्न करे जैसी साधना के शिखर सर करते देखे

जा रहें है अंत में हम देख रहे है कि आज के भौतिकवाद के प्रचार के जमाने में इन्द्रिय गुलामी एवं शरीर मोह आसक्ति के इस जमाने में **आजीवन अनशन** तो पचासों सेकडों वर्षों के रिकार्ड को तोडते जा रहा है ।

कोई दीक्षा लेते ही भयंकर गर्मी के दिनों में ६७ दिन के संथारे की आराधना कर रहे हैं, कोई ९३ तिरानवे दिन के संथारे (जिसमें ९० दिन चौविहार और बीस वर्ष की दीक्षा) में आत्मकल्याण सर कर रहे हैं । इस तरह साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका चतुर्विध संघ में पूरे हिंदुस्तान में संथारे, पंडितमरण का दौर भी बहुत ही जोर शोर से बढता जा रहा है । कहीं कहीं तो संथारे की लडी(एक न एक संथारा चालु) चलते रहने का भी सुनने में आ रहा है ।(कच्छ के लोगो में)

उपसंहार :: २१००० वर्ष शासन ::

इस तरह भगवान का शासन आज फूट, फजीति, राग–द्वेष, सीमातीत शिथिलाचार के चलते भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप एवं संथारे की साधना तक में बढते भी जा रहा है । ज्ञान आराधाना में भी आज ३२ आगम या अनेक आगम कंठस्थ करने वाले भी प्रकाश में आ रहे हैं । सैकडों जगह ज्ञान शिविर हो रहे हैं । कुल मिलाकर इस नैतिक पतन तथा भौतिकवाद के बोलबाले वाले युग में भी अनेकों **धर्मवीर** आज भी समय समय जानने सुनने पढने में आ रहे हैं । यों गिरते पडते, चढते भगवान का यह शासन कुल २१००० वर्ष चलेगा ।

:: भगवान महावीर की आगम पर परा का इतिहास ::

तीर्थंकरों के छद्मस्थ काल की साधना पूर्ण होने पर केवलज्ञान एवं केवलदर्शन समुत्पन्न होता है । उसी दिन की प्रथम देशना (उपदेश–प्रवचन) में साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ की स्थापना हो जाती है अर्थात् उनके प्रथम प्रवचन में साधु-साध्वियाँ दीक्षित हो जाती है एवं श्रावक श्राविका भी अणुव्रतधारी हो जाते

है इस प्रकार चारों संघों का प्रार भ हो जाता है । भरत, ऐरावत, महाविदेह सभी क्षेत्रों के सभी तीर्थंकरों के यही व्यवस्था है । प्रथम दिन के दीक्षित उन श्रमणों में ही कुछ गणधर लब्धि की पूर्वभविक सत्ता वाले साधक होते हैं जिन्हें दीक्षा–महाव्रत प्रत्याख्यान के पश्चात् स्वत: पूर्वभविक द्वादशांग ज्ञान उपलब्ध हो जाता है । उनकी संख्या निश्चित नहीं होती है । वे सभी गणधर कहे जाते हैं। तीर्थंकर भगवान की आज्ञा से वे सभी गणधर मिलकर अपने उपलब्ध ज्ञान के आधार से सर्वसम्मत अपने तीर्थंकर के शासन अनुरूप द्वादशांगी की रचना संकलन या संपादन करते हैं । उसके पूर्व षडावश्यक रूप आवश्यक सूत्र भी संपादित किया जाता है । उसी दिन से श्रमणों को यथासमय आवश्यक सूत्र सिखाया जाता है। क्यों कि उसी के आधार से उभयकाल प्रतिक्रमण जीवनभर किया जाता है । यह आवश्यक सूत्र सहित द्वादशांगी गणधर रचित कही जाती है । इसमें व्यक्तिगत नाम किसी का नहीं होता है । यह संपूर्ण द्वादशांगी दो पाट तक सभी तीर्थंकरों के शासन में मौखिक चलती है। फिर १२वाँ दृष्टिवाद अंग का देशविच्छेद होता है जिससे शेष ११ अंग परिपूर्ण और दृष्टिवाद अपूर्ण पूरे शासन तक कंठस्थ पर परा में चलता है ।

भगवान महावीर की विशिष्ट आगम पर परा ::

सर्व प्रथम तो भगवान महावीर स्वामी की प्रथम देशना खाली गई अर्थात् प्रथम उपदेश में एक भी साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविका नहीं बना, व्रतप्रत्याख्यान नहीं हुए । तीर्थस्थापना नहीं हुई । चतुर्विध संघ की स्थापना भी नहीं हुई । गणधर श्रमणों के अभाव में आगम श्रुत द्वादशांगी रचना भी प्रथम दिन नहीं हुई । केवलज्ञान प्राप्ति के दूसरे दिन मानव मेदनी युक्त देव आदि १२ प्रकार की पर्षदा जमी । श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका आदि महाव्रत–अणुव्रत धारी बने ।

गौतम आदि अणगारों को भगवान ने सर्व प्रथम छ काया स्वरूप एवं महाव्रतों का स्वरूप समझाया, ऐसा आचारांग सूत्र में स्पष्ट

कथन है । त्रिपदी अर्थात् **उपन्ने, विगमे, धुवे** वगैरह के कथन आगम में नहीं है और आगम सम्मत भी नहीं है । वह पर परा दूसरों की नकल से ग्रंथो में आई है, उसकी सत्यता आगम से सिद्ध नहीं होती है ।

भगवान के उपदेश के एवं श्रमणों की दीक्षा विधि के अनंतर सैकडों श्रमणों में से गौतम इन्द्रभूति आदि ११ आत्माओं को गणधर लब्धि एवं पूर्वभविक, द्वादशांगी श्रुतज्ञान क्षयोपशमजन्य उत्पन्न हुआ। उसी के आधार से एवं भगवान की आज्ञा से ११ ही गणधरों ने मिलकर भगवान महावीर २४ वें तीर्थंकर के शासन के अनुरूप संशोधन संपादन कर द्वादशांगी की संकलना रचना स्थापित की । छः आवश्यक युक्त आवश्यक सूत्र सहित शिष्यों को उसी दिन से आवश्यक सूत्र आदि सिखाना व्यवस्थित प्रार भ हुआ। सात दिन बाद यथासमय सभी की बडी दीक्षा संपन्न हुई । ग्यारह गणधर नव गणों में नव विभागों में शिष्यों को श्रुतज्ञान देने लगे । इस तरह भगवान के शासन में श्रुतज्ञान कंठस्थ पर परा से प्रार भ हुआ ।

ग्यारह अंगो का अध्ययन साधु-साध्वी समस्त दीक्षितों को कंठस्थ करना आवश्यक होता था अर्थात् छोटी उम्र में (अत्यल्प दीक्षा पर्याय से) मुक्त होने वालों के सिवाय प्रायः सभी राजा-राणी शेठ जवान वृद्ध बालक साधु-साध्वी ११ अंग का ज्ञान कंठस्थ करते थे और दिन रात में यथासमय उसकी स्वाध्याय आदि जीवनभर करते रहते थे । बारहवाँ दृष्टिवाद अंग केवल विशिष्ट श्रमणों को ही अध्ययन कराया जाता था । कारण कि उसके अध्ययन में भी अनेक विशिष्ट साधनाएं एवं क्लिष्ट भंग जाल आदि रहते हैं इत्यादि अन्य भी संभावित कारणों से अत्यल्प साधक ही इसका अध्ययन कर पाते थे या योग्यता से कराया जाता था । यथा-अंतगड सूत्र में मुक्त होने वाले ९० जीवों का दीक्षित होने का वर्णन है जिसमें राजकुमार, राणियाँ, सेठ-सेठाणियाँ, बाल युवा आदि साधक है । गजसुकुमाल एवं अर्जुन माली के कम दीक्षा पर्याय के कारण श्रुतज्ञान का कथन नहीं है । शेष

में १२ अंगवाले २२ और ग्यारह अंग के अध्ययन वाले ज्यादा ६६+२२=८८ कहे गये हैं । यों भगवान महावीर के शासन काल में ५०००० पचास हजार कुल साधु-साध्वी में ३००ही साधु १२ अंगशास्त्रों के धारक हुए । – ***समवायांग ।*** एवं हजारों साधु-साध्वी ११ अंगकंठस्थ धारण करने वाले हुए । तेवीसवें पार्श्वनाथ भगवान के शासन में ३५० श्रमण द्वादशांगी-बारह अंगो का अध्ययन करने वाले हुए । बारवें अंग में ही १४ पूर्वो का ज्ञान होता है जो उस अंग का विशाल श्रुत विभाग होने से १२ अंग सूत्रों के धारक और चौदह पूर्व के पाठी ऐसा दोनों प्रकार से कथन होता है, दोनों का भाव एक ही होता है ।

वीर निर्वाण के बाद श्रुतज्ञान पर परा ::

जिस तरह भारत देश का संविधान किसी व्यक्तिगत नाम से नहीं होता है अर्थात् इसे गांधी का संविधान या नेहरु आदि का संविधान या कोंग्रेस का संविधान या जनतापार्टी का संविधान नहीं कहा जाता है वह भारत का संविधान ही कहलाता है । इसी तरह जिनशासन के आगम, जैनागम और गणधरकृत ही कहे जाते है नाम निर्देश करना आगमिक सही पर परा नहीं है । फिर भी भगवान के बाद गणधर सुधर्मा की द्वादशांगी चालू रही ऐसा कथन प्राप्त होता है । किंतु वास्तव में गणधरकृत ही कहे जाने चाहिये । आगम में जो सुधर्मा जम्बू के नाम शरू में आते है वे उत्थानिकाएँ मूल आगम रचनाकाल से नहीं होकर देवर्धिगणी के संपादन संशोधन के समय की है । इतिहास में उसका सूचन नहीं होने से हमें कई प्रकार की भ्रमणाएं पैदा होती है ।

आचारांग सूत्र, सूयगडांग सूत्र के शरूआत में एवं ठाणांग, समवायांग, तीन छेद सूत्रों के आदि(प्रथम)सूत्र में किसी प्रकार से ऐसी उत्थानिकाएँ नहीं है । सीधे ही सूत्रविषय प्रार भ हो जाते हैं । यों उत्थानिका बिना ही अनेक शास्त्र प्रार भ होते है कुछेक शास्त्र में ही उत्थानिका प्रार भ में या कोई अध्ययनों में पीछे से बनाई गई है

और सुधर्मा जम्बू का नाम भी कहीं कहीं प्रार भ में इसीलिये आता है । खुद सुधर्मा गणधर अपने और जम्बू के नाम से एक दो पेरा का संवाद नहीं जोड सकते । तथा मौलिक सिद्धांत यही याद रखना चाहिये कि आगम द्वादशांगी सभी गणधर सामुहिक रचना करते हैं। गणधरों के नामयुक्त जो भी पाठ आज उपलब्ध होते है वे बाद के या लेखन काल के संपादन समझना चाहिये । आगम लेखन भी अनेक आचार्यों की मौजुदगी में और सबकी सम्मति से ही देवर्धिगणी ने करवाया था । एक पूर्वधारी अनेक प्रमाणिक पुरुष आचार्य उस समय हाजिर थे ।

११ गणधरों के मोक्ष जाने के बाद प्रभव स्वामी, शय्यंभव स्वामी, यशोभद्र स्वामी, संभूतिविजय, भद्रबाहु स्वामी तक वीरनिर्वाण २१९ वर्ष तक १४ पूर्वज्ञान चला । उसके बाद महागिरी, सुहस्ती आदि वज्रस्वामी तक अर्थात् वीरनिर्वाण ५४८ तक दस पूर्व का ज्ञान चला। उसके बाद आर्य रक्षित स्वामी **साढ़े नव पूर्वी** हुए । उसके बाद अनेक पूर्वो के धारक नंदिलाचार्य, नागहस्ती, स्कंदिलाचार्य, हिमवंताचार्य, नागार्जुन, भूतदिन्नाचार्य आदि पूर्वधर हुए । अंत में वीर निर्वाण ९०० साधिक १००० वर्ष पूर्व तक दुष्यगणि, देवर्धिगणि क्षमाश्रमण एक पूर्वधारी हुए । इस प्रकार भगवती सूत्र शतक-२०, उद्देशक-८ अनुसार पूर्वों का ज्ञान अर्थात् १२वाँ अंग अंश रूप में १००० वर्ष तक चला । उसी भगवती के पाठ अनुसार पूर्वज्ञान के विच्छेद होने की सूचना को लक्ष्य में रखकर देवर्धिगणी के सानिध्य से अनेक आचार्यों ने मिलकर ११ अंग शास्त्रों का लेखन तथा एक पूर्व के ज्ञान में से यथासंभव अनेक आगम (अंगबाह्य रूप में) संपादित करवाये तथा उपलब्ध ११ अंग सूत्रों के लेखन में भी भविष्य काल का विचार रखकर तथा लेखन पर परा का ध्यान कर सुधारा-वधारा, विभाजन, परिवर्तन आदि भी उस समय के बहुश्रुत श्रमण आचार्यों की सम्मति से करके आगमों का संपादन किया कराया गया । तथा

जो कुछ भी सर्व सम्मति से करना था वह व्यवस्थापन किया पर तु उसकी कुछ भी लेखित सूचना कहीं नहीं करी कि इस समय यहाँ ऐसा-ऐसा सुधारा संशोधन किया गया । इसी कारण बाद के आज तक के चिंतकों को उन परिवर्तनों के विषय में चिंतन चलता रहा है । जिससे कोई सुधारक देवर्धि के पूर्व कभी कभी होना आदि कल्पना करते है फिर भी कितने ही प्रश्न आगम संबंध में असमाधित रहे हैं । पर तु सारे संशोधन परिवर्तनों के संबंध में देवर्धि के पूर्व नहीं जाकर उनके लेखन संपादन समय में ही चिंतन को स्थिर कर दें तो प्राय: सभी प्रश्न हल हो जाते हैं । तदनंतर कुछेक प्रश्न ओर भी रह जाय तो उन्हें लेखन पर परा के आजतक के १५०० वर्षों में होने वाले लिपिदोष आदि स्वीकारने पर अच्छा सारा समाधान हो जाता है और बहुश्रुत ज्ञानी पूर्वाचार्यों पर कोई भी दोष का आक्षेप भी नहीं घडना पडता है ।

आगम कंठस्थ पर परा का महात्म्य ::

जिनशासन में प्रार भ से द्वादशांगी कंठस्थ पर परा शिष्य प्रशिष्यों में व्यवस्थित चली आई है । उसी कारण पूर्वों के अध्येता महावीर के शासन में ३०० ही उत्कृष्ट थे तो भी २१९ वर्ष तक १४ पूर्व ज्ञान स्थूलभद्र तक चला । ५४८ वर्ष तक १० पूर्वों का ज्ञान वज्र स्वामी तक चला और अंत में १००० वर्ष एक पूर्व का ज्ञान अर्थात् १२वाँ अंग चला । ११ अंग के कंठस्थ धारक तो भगवान के शासन में हजारों साधु-साध्वी थे और वह पर परा भी व्यवस्थित देवर्धिगणी तक चली आई थी क्यों कि ३०० पूर्वधर और हजारों ११ अंगधारक का अनुपात देखकर समझा जा सकता है कि ११अंग का संपूर्ण व्यवस्थित ज्ञान तो देवर्धिगणी तक कंठस्थ पर परा में चलते रहने में कोई दिक्कत आने का प्रश्न ही नहीं हो सकता । क्यों कि हजारों साधु-साध्वियों का रात्रि में स्वाध्याय का मुख्य कार्य परस्पर चलता ही रहा था । अत: जो लोग गतानुगतिक कह देते हैं कि (१) ग्यारह अंग भी देवर्धिगणी तक बहुत घट गये थे (२) संपूर्ण ११ अंग विच्छेद हो गये थे (दिगंबरों

का कथन) (३) भगवान के समय के वास्तविक अंग आगम रहे ही नहीं । आचारांग प्रथम वीर निर्वाण दूसरी शताब्दि का लगता है, द्वितीय आचारांग वीर निर्वाण पाँचवीं सदी का लगता है, ठाणांग समवायांग वीरनिर्वाण तीसरी चौथी सदी का लगता है; यों विद्वान कहे जाने वाले ज्ञानी पंडित ११ ही अंगों को मनमाने चिंतन से कब कब किसके द्वारा १००० वर्षों के बीच में ही गणधरों के मिटा कर अपना बनाना बताते हैं । ऐसा कहने वाले बीच के आचार्यों द्वारा तीर्थंकर गणधरों की आशातना करवाना घडते हैं । वास्तव में गणधर कृत शास्त्र ग्यारह अंग हजारों साधु-साध्वी में कंठस्थ पर परा व्यवस्थित चलती रहने से कोई भी क्यों उन शास्त्रों में छेड छाड करेगा ? अत: पंडितों की ये कल्पनाएँ कंठस्थ पर परा के अनुभव हीन ज्ञान का खोटा प्रतिफल मात्र है एवं अनुभव हीन चिंतन का भ्रम मात्र है । क्यों कि उन पंडितों ने जिंदगी में कभी ग्यारह अंग कंठस्थ कर वर्षों स्वाध्याय करने का अनुभव किया ही नहीं है तो वे क्या जाने कंठस्थ ज्ञान पर परा का महात्म्य ।

दिगंबरों का कथन ११ अंग विच्छेद जाने का और पूर्वज्ञान बचे रह जाने का कथन तो महामूर्खता पूर्ण और भोले भक्तों को उल्लू बनाने मात्र की कुबुध ही समझ सकते हैं । जो इतना भी नहीं सोच सकते कि ३०० पूर्व ज्ञानियों की पर परा तो उन्हें मिल जाय और हजारों ११ अंग धारकों की पर परा पूर्वज्ञान से पहले विछिन्न हो जाय, ऐसा कथन उनका खुद जानबूझकर महा मोह के उदय में महा-मूर्खता भरा होता है। अत: पाठक यह निर्विवाद समझलें कि हजारों साधु-साध्वियों की कंठस्थ पर परा में चलने वाले ग्यारह अंग का ज्ञान घट भी नहीं सकता और दिगंबरों की उत्पत्ति तक या देवर्द्धिगणी तक विनष्ट-विछिन्न भी नहीं हो सकता । और आज जो भी अंगसूत्र के स्वरूप में प्रश्न खड़े होते हैं उन्हें देवर्द्धिगणी के लेखन समय के सुधार-वधार समझें तथा उसके बाद के १५०० वर्ष के लहियों आदि के

लेखन दोष का परिणाम समझकर समाधान प्राप्त कर लेवें ।

आगम कितने ::

देवर्धिगणी के लेखन समय में नंदीसूत्र की रचना भी हुई है उसमें श्रुतज्ञान के वर्णन में ग्यारह अंग के सिवाय उस समय जितने शास्त्रों का नया संपादन नामकरण हुआ उनकी सूची(लिस्ट) नंदी सूत्र में दी गई है । जिसकी कुल संख्या आवश्यक सूत्र और अंगसूत्र मिलकर ७३ तिहत्तर आगम संख्या होती है । उनके नाम आगे स्वतंत्र दिये जायेंगे । वर्तमान में ३२ और ४५ आगम मानने की अपनी अपनी व्यक्तिगत पर परा मात्र है । उसका कोई भी ठोस प्रमाण नहीं है और किसी को भी एकांत सत्य कहना भी भूल भरा ही सिद्ध होता है । अत: सामान्यज्ञानी बुद्धिमानों को संख्या के आग्रह दुराग्रह में नहीं पडना चाहिये । क्यों कि नंदी सूत्र में संख्या नहीं कही है, नाम मात्र गिनाये है । संख्या की पर परा को सापेक्ष कल्पित पर परा मात्र ही कहना चाहिये । क्यों कि नंदी सूत्र में नाम दर्शाये गये कितने ही आगम उपलब्ध है और उनमें कोई भी खराबी भी नहीं है फिर भी ३२ और ४५ में उनकी गिनती नहीं है । और कोई शास्त्र, अलग शास्त्र के अस्तित्व रूप में है भी नहीं, उनकों भी ३२ और ४५ में आँख मीचकर गिनते जा रहे है । क्यों कि कुछ कुछ प्रवाह ऐसे होते है जो भेड़ चाल से चले ही जाते रहते है । उसमें किसी का दिमाग जाता ही नहीं है और जावे तो भी रूढ़ पर परा और बहुमति सर्वमति के आगे सच्चाई कुछ चले भी नहीं । ऐसा ही समय का प्रभाव है। उदाहरण के रूप में चंद्रसूर्यप्रज्ञप्ति दोनों शास्त्र अलग-अलग है ही नहीं, एक ही शास्त्र है । फिर भी ३२ और ४५ में दो ही गिनते जा रहे हैं । निरयावलिकादि एक शास्त्र है, पाँच वर्ग उस एक शास्त्र के हैं, ऐसा मूलपाठ में लिखा है; सभी पढते देखते भी आंख मीचकर पांच शास्त्र गिन कर ही ३२ और ४५ की संख्या रटते जा रहे है परिवर्तन संशोधन करने की कोई गुंजाइश ही नहीं है । कुछ समय पूर्व ८४

आगम भी अपेक्षा से माने जाते थे । यों आगम मानने की तीन पर परा = ८४, ४५, ३२ है, तीनों व्यक्तिगत समुदाय पर परा है । नंदी सूत्र की आगम सूची में ७३ आगमों के नाम है । ये चारों सूची आगे दी जायेगी ।

आगमों की व्याख्याएँ ::

देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय आगमों का लेखन मात्र हुआ । उन आगमों का अर्थ परमार्थ शब्दार्थ आदि का ज्ञान कंठस्थ पर परा में ही रहा । एक बार लेखन कार्य चल गया तो वह लेखन पर परा का मानस आगे से आगे बढ़ता ही रहा । बाद में होने वाले अनेक बहुश्रुत आचार्योंने यथासमय शास्त्रों की व्याख्याओं द्वारा सूत्रों के अर्थ परमार्थ शब्दार्थ आदि को स्पष्ट करते हुए लेखन पर परा को आगे से आगे चलाया । वे व्याख्याएँ मुख्यत: पाँच प्रकार की हुई जो आज उपलब्ध है । इन पाँच प्राचीन व्याख्याओं की भाषा प्राकृत संस्कृत तक गद्य पद्य में सीमित रही । उसके बाद अनेक नामों से व्याख्याएँ बनी जो मुख्यत: संस्कृत भाषा में और उसके बाद वर्तमान युग में हिंदी अंग्रेजी गुजराती आदि भाषाओं में व्याख्याएँ लिखित एवं प्रकाशित हुई है ।

:: आगम साहित्य विभाजन एवं क्रमिक व्याख्याएँ ::

आगम :- सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवंतो की वाणी जिसमें संग्रहित हो, जो गणधरों द्वारा अथवा पूर्वधर प्रामाणिक पुरुषों द्वारा गणधरों के आगमाधार से रचित संकलित संपादित हो वे आगम कहे जाते है। ऐसे आगमों के विभाजन भिन्न-भिन्न प्रकार से है । (१) गणधरों की पर परानुसार आवश्यक सूत्र सहित १२ अंग रूप एक ही विभाजन रहता है । जो पूर्व के २३ तीर्थंकर एवं महाविदेह क्षेत्र में होता है । भगवान महावीर के शासन में यह विभाजन देवर्द्धिगणि के लेखन पूर्व तक चला । उसके बाद नंदीसूत्र में आगम विभाजन आया है यथा- (१) अंग प्रविष्ट और (२) अंग बाह्य । अंगप्रविष्ट में १२ अंग और अंगबाह्य के दो विभाजन कहे हैं- १. कालिक शास्त्र २. उत्कालिक

शास्त्र । (प्रकीर्णक नामक कोई भेद विभाग नहीं किया है) अंगबाह्य शास्त्रों की संख्या नहीं कही है नाम ही गिनाये हैं । इसके कारण नामों में कुछ विकृतियाँ-वृद्धि पीछे से होना संभव है । नंदी सूत्र के विभाजन में अंग सूत्र गणधर रचित है और अंगबाह्य सूत्र उन १२ अंग सूत्रों के आधार से बहुश्रुत पूर्वधर देवर्द्धिगणी आदि द्वारा रचित, संपादित, संकलित है । यों अंग शास्त्र सहित ७२-७३ ही आगम देवर्द्धिगणी के लेखन समय पूर्वधरों के द्वारा कुछ कुछ विशिष्ट संपादित संशोधित संकलित संग्रहित एवं नूतनीकृत हुए है, ऐसा उपलब्ध आगमों के परस्पर के वर्णन से समीक्षा करने पर समझ में आता है । तो भी १ पूर्वधर प्रामाणिक पुरुष मान्य सभी आगम श्रद्धा से स्वीकारने योग्य हैं । वर्तमान में उपलब्ध होने वाले आगमों में १ पूर्वधारक प्रमाणिक पुरुषों के संपादन के अतिरिक्त बाद के १५०० वर्ष के लेखन काल में लहियों द्वारा या छद्मस्थ स्वभाव की भूलों के माध्यम से कुछ त्रुटियाँ जिनागम विरुद्ध या परस्पर आगम वर्णनों में संदेहात्मक कुछ लगे तो वे आज भी बहुश्रुतों द्वारा परस्पर समन्वय, विचारणा, चिंतन के योग्य समझकर आगमाधार से समाधान प्राप्त किया जा सकता है, निर्णय किया जा सकता है । कुछ भी समाधान साधित न हो सके उस विषय में **तमेव सच्चं णिसंकं जं जिणेहिं पवेइयं** यह आगम श्रद्धा वाक्य ***(भगवती-आचारांग)*** स्मरण करके जिन वचनों की श्रद्धा आस्था दृढ बनाये रखना चाहिये । क्यों कि भगवान की वाणी तो पूर्ण सत्य एवं विश्वास योग्य ही है । उसमें (सर्वज्ञ के ज्ञान में) कोई शंका को स्थान ही नहीं है ।

नंदीसूत्र के आगम विभाजन के बाद आगमों के नये विभाजन अज्ञात समय में देवर्धि के सैकडों वर्षों बाद में कभी भी हुए है वह इस प्रकार है- (१) अंगसूत्र-११ (२) उपांगसूत्र-१२ (३) मूलसूत्र-४ (४) छेदसूत्र-४ या ६ (मूर्तिपूजक) (५) चूलिका सूत्र-२ (मूर्तिपूजक) (६) प्रकीर्णक-१० या अनेक ।

आवश्यक सूत्र मौलिक गणधर कृत सूत्र है अत: उसे मूल सूत्र में भी गिन सकते है और शिखरस्थ सूत्र(सर्वप्रथम) भी है अत: उसे चलिका सूत्र भी कह सकते हे । अनुयोग द्वार सूत्र के प्रार भ के आगम विभाजन में उसे अंग सूत्रों के बाद और शेष सर्व अंगबाह्य आगम कालिक उत्कालिक से स्वतंत्र पहले बताया है यथा–अंगबाह्य आगमों में आवश्यक और आवश्यक व्यतिरिक्त (अन्य) शास्त्र । फिर अन्य शास्त्रों के कालिक एवं उत्कालिक दो भेद दर्शाये हैं अर्थात् आचार्यकृत उन सभी आगमों से आवश्यक की प्राथमिकता स्वतंत्रता दी गई है ।

कालिक उत्कालिक :– **(१)** गणधरों के १२ अंगो के आधार से पूर्वधर प्रमाणिक पुरुषों के रचे आगम केवल संकलित मात्र हों, भाषा शब्द गणधरों के आगम में से ज्यों के त्यों रखे गये हों तो वे कालिकशास्त्र कहे जाते हैं । **(२)** शब्द, भाषा, वाक्य रचना, गणधरों की पूर्णतया न रखकर उनके भावों के आधार से नई वाक्य रचना कुछ–कुछ की गई हो या पूर्णत: की गई हो, भाव सारे गणधर कृत आगम से लिये हों तो वे पूर्वधरों के शास्त्र उत्कालिक कहे गये है । यह कालिक और उत्कालिक की भेद रेखा समझनी चाहिये।

व्याख्या साहित्य :–

देवर्धि के लेखन समय में मूल पाठों का संकलन संपादन योग्य विधि से पूर्ण किया गया । उसके ५० वर्ष बाद सूत्रों के शब्दार्थ भावार्थ विशेषार्थों का लेखन संपादन का दौर चला ।

(१) निर्युक्ति :– मौखिक कंठस्थ ज्ञान की पर परा आगम लेखन बाद भी चालु रही उसे बंद करने का कोई कारण नहीं था । अत: समय, काल, शासन की फरसना अनुसार आगम और उसके अर्थ परमार्थ शब्दार्थ भावार्थ गुरुपर परा से यथा योग्य चलता रहा । फिर भी भस्मग्रह के प्रभाव को बढने का समय होने से आचार में एवं ज्ञान में शिथिलता तथा मतभेद, पंथभेद भी पूर्वधारियों के अभाव में पनपते (उत्पन्न होते)

रहे । तथापि विशिष्ट ज्ञानी शासन प्रेमी साधक आगमों की कंठस्थ पर परा में चली धारणा व्याख्या अर्थ रहस्यार्थों के लिखित करने के मानस में बढते गये । जिसके फल स्वरूप आगम लेखन समाप्ति के करीब ५० वर्ष बाद द्वितीय भद्रबाहु स्वामी, वराहमिहिर के भाई प्रकांड विद्वान ज्योतिषाचार्य हुए । उन्होंने शब्दों के निरुक्त अर्थमय आगम व्याख्या लिखी । जो संक्षिप्त शब्दार्थ रूप **नियुर्क्ति व्याख्या** के नाम से प्रचारित की गई । प्राकृत भाषा में पद्य–गाथामय यह व्याख्या १० शास्त्रों पर लिखी गई थी । यथा– दो अंग प्रार भ के, दो मूलसूत्र– उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, चार छेदसूत्र, आवश्यक सूत्र, सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र । इस १० में से ९ आज प्रकाशित मिलती है एक सूर्य प्रज्ञप्ति की निर्युक्ति व्याख्या आज नहीं मिलती, लुप्त हो गई है । इन व्याख्याओं का समय वीरनिर्वाण की ग्यारहवीं शताब्दि का समय समझना ।

(२) भाष्य :– निर्युक्ति में प्राय: शब्दार्थ होने से विशेषार्थ लिखने का मानस होना स्वाभाविक था । अत: करीब १०० वर्ष के बाद इन्हीं निर्युक्तियों को साथ रखते, इन्हीं के आधार से जो व्याख्या लिखी गई उसका नाम **भाष्य** रखा गया है । यह व्याख्या भी प्राकृत पद्यमय गाथा रूप में लिखी गई । इस व्याख्या का समय वीर निर्वाण बारहवीं शताब्दि का रहा । जिसके कर्ता याने भाष्यों के कर्ता संघदासगणि, जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण, आचार्य सिद्धसेन, गोविंदवाचक आदि हुए । यह व्याख्या भी वर्तमान में उपरोक्त ९ नव सूत्रों पर ही उपलब्ध है । सूर्यप्रज्ञप्ति के विषय में जानकारी अनुपलब्ध है । निर्युक्ति व्याख्या और भाष्य व्याख्या की गाथा पद्धति एक सरीखी होने से और बाद के लेखन काल में दोनों को प्रत्येक सूत्र के साथ लिखने से तथा गाथा के अंत में भा॰गा॰ और नि॰गा॰ ऐसा संक्षिप्त सूचन करने लगे । कालान्तर से किन्ही लहियों द्वारा किन्ही गाथाओं में ऐसा अंतिम सूचन भा॰गा॰ और नि॰गा॰ लिखना छूट जाने से आज के उपलब्ध स्वरूप में प्राय: निर्युक्ति गाथा और भाष्य गाथाएँ ऐकमेक जैसी हो

चुकी है । दोनों का पृथक् अस्तित्व स्पष्ट रूप से करना दु:शक्य या अशक्य सा बन गया है । अत: संपूर्ण गाथाओं को 'निर्युक्ति-भाष्य गाथा' समझना रहता है । फिर भी किसी किसी गाथाओं के अंत में आज भी नि॰गा॰ और भा॰गा॰ लिखा मिलता है। आज ये सभी ९ शास्त्रों की व्याख्याएँ प्रकाशित उपलब्ध होती है । [**वर्तमान इक्कीसवीं सदी में अहमदाबाद से मुनि दीपरत्न सागर नामक विद्वान संत ने ४५ ही आगमों की प्राचीन संस्कृत-प्राकृत व्याख्याओं को पुस्तकाकार में संपादित-प्रकाशित करवाया है । इस प्रकार एक ही व्यक्ति एवं एक ही नगर की संस्था के नाम से ४५ (३२ ही) आगमों की प्राचीनतम व्याख्याएँ सुंदर प्रकाशन के रूप में आगम जिज्ञासुओं के सुविधा से युक्त उपलब्ध हुई है। सीधे साधे नाम वाले इस महान संत ने अपने नाम के आगे पीछे पुस्तकों के उपर कोई पदवी विशेषण या फोटो भी नहीं दिया है जो उनका सहज लघुतागुण एवं निरहंकारिता गुण का द्योतक है तथा उनके द्वारा करीब १८ वर्षो में ४५ आगम मूल, उनकी टीका भाष्य चूर्णि निर्युक्तियाँ, उनका अनुवाद गजराती में, आगमों का अनुवाद हिंदी में प्रकाशित पुस्तकें पूर्ण सेट के रूप में उपलब्ध हुए हैं । सोने में सुगंध रूप में इस महान परिश्रमी संत ने इन ४५ आगमों के अंदर आये कठिन शब्दों का गुजराती अनुवादमय तथा उस शब्द के समस्त आगम स्थलों के सूचन सहित अवर्णनीय श्रम साध्य आगम कोश चार भागों में बनाकर प्रकाशित करवा दिये हैं । साथ ही आगम एवं व्याख्याओं में आये नाम एवं कथाओं का शब्दकोश और आगम कथानुयोग अनेक-अनेक भागों में संपादित प्रकाशित करवाये हैं । वह भी जिज्ञाशु पाठकों को पूर्ण सेट के रूप में उपलब्ध हुआ है । ऐसे विविध एवं परिपूर्ण प्रकाशन के महापरिश्रमी वे संत रत्न वास्तव में लाखों करोडों अभिनंदन के पात्र हैं । एवं श्रुतसेवा के विशाल श्रम से आज के जमाने के एक अद्भुत तथा महान श्रुत सेवी वे संतरत्न सदा सभी के लिये पूर्ण आदरणीय एवं वंदनीय दर्शनीय है । जिनके जीवन व्यवहार में आज भी सरलता, नम्रता, सहजता, विवेक, विचक्षणता आदि गुणों के प्रत्यक्ष दर्शन से अपनी आत्मा को अनुपम आनंद की अनुभूति होती है ।**

मुनिश्री दीपरत्न सागर म.सा. अभी गुजरात सौराष्ट्र के सुरेन्द्रनगर जिले के थानगढ नामक गांव में प्राय: स्थविरवास रूप में विराजमान है, इनके समस्त आगम प्रकाशन मात्र एक सी.डी. में मिलते हैं। इन्टरनेट पर भी फ्री मिलते हैं डाउनलोड करने पर ।]

चूर्णि :- भाष्य व्याख्याओं के करीब सौ वर्ष बाद विवेचन रूप में चूर्णि नामक व्याख्या लिखी गई । वह प्राकृत संस्कृत मिश्र भाषावाली अर्थात् मुख्यत: प्राकृत भाषा में+अल्प संस्कृत भाषा में गद्यमय लिखी गई । विस्तार से होने से संपूर्ण सूत्राशय स्पष्ट सरलता से समझ में आने लगा । उक्त दश आगमों के सिवाय यह व्याख्या भगवतीसूत्र, प्रज्ञापनासूत्र, नंदीसूत्र, अनुयोगद्वारसूत्र आदि अनेक शास्त्रों पर लिखी गई । चूर्णि कर्ता आचार्य जिनदासगणि महत्तर, आचार्य अगस्त्यसिंह सूरी वगैरह हुए । इनका समय वीरनिर्वाण की तेरहवीं शताब्दि के आसपास रहा है ।

टीका :- चूर्णि व्याख्या की पद्धति से भी कुछ अधिक स्पष्टीकरण वाली शुद्ध संस्कृत भाषा में जो व्याख्या लिखी गई उसे **टीका व्याख्या** कहा गया । प्रार भिक टीकाकार कोट्याचार्य, हरिभद्रसूरि आदि हुए और बाद में शीलांकाचार्य, अभयदेवसूरि, शांतिचन्द्रसूरि, मयलगिरी, मल्लधारी आचार्य हेमचंद्र, आचार्य क्षेमकीर्ति, चंद्रसूरि आदि हुए । इन सभी आचार्यों की मिलाकर सभी(३२) आगमों पर व्याख्याए पूर्ण हो चुकी थी। इस टीका नामक व्याख्या की रचना का समय बहुत लम्बा चला अर्थात् वीर निर्वाण तेरहवीं सदी से लेकर सतरहवीं सदी तक रहा । साथ ही आगम एवं व्याख्याओं में आये नाम एवं कथाओं का शब्द कोश और आगम कथानुयोग अनेक अनेक भागों में संपादित प्रकाशित करवाये हैं ।[**इनमें से किसी भी विद्वान टीकाकार ने पर्यूषणाकल्प सूत्र की टीका व्याख्या नहीं की । जिससे स्वत: स्पष्ट होता है कि उस समय तक वह सूत्र अस्तित्व में नहीं आया था । तथा इसके बाद के विद्वानों ने कल्पांतर वाच्य नामक व्याख्याएँ बनाई जो आज प्रकाशित मिलती है ।**]

इन सभी आगम व्याख्याओं से कुल मिलाकर कुछ आगमों पर-(१) निर्युक्ति भाष्य, चूर्णि उपलब्ध है (२) कुछ पर निर्युक्ति भाष्य टीका व्याख्या उपलब्ध है (३) किसी पर केवल चूर्णि है (४) किसी पर चूर्णि, टीका दोनों है और किन्हीं शास्त्रों पर केवल संस्कृत टीका व्याख्या है । इस तरह वीर निर्वाण के ग्यारहवीं सदी से लेकर सतरहवीं सदी के विद्वान आचार्यों की आगम व्याख्याएँ आज प्रकाशित उपलब्ध है । सतरहवीं सदी के बाद भी अपनी रूचि के अनुसार कुछ कुछ विद्वान संतो ने कोई कोई आगम पर दीपिका अवचूरि आदि अनेक नामों से व्याख्याएं लिखी है उनमें से भी कई प्रकाशित हुई है । तथापि उपरोक्त सतरहवीं सदी तक के आचार्यों की परिपूर्ण व्याख्याओं के प्रकाशित उपलब्ध होने से इन बाद की छोटी छोटी दीपिका, अवचूरि आदि का विशेष महत्त्व नहीं रह पाता है ।

वर्तमान में करीब ३०० वर्षों से कुछ कुछ प्रकाशन युग चला है । जिसके फल स्वरूप जैन आगम साहित्य हिंदी अंग्रेजी गुजराती आदि भाषाओं में भी कई ढंग से संपादित होकर प्रकाशित होता रहा है।

स्थानकवासी पर परा में आचार्य घासीलालजी म.सा. वीर निर्वाण पचीसवीं सदी में हुए हैं उन्होंने पहले राजकोट एवं बाद में अहमदाबाद में रहकर ३२ ही आगमों की संस्कृत(अत्यंत सरल संस्कृत) टीका लिखकर प्रकाशित करवाई । पुस्तकाकार में इन पुस्तकों में संस्कृत टीका का हिंदी और गुजराती दोनों भाषा में अनुवाद भी रखा है । इस कारण से इस प्रकाशन की पुस्तकें अधिक पृष्टों की बनी है अर्थात् भगवती सूत्र की १७ पुस्तकें (१ से १७ भाग) बनी है कुल ७०-७२ पुस्तकें प्राय: ५००-७०० पृष्ठों वाली बनी है और यह संपूर्ण सेट पूरे हिंदुस्तान में प्रचारित प्रसारित हुआ है । इस प्रकार एक स्थानकवासी आचार्य ने नूतन रूप से अपनी स्वतंत्र ३२ आगमों की **टीका व्याख्या** दो-दो भाषा में अनुवाद सहित प्रकाशित कर स्थानक-

वासी संघ समुदाय की जैनजगत में एक विशेष शान बनाई है ।

टब्बा :- टीका नामक **प्राचीन व्याख्याओं** के बाद टब्बा नामक लघु व्याख्या प्रकाश में आई । वीर निर्वाण २००० वर्ष के बाद करीब २००१ या २००२ तक प्रत्येक आगम के मूलपाठ के साथ शब्दार्थमय ये टब्बा लिखे गये । इसमें एक एक आगम शब्द लिखकर उसका सरल अर्थ गुजराती भाषा में एवं देवनागरी (हिंदी) लिपि में कागज पर पत्राकार में लिखे जाने लगा । वे सीधे सरल संक्षिप्त होने से अनेक संत अपने पास खुद की नकल कर-करके रखने लगे । इस तरह ३००-४०० वर्ष करीब यह हस्त लिखित टब्बा युग भी भरपूर उपयोगी चला । इन्हीं टब्बाओं के आधार से वीर निर्वाण २५ वीं सदी में महाराष्ट्र से आचार्य अमोलक ऋषिजी ने ३२ आगमों के हस्त लिखित टब्बाओं को पत्राकार(पोथी) रूप में प्रकाशित करवाया । यह **स्थानकवासी समाज** में इस रूप का प्रार भिक प्रकाशन था अर्थात् आगम प्रकाशन का दौर वहीं से प्रार भ हुआ । यह ३२ आगम का सेट बहुत जल्दी पूरे हिन्दुस्तान में प्रचारित प्रसारित हुआ और आगमों को सरल हिंदी में पाकर साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं ने उससे आगम स्वाध्याय का भरपूर लाभ लिया ।

यों वीर निर्वाण ग्यारहवीं सदी से पच्चीसवीं सदी तक आगमों का व्याख्या साहित्य विकसित होते होते आज के आगम स्वाध्याय प्रेमिओं को अत्यंत सुलभ हुआ है । भाग्यशाली अनेक मुमुक्षु प्राणी आगम ज्ञान पाकर इस पंचम काल में भी अपने को धन्य धन्य मानकर बहुत आत्म संतुष्टी का अनुभव कर आगम आनंदमय जीवन जीते हैं ।

वीर निर्वाण पच्चीसवीं छब्बीसवीं सदी में विज्ञान की उन्नति के युग में टीवी आदि साधनों की सुविधा में एवं भौतिक चकाचोंध में मानव कम फुरसत वाला होने का अनुभव करने लगा । इस कारण से तथा सेकड़ो हजारों श्रावक पर्युषण में स्वाध्यायी रूप में सेवा देकर आठ दिन अन्य गाँव नगरों में संत सतीजी के चौमासे रहित

क्षेत्रों में जाकर जैन संघ को प्रवचन धर्मध्यान का लाभ देने लगे; इस कारण से भी आगमों के संक्षिप्त सारांश आदि की पुस्तकों की आवश्यकता महसूस होने लगी कि प्रत्येक आगम, छोटी पुस्तक रूप में संक्षिप्त सरल भाषा में हों तो अनेक श्रावक-श्राविका आदि ३२ आगमों की स्वाध्याय कर सके । इस तरह की प्रेरणा का मानस स्वाध्याय संघों में चलने से समय की मांग अनुसार ३२ ही आगम छोटी-छोटी पुस्तकों के रूप में सारांश की भाषा में प्रकाशित हुआ। उसके बाद उसी लक्ष्य से ३२ आगम प्रश्नोत्तर की शैली में भी प्रकाशित हुए । ये दोनों प्रकाशन आगम सारांश और आगम प्रश्नोत्तर हिंदी एवं गुजराती दोनों भाषाओं में पूरे सेट के रूप में प्रकाशित प्रचारित हुए हैं । इस प्रकार जैन जगत में एवं विशेष कर स्थानकवासी जैनों में आगम स्वाध्याय का और आगम ज्ञान का भरपूर प्रचार हुआ । भाग्यशाली मुमुक्षु स्वाध्याय प्रेमी आत्माओं ने इस समय की उपलब्धि एवं विद्वान श्रमणों के श्रम का अमूल्य लाभ प्राप्त किया है, करते है एवं भविष्य में भी करते रहेंगे । इस तरह इस हुण्डावसर्पिणी के पाँचवे आरे याने कलियुग कहे जाने वाले काल में भी श्रुतज्ञान और धर्माचरण विकास पाया है। अन्य अनेक अपेक्षाओं से यह समय धर्म के उत्थान एवं पतन की मिश्र अवस्था में प्रवहमान हो रहा है अर्थात् किसी अपेक्षा उन्नति और किसी अपेक्षा अवनति यों उभय रूप में यह जिन शासन चल रहा है । इसी तरह उत्थान पतन उभय रूप में कम-ज्यादा औसत क्रम से भगवान का शासन, श्रुतज्ञान और धर्माचरणमय कुल २१००० वर्ष तक चलेगा । – ***भगवती सूत्र शतक-२०, उद्देशक-८ ।***

❖❖❖

३२ आगमों का अत्यंत संक्षिप्त विषय परिचय

क्रम	आगम नाम	विषय-परिचय
१	आचारांग सूत्र	आत्मज्ञान, त्याग वैराग्य, संयम के आचार-विचार भगवान महावीर की उत्कट साधना ।
२	सूगडांग सूत्र (सूत्रकृतांग)	क्रिया वादी, अक्रिया वादी आदि अेकांत वादी मत-मतांतर तथा स्वमत ।
३	ठाणांग सूत्र (स्थानांग)	जैन दर्शन के तत्त्वों का १ से १० की संख्या में निरूपण । अनेक उपदेशी चौभंगियां ।
४	समवायांग सूत्र	१ से १०० तक तथा आगे क्रोड तक की संख्या के आधार से विविध तत्त्वोका निरूपण । भूतभावी तीर्थंकर आदि उत्तम पुरुषों की विगतें । १२ अंग सूत्रों का परिचय ।
५	भगवती सूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति)	जैन दर्शन के प्रायः सभी सिद्धांत । मुख्यतः गौतम स्वामी के प्रश्नोत्तर; विशेष में अन्य गणधर, श्रमण, श्रावक, श्राविकाओं तथा अन्य मतावलंबी के प्रश्नोत्तर ।
६	ज्ञाताधर्मकथा सूत्र	कथा, उदाहरण तथा जीवनी रूप दृष्टांतों के माध्यम से सभी प्रकार के साधकों के लिये शिक्षा उपदेश एवं ज्ञातव्य अनुभव योग्य तत्त्व।
७	उपाशकदशा सूत्र	भगवान महावीर के शासन में हुए आनंद आदि १० आदर्श श्रावकों का वैभव तथा त्याग वैराग्य।
८	अंतगडदशा सूत्र	संयम साधना के अंतिम क्षणों में केवलज्ञान, केवलदर्शन प्राप्त कर मुक्त होने वाले ९० जीवों का शिक्षा प्रेरक जीवन वर्णन ।
९	अनुत्तरोपपातिक सूत्र	संयम की उत्कृष्ट साधना से सर्वोच्च देवलोक-अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले ३३ त्यागी, तपस्वी श्रमणों का जीवन वृत्तांत ।
१०	प्रश्नव्याकरण सूत्र	पाँच आश्रवों(पापों) का एवं पाँच संवर का सुविस्तृत साहित्यिक भाषा में वर्णन ।
११	विपाक सूत्र	महा पापी और दुःख भुगत-भुगत कर दीर्घ काल से मोक्ष जाने वाले तथा सुखे-सुखे अल्प भव में मोक्ष जाने वाले महान सद्गुणी आत्माओं के १०-१० अध्ययन।

१२	औपपातिक सूत्र (उववाई)	भगवान महावीर का समवसरण, परिषदा, प्रवचन देशना, अनगारों की आराधना विविध साधकों, जीवों की देवोत्पत्ति ।
१३	राजप्रश्नीय सूत्र (रायप्पसेणीय)	राजा प्रदेशी की केशी स्वामी से चर्चा तथा सूर्याभ देव की ऋद्धि ।
१४	जीवाभिगम सूत्र	जीवों के भेद-प्रभेद एवं लघुदंडक, कायस्थिति, अंतर । संपूर्ण तीरछा लोक, द्वीप समुद्र वर्णन।
१५	प्रज्ञापना सूत्र	३६ पद-अध्याय में जीवों के स्थान, अवगाहना, पर्यव, शरीर, गतागत, लेश्या, कर्म, समुद्घात आदि ।
१६	जंम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र	जंबूद्वीप का भौगोलिक-क्षेत्रिय विस्तृत वर्णन। ऋषभदेव, भरत चक्रवर्ती, छ आरे आदि ।
१७-१८	ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति सूत्र	सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा संबंधी सर्वांगीण वर्णन २० अध्ययनों में । इसे चंद्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति यों दो सूत्र गिने जाते हैं ।
१९-२३	उपांग सूत्र (निरयावलिकादि-५)	चेडाराजा और कोणिक का महासंग्राम, नरक-गामी स्वर्गगामी जीव । चंद्र, सूर्य, ग्रह देवता के पूर्वभव ।इसे निरयावलिकादि ५ शास्त्र गिनते हैं
२४	निशीथ सूत्र	प्रायश्चित्त-दोष स्थानों का वर्णन २० उद्देशक-अध्ययनों में ।
२५	दशाश्रुतस्कंध सूत्र	दस अध्ययनों में दस विषय । छोटे-छोटे अध्याय । ३० महामोहबंध के स्थान, ९ नियाणा आदि ।
२६	बृहत्कल्प सूत्र	साध्वाचार, उत्सर्ग अपवाद परिस्थिति के कल्प तथा प्रायश्चित्त ।
२७	व्यवहार सूत्र	साधुओं के गच्छ के व्यवहार, व्यवस्था, संघ संचालन, पदवियें, गच्छ त्याग विधि, आलोचना, प्रायश्चित्त, सेवा महत्त्व आदि ।
२८	उत्तराध्ययन सूत्र	३६ अध्ययनों में उपदेशी विषय तत्त्व, कथा, आचार, विनय, ज्ञान चर्चा आदि विषय ।
२९	दशवैकालिक सूत्र	दस अध्ययनों में साध्वाचार के अनेक मौलिक नियम विधिविधान, विनयधर्म । दो चूलिकाओं में हितशिक्षा, संयम सुरक्षा, एकलविहार चर्या विधान तथा उसकी भलामण ।

३०	नंदी सूत्र	५ ज्ञान वर्णन । बहुश्रुत अनुयोगधर, पूर्वाचार्यो के गुण कीर्तन । १२ अंग सूत्रों का परिचय ।
३१	अनुयोगद्वार सूत्र	सामाजिक, सांस्कृतिक संगीत, काव्य, आवश्यक अनुयोग, नयनिक्षेप, प्रमाण, डालापाला, पल्योपम, सागरोपम, अंगुल के तीन प्रकार से माप आदि ।
३२	आवश्यक सूत्र	६ आवश्यकमय प्रतिक्रमण सूत्र । मौलिक २५ पाठ छ आवश्यक में ।

श्वे॰मूर्तिपूजक जैन मान्य १३ अतिरिक्त आगम

३३	देवेन्द्रस्तव ग्रंथ	सिद्धो के सुख, इन्द्र, ग्रह-नक्षत्र आदि विचार।
३४	तंदुलवैतालिक	जीवों की १० अवस्थाअें १०० वर्ष की उम्र से। वैराग्य विचार ।
३५	गणिविद्या ग्रंथ	ज्योतिष तथा निमित्त ज्ञान विवरण ।
३६	आतुरप्रत्याख्यान	हित शिक्षा तथा समाधि मरण विषयक सूचन।
३७	महाप्रत्याख्यान	पंडित मरण, पाँच महाव्रत शुद्धि ।
३८	गच्छाचार प्रकीर्णक	गच्छ की व्यवस्था, गच्छवास में हानि-लाभ ।
३९	भक्तपरिज्ञा	अनशन स्वीकार और अंतिम आराधना ।
४०	मरणसमाधि	अंत समय के समाधि भाव ।
४१	संस्तारक प्रकीर्णक	दृष्टांत सहित संस्तारक वर्णन तथा महिमा ।
४२	चउसरण पइण्णा	चार शरणों का स्वरूप ।
४३	जीतकल्प सूत्र	दस प्रायश्चित्त, आलोचना विचार ।
४४	महानिशीथ सूत्र	दुष्कृत्यों की निंदा आलोचना, शुद्धिकरण तथा विचित्र विविध विषय ।
४५	पिंडनिर्युक्ति	संयमी के कल्प्य-अकल्प्य आहार आदि की गवेषणा चर्चा ।

नोट :- क्रमांक-१ से ११ तक अंग शास्त्र है । क्रमांक-१२ से २३ तक बारह उपांग शास्त्र है । २४ से २७ तक चार छेद सूत्र है ।२८ से ३२ तक चार मूल सूत्र एवं आवश्यक सूत्र है । आगे मूर्तिपूजक मान्य ३३ से ४२ तक दस प्रकीर्णक है । ४३-४४ दो छेद सूत्र मूर्तिपूजक मान्य विशेष है । ४५वां व्याख्याग्रंथ है उसे उन्होंने मूल शास्त्र में और आगम में गिना है । नामकरण :- द्वादशांगी शास्वत नाम है १२ अंग सूत्रों का । बारहवाँ अंग विच्छेद हो गया है इसलिये ग्यारह अंग लिखे हैं। उपांग, मूल, छेद नामक विभाजन विक्रम की १५वीं शताब्दि के पहले होने का कोई प्रमाण नहीं है, परंपरा सत्य है, किन्तु उपांग १२ की संख्या करने में आगम विरुद्ध तरीके तथा नंदी की आगमसूचि में हस्तक्षेप(प्रक्षेप कार्य) हुअे हैं तथा प्रकीर्णक संबंधीपाठ भी प्रक्षिप्त हुआ है ऐसा अनुप्रेक्षण तथा इतिहास से स्पष्ट होता है।

३२ आगमों का ऐतिहासिक परिचय

क्रम	आगम नाम	रचना, संकलन, संपादन कर्ता
१–११	आचारांग सूत्र से विपाक सूत्र तक	गणधर कृत एवं देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के समय लिपीबद्ध संपादन, संशोधन ।
१२	औपपातिक सूत्र (उववाई)	देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के समय आचार्य बहु-श्रुत आदि द्वारा रचित, संपादित, अज्ञात नाम।
१३	राजप्रश्नीय सूत्र	उपरवत् ।
१४	जीवाभिगम सूत्र	उपरवत् ।
१५	प्रज्ञापना सूत्र	उपरवत् । कुछ समय बाद किसी ने कालकाचार्य-श्यामाचार्य का नाम मूलपाठ में श्लोक रूप में रखा ।(नाम साम्यता से तीन आदि पूर्वधर प्रथम कालकाचार्य रूप भ्रमित परंपरा)
१६	जंम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र	उपरवत् ।
१७–१८	ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति सूत्र	उपरवत् । इसे एक सूत्र होते हुए भी दो सूत्र चंद्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति नाम से गिने जाते हैं ।
१९–२३	उपांग सूत्र	उपरवत् । यह छोटा सा शास्त्र है । पाँच इसके वर्ग रूप विभाग है । पाँच वर्गो को जानबूझकर पाँच शास्त्र रूप में माना जा रहा है । मूलपाठ में इस शास्त्र का नाम उपांग सूत्र लिखा हैं ।
२४	निशीथ सूत्र	देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के समय में संपादन । आचारांग सूत्र के २५ वें अध्ययन का पृथक्करण अत: गणधर रचित ।
२५	दशाश्रुतस्कंध सूत्र	आर्य भ्रद्रबाहु स्वामी कृत । वीर निर्वाण १७० में स्वर्गवासी हुए ।
२६	बृहत्कल्प सूत्र	उपरवत् ।
२७	व्यवहार सूत्र	उपरवत् ।
२८	उत्तराध्ययन सूत्र	देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के समय में संपादन । प्रश्नव्याकरण सूत्र के अध्ययन का पृथक्करण अत: गणधर रचित ।
२९	दशवैकालिक सूत्र	देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के समय आचार्य बहु-श्रुत आदि द्वारा रचित, संपादित, अज्ञात नाम। पीछे से शय्यंभवाचार्य नाम प्रसिद्ध । परंतु १४ पूर्वी शय्यंभवाचार्य की धारणा परंपरा उचित नहीं है । आगे देखें-इस सूत्र का परिचय ।

३०	नंदी सूत्र	देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के समय आचार्य बहुश्रुत आदि द्वारा रचित । अज्ञात नाम। पीछे से देवर्धिगणि-देववाचक का नाम प्रसिद्ध हुआ ।
३१	अनुयोगद्वार सूत्र	देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के समय आचार्य बहु-श्रुत आदि द्वारा रचित, संपादित, अज्ञात नाम। पीछे से आर्यरक्षित का नाम प्रचलित हुआ ।
३२	आवश्यक सूत्र	गणधर कृत ।

नोट :- सभी उपांग सूत्र एवं मूलसूत्रों की रचना देवर्धिगणि के आगम लेखन समय में ही कराई गई थी । उन सूत्रों के मूल पाठों में किसी का नाम नहीं रखा गया । प्रज्ञापना, दशवैकालिक, नंदीसूत्र तथा अनुयोगद्वार सूत्र इन चार के रचनाकार के नाम कालांतर से प्रचलित हुए उनके शिष्य प्रशिष्य आदि के द्वारा।वास्तव में वे नाम वाले रचनाकार देवर्धिगणि के समय ही थे । किन्तु नाम साम्यता के भ्रम से या प्राचीनता की छाप हेतु देवर्धिगणि के पूर्व के कालकाचार्य, शयंभवाचार्य एवं आर्यरक्षित के नाम से जोडे गये है । देवर्धिगणि के पूर्व ये आगम बनाने का कोई उद्देश्य नहीं था, क्यों कि पूर्वों का ज्ञान चालू था, विच्छेद नहीं हुआ था ।पूर्वज्ञान विच्छेद होने से ही अंगबाह्य शास्त्र रचे गये ।

दश प्रकीर्णक आदि १३ शास्त्र का ऐतिहासिक परिचय

(श्वे. मूर्तिपूजक मान्य अधिक आगम)

३३	महानिशीथ सूत्र	देवर्द्धिगणि के आगम लेखन समय के बाद में अज्ञात कर्ता । हरिभद्रसूरि के बाद की रचना। इसे मूर्तिपूजक समाज ने छेदसूत्र में गिना है । इसीलिये कभी किसी ने नंदीसूत्र की आगम सूचि में इसका नाम प्रक्षिप्त किया है ।
३४	पंचकल्प भाष्य	देवर्द्धिगणि के आगम लेखन समय के बाद में कभी किसी ने बनाया । नंदीसूत्र में इसका नाम नहीं है । फिर भी देरावासी इसे आगम मानते है । इसके विषय में मूर्तिपूजक विद्वान एक नहीं है, कोई इसकी जगह जीतकल्पभाष्य लिख देते है । ये दोनों वास्तव में सूत्र नहीं है, भाष्य रूप व्याख्या ग्रंथ है । इसे आगम मानना योग्य नहीं है । देखें-टिप्पण, इस लिस्ट के अंत में ।
३५	पिंड निर्युक्ति ओघ निर्युक्ति	नंदीसूत्र में इन दोनों का नाम नहीं है ।ये दो निर्युक्ति नामक व्याख्या ग्रंथ है । देवर्द्धिगणि

		के लेखन समय के बाद में कभी किसी ने बनाया है । फिर भी मूर्तिपूजक विद्वान इन दो ग्रंथों को आगम मानते हैं और एक गिनते हैं, यह विचारणीय है ।
३६	चतु:शरण पइण्णा	नंदी में इसका नाम नहीं है, वीरभद्राचार्य कृत माना जाता है । यह बहुसंमत ग्रंथ है, आगम नहीं है । इसका विषय भक्तिप्रधान एवं आदरणीय है तथापि आगम कहना योग्य नहीं है ।
३७	आतुरप्रत्याख्यान	नंदी में नाम है, गुणभद्राचार्यकृत माना जाता है ।इस नाम के दो शास्त्र और भी मिलते है। तीनों में क्रमश: ७० गाथा, २८ श्लोक, ३४ श्लोक है ।
३८	महाप्रत्याख्यान	नंदी में नाम है और अज्ञातकर्ता है । इसे ४५ आगम में मानने में मतभेद है ।१४वीं सदी के **विचार सार** ग्रंथ में ४५ आगमों के नामों में इसे नहीं गिना है ।
३९	भक्तपरिज्ञा	नंदी में नाम नहीं है । वीरभद्राचार्य कृत ।
४०	तंदुलवैतालिक	नंदी में नाम है । अज्ञात कर्ता ।
४१	संस्तारक प्रकीर्णक	नंदी में नाम नहीं है, अज्ञात कर्ता ।
४२	चंदा वेइसप	नंदी में नाम नहीं है । अज्ञात कर्ता । विक्रम की १४वीं सदी की रचना संभव है ।४५ आगमों में मानने में भी मतभेद प्राप्त ग्रंथ है ।
४३	गणिविद्या प्रकीर्णक	नंदी में नाम नहीं है, अज्ञात कर्ता ।
४४	देवेन्द्र स्तव	नंदी में नाम है । ऋषिपालित स्थविर रचित है और ३२ देवेन्द्रों संबंधी १३ प्रश्नोत्तर है ।
४५	मरण समाधि	नंदी में मरणविभक्ति नाम है । उसके आधार से एवं अन्य ग्रंथो के आधार से यह बनाया गया है । ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है । सभी प्रकीर्णकों में यह विशाल है । तंदुलमत्स्य के नरक गमन का वर्णन भी इस शास्त्र में है ।बडा होने से कोई इसे प्रकीर्णक में नहीं गिनते ।

नोट :- श्वेतांबर स्थानकवासी मान्य ३२ शास्त्र तथा २ छेद सूत्र और १ गवेषणा निरूपण का ४२ दोष वर्णन संबंधी व्याख्या ग्रंथ तथा १० प्रकीर्णक।

[टिप्पण :- आगम की परिभाषा देरावासी प्राचीन ग्रंथों में लिखी है उस गाथा अनुसार कम से कम एक पूर्व ज्ञानी की रचना को आगम मानना होता हैं । नंदी की रचना के बाद पूर्वों का ज्ञान विच्छेद हो गया था । *- भगवती सूत्र ।* ***अत: नंदी के बाद या नंदी आगम सूचि के सिवाय रचित सूत्रों कों ग्रंथ, व्याख्या ग्रंथ, कथा ग्रंथ आदि कहा जा सकता है पर तु आगम कहना किसी भी प्राचीन आगम परिभाषा से उचित नहीं होता है ।]***

क्रमांक ३६ से ४५ तक के प्रकीर्णक है उन्हें आगम की गिनती में मूर्तिपूजक संघ में माना जाता है । ये सभी प्रकीर्णक प्राय: उपदेशी, आत्म हितकारी होने से श्रद्धाभक्ति से माने जाते हैं । १० प्रकीर्णकों के नाम की निश्चितता भी मूर्तिपूजक समाज में एक मत नहीं है, भिन्नताएँ मिलती है । प्राचीन नामों से भी भिन्नता है और अर्वाचीन मिलने वाले नामों में भी परस्पर भिन्नता देखी जाती है । प्रबुद्ध जीवन मासिक, अगस्त-२०१२ के पं. रूपेन्द्रकुमारजी पगारिया के लेख से उपरोक्त दस नाम यहाँ संकलित किये है । इन दस के सिवाय नंदी में निम्न नाम और भी मिलते हैं- (१) चंद्रावैद्यक (२) ध्यान विभक्ति (३) मरण विभक्ति (५) आत्म विशुद्धि (६) वीतरागश्रुत (७) ऋषिभाषित (८) समुत्थानश्रुत (९) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति (१०) देवेन्द्रोपपात (११) चुल्लकल्प (१२) महाकल्प ।

स्थानकवासी पर परा में प्रकीर्णक के नाम से आगम स्वीकार नहीं किये गये है । अंग, उपांग, मूल, छेद ये चार विभाग दोनों ने मान्य किये हैं । विक्रम की चौदहवीं सदी(अर्थात् लोकाशाह के पूर्व) के मूर्तिपूजक आचार्य के ग्रंथ में ऋषिभाषित एवं समुत्थान सूत्र को ४५ आगम की गिनती में गिना है श्लोक बद्ध रचना में । नंदी में उनके नाम कालिक श्रुत में स्पष्ट है । फिर भी वर्तमान में ४५ आगम में नहीं गिनते है । वे दोनों शास्त्र अत्यंत उपादेय आगम है । स्थानकवासी ने भी इन्हें ३२ आगम में नहीं माना है । जबकि समुत्थान सूत्र में तो स्थानक वासी के पक्ष सम्मत मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधने के पाठ अनेक जगह पूरे शास्त्र में है ।

वास्तविकता :– आगम नंदीसूत्र की आगम सूची में प्रकीर्णक विभाग नहीं किया गया है और किसी भी आगम नामों के साथ प्रकीर्णक शब्द भी नहीं लगा है । आगम सूची के बाद वहाँ थोडा प्रक्षिप्त पाठ है जो तथ्यहीन है । जिसमें हजारों प्रकीर्णक होने का कथन है जो मनगढंत गप्प जैसा कथन मात्र है । **जिस तीर्थंकर के जितने साधु उतने शास्त्र प्रकीर्णक ।** यह बेतुकी बात कभी किसी ने मूलपाठ में डाली है । जो स्वत: परस्पर भी स्ववचन विरोध जैसी स्पष्ट दिखती है । फिर भी प्राचीन–अर्वाचीन सभी लेखक, प्रकाशक, संपादक आँख मीच कर चलाये जा रहे हैं । यह लकीर के फकीर बनने की उक्ति चरितार्थ करने रूप एक अक्षम्य भूल है ।

सोचें !!! (१) पहले तो प्रकीर्णक नामक कोई विभाजन विभाग नंदी सूत्र में या अनुयोग द्वार सूत्र में वहाँ मूलपाठ में किया ही नहीं है । तो प्रकीर्णक शब्द कौन कहाँ से लाये ? (२) **जितने साधु चौदह हजार आदि उतने प्रकीर्णक** यह कथन पूर्ण मूर्खता भरा है । क्यों कि सभी साधु बहुश्रुत नहीं होते, सभी पूर्वधर नहीं होते । सभी साधु सूत्रों के रचनाकार नहीं बनते । पूर्वधरों की रचना ही प्रमाणित आगम होती है । भगवान महावीर के शासन में ३०० ही पूर्वधारी हुए थे । सभी आबाल–वृद्ध दीक्षा लेने वाले आगम की रचना करे ऐसी योग्यता भी नहीं होती । इतने सारे १४००० या ८४००० या असंख्य प्रकीर्णक आगमों को कौन कहाँ संभालेगा, कौन याद रखेगा; अत: यह कथन भी **कोरी गप्प** मात्र ही है । (३) फिर कहा– **प्रत्येक तीर्थंकर के शासन में जितने प्रत्येक बुद्ध होवे उतने प्रकीर्णक होवे ।** प्रत्येक बुद्ध तो चार ही होते हैं या कभी १०–२० ही होते हैं । तो १४००० भी कह दिया, असंख्य भी कह दिया और फिर प्रत्येक बुद्ध जितना भी कह दिया । तीसरी बात– **जितने चार बुद्धि के धारक साधु उतने प्रकीर्णक ।** ऐसे साधु भी १४००० हजार तो नहीं होवे । यों एक ही बात के लिए तीन–तीन, चार–चार तरह के विकल्पों से कथन करना मूर्खता भरी गप्प से कम

नहीं है और तीनों परस्पर भी पूर्ण विरोधी है । वह भी मूलपाठ में प्रक्षेप करने वालों ने अनंत संसार बढने के सिद्धांत को ताक में रखकर ऐसा दु:साहस किया है । वह भी अंध भक्ति भेड चाल के चश्मे के कारण किसी भी जैन विद्वान श्रावक, पंडित, श्रमण, आचार्य की दृष्टि में नहीं आता हैं और ऐसी गप्पों को भी मूलपाठ में चला कर, सभी विद्वान आगम के प्रति वफादारी की जगह अपनी उपेक्षा वृत्ति ही सिद्ध कर रहे हैं । यही पाँचवें आरे एवं हुंडावसर्पिणी तथा भष्मग्रह के बचेखुचे असर के प्रभाव का रिजल्ट समझकर खामोश करना ही रहा ना ? ? ? कोई भी सुज्ञ सोचेगा इसे ? ? ?

८४ आगमों की सूचि

क्रम	आगम नाम	परिचय
४५	पूर्वोक्त	४५ आगम उपरोक्त सूची में देखें ।
४६	पर्यूषणा कल्पसूत्र	रचनाकार अज्ञात । विक्रम की चौदहवीं शताब्दि में चुल्लकल्प और महाकल्प सूत्र को जोडकर तथा सुधारा–वधारा करके कल्पित किया शास्त्र है । नंदी सूत्र में नाम नहीं । ३२ एवं ४५ आगम में भी नाम नहीं है । [८४ आगम, स्थानकवासी एवं देरावासी साहित्य से लिये है । लेखक पं. रूपेन्द्रकुमारजी पगारिया, आचार्य देवेन्द्रमुनिजी । प्रबुद्ध जीवन तथा जैन आगम मनन और मीमांसा ।]
४७–४८	यति–जीतकल्प श्राद्ध–जीतकल्प	सोमसूरि कृत एवं धर्मघोषसूरि कृत । किसी सूचि में इसे पंचकल्प भाष्य के स्थान पर छेद सूत्र में गिनते है । नंदी सूत्र में इनके नाम नहीं हैं ।
४९	पाक्षिक सूत्र	इसे कोई ४५ आगम में गिनते हैं । यह आवश्यक सूत्र का अंग है ।– अभिधान राजेन्द्र कोष की प्रस्तावना में इसे ४५ आगम में गिना है । नंदी सूत्र में नाम नहीं हैं ।
५०	क्षमापना सूत्र	यह भी आवश्यक सूत्र का अंग है । नंदी सूत्र में नाम नहीं हैं ।
५१	वंदितु	संकलित ग्रंथ है । नंदी सूत्र में नाम नहीं हैं ।

५२	ऋषिभाषित सूत्र	ठाणांग सूत्रानुसार यह प्रश्न व्याकरण सूत्र का अध्ययन है । देवर्धि के लेखन समय में इसे अलग कर नया सूत्र स्थापित करके नंदी सूत्र की आगम सूचि के कालिक श्रुत में नाम दिया है। अत: यह प्रामाणिक आगम है। उत्तराध्ययन जैसा उपदेशी शास्त्र है । इसे ३२ या ४५ आगम सूची में गिनना चाहिये । इस आगम में कोई दूषण भी नहीं है। गणधर कृत रचना है । इसे अंग्रेजों ने भी विदेश में छपाया है ।
५३	अजीवकल्प	अप्रकाशित ग्रंथ है । नंदी सूत्र में नाम नहीं हैं ।
५४	चन्द्रवेधक	कोई इसे ४५ आगम में गिनते हैं । इसकी जगह यहाँ **गच्छाचार** को गिनते है । नंदी सूत्र में इसका नाम है ।
५५	वीरस्तव	कोई इसे ४५ आगम में गिनते है । इसकी जगह यहाँ **मरण समाधि** को गिनते है । नंदी सूत्र में नाम नहीं हैं ।
५६	सिद्धप्राभृत	यह विख्यात ग्रंथ है । कहीं कहीं उपलब्ध है । नंदी सूत्र में नाम नहीं हैं । सेकडों एकावतारीयों के नाम है । अटपटा ग्रंथ है । अप्रामाणिक एवं कल्पित सा ग्रंथ है । कर्ता अज्ञात है । [उज्जैन भंडार में इसकी हस्तप्रत है ।]
५७	तीर्थोद्गार	इसका प्रसिद्ध नाम तित्थोगलिय पइण्णा है । प्रकाशित है । नंदी सूत्र में नाम नहीं हैं ।
५८	आराधनापताका	अच्छे साधना प्रिय साधक का उपदेशी ग्रंथ है ।
५९	द्वीपसागर प्रज्ञप्ति	**नंदी मे नाम है ।** किन्तु प्रकाशित इस नामका ग्रंथ शास्त्र जैसा नहीं है, टीका व्याख्या जैसा है । अत: नंदी कथित शास्त्र वह नहीं है या नंदी में इसका नाम बाद में प्रक्षिप्त हुआ है ।
६०	ज्योतिषकरण्डक	निमित्त ज्ञान का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है । नंदी में नाम नहीं है ।
६१	अंगविद्या	यह भी निमित्त शास्त्र है । अज्ञात कर्ता । प्रकाशित बडा ग्रंथ है । पन्यास पुण्यविजयजी म.सा. ने प्रकाशित करवाया है । नंदी सूत्र में नाम नहीं हैं ।

६२	तिथि प्रकीर्णक	यह चर्चा निबंध रुप है । नंदी में नाम नहीं है ।
६३	पिंडविशुद्धि	साध्वाचार शुद्धि प्रेरणा निबंध ग्रंथ है । नंदी में नाम नहीं है ।
६४	सारावली	यह भी प्रकाशित उपदेशी अच्छे साधक का लिखा ग्रंथ है । मुनिश्री पुण्यविजयजी ने महावीर जैन विद्यालय मुम्बई से इसे अनुवाद सहित प्रकाशित करवाया है । नंदी में नाम नहीं है ।
६५	पर्यंताराधना	इसमें २६३ गाथा है । आराधना सार भी नाम है । अनेक जगह से प्रकाशित है । नंदी में नाम नहीं है ।
६६	जीवविभक्ति	अप्रकाशित है । २५ गाथाएँ है कर्ता- जिनचंद्रसूरि है । इसमें थोकडे है । नंदी में नाम नहीं है ।
६७	कवचप्रकरण	जिनचन्द्रसूरि की रचना है । १२९ गाथाएँ है । अप्रकाशित है । पंडितमरण संबंधी विषय है । नंदी में नाम नहीं है ।
६८	योनि प्राभृत	आचार्य धरसेन की रचना । ताडपत्रीय प्रति पूना में है । नंदी में नाम नहीं है ।
६९	अंगचूलिया	नंदी सूत्र में नाम है । ठाणांग सूत्रानुसार यह संक्षेपिकदशा सूत्र का अध्ययन है ।- ***ठाणांग-१०***
७०	बंग चूलिया	नंदी सूत्र में नाम है । यह भी उक्त आगम का अध्ययन है ।- ***ठाणांग-१०***
७१	वृद्ध चतु:शरण	संकलन सूत्र निबंधग्रथ है । नंदी सूत्र में नाम नहीं है ।
७२	जम्बूपयण्णा	कथाग्रंथ है । नंदी सूत्र में नाम नहीं है ।
७३-८०	निर्युक्ति-व्याख्याएँ	२ अंग २ मूल ३ छेद १ आवश्यक । ये ८ निर्युक्तियाँ द्वितीय भद्रबाहुकृत शास्त्रों की प्रथम व्याख्या है । वीर निर्वाण ग्यारहवीं सदी की रचना है । इन व्याख्याओं को आगम शास्त्र में गिनना योग्य नहीं है ।
	सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति	यह सेंकडों वर्षो से अनुपलब्ध है । देरावासी इसे ८४ आगम में गिनते हैं, नंदी सूत्रोक्त समुत्थान सूत्र को छोड़कर । अत: यहाँ क्रमांक-८१ में समुत्थान सूत्र रखा है ।

८१	समुत्थान सूत्र	नंदी सूत्र की आगम सूचि में इसका नाम कालिक सूत्र में है, अत: यह प्रमाणिक आगम है । इसमें सिद्धांत अविरुद्ध बातें हैं । यह ग्रंथ लोकाशाह के समय अनुपलब्ध रहा होगा । भंडारों में गुप्त रहा होगा । क्यों कि देरावासी आचार्य ने १४ वीं सदी में इसे अपने प्रकाशित ग्रंथ में ४५ आगम में गिना हैं । अभी ये लोग इस शास्त्र कों ८४ या ४५ किसी भी आगम में नहीं गिनते हैं ।यह शास्त्र पंजाब और गुजरात दो जगह से प्रकाशित हुआ है । अभी अनुपलब्ध सा है हमारे पास इसकी कोम्युटर संशोधित, संपादित प्रेस कोपी है । कोई भी देख सकता है । ***इसे आगम नहीं मानना स्थानक वासियों की बडी भूल है । इसके मूलपाठ में मुखवस्त्रिका बांधने का अच्छा सारा मंडन है ।***
८२	ऋषिभाषितनिर्युक्ति	यह भी व्याख्या ग्रंथ है कर्ता अज्ञात है । देखने में नहीं आई है ।
८३	संसक्त निर्युक्ति	यह भी व्याख्या ग्रंथ है । आवश्यक निर्युक्ति का प्रथक किया हुआ अंश है ।
८४	विशेषावश्यकभाष्य	यह भी आवश्यक सूत्र का व्याख्या ग्रंथ है । वीर निर्वाण १२ वीं सदी की रचना है । जिन-भद्रगणि क्षमा श्रमण या सिद्धसेन आचार्य व्याख्याकार है । अत: नंदी में नाम नहीं है । क्यों कि नंदी रचना के करीब १५० वर्ष के बाद की रचना हैं ।

नोट :- इस सूचि के अनेक ग्रंथ आगम कहे जावे जैसे नहीं है और कुछ तो छोटे से निबंध या संकलन जैसे ही है और कितने ही व्याख्या ग्रंथ है, उन्हें आगम कहना अयोग्य ही है ।

नंदी सूत्रगत - ७३ आगम

(१ से ३२) आगम स्थानकवासी मान्यता अनुसार हैं ।

(३३) कल्प्याकल्प्य
(३४) चुल्लकल्प
(३५) महाकल्प
(३६) महाप्रज्ञापना
(३७) प्रमादाप्रमाद
(३८) देविन्द्र स्तव
(३९) तंदुलवैतालिक
(४०) चंद्रावेद्यक
(४१) पोरिषीमंडल
(४२) मंडलप्रवेश
(४३) विद्याचरण विनिश्चय
(४४) गणिविद्या
(४५) ध्यान विभक्ति
(४६) मरणविभक्ति
(४७) आत्मविशोधि
(४८) वीतरागश्रुत
(४९) संलेखनाश्रुत
(५०) विहारकल्प
(५१) चरणविधि
(५२) आतुरप्रत्याख्यान
(५३) महाप्रत्याख्यान
(५४) महानिशीथ सूत्र
(५५) ऋषिभाषित
(५६) द्वीप-सागर प्रज्ञप्ति
(५७) क्षुलिका विमान प्रविभक्ति
(५८) महल्लिका विमान प्रविभक्ति
(५९) अंगचूलिका
(६०) वग्गचूलिका
(६१) वियाहचूलिका
(६२) अरुणोववाए
(६३) वरुणोववाए
(६४) गरुलोववाए
(६५) धरणोववाए (भूल से आया है)
(६६) वेसमणोववाए
(६७) वेलधरोववाए
(६८) देविन्द्रोववाए
(६९) उत्थान श्रुत
(७०) समुत्थान श्रुत
(७१) नागपरियापनिका
(७२) कप्पिया (भूल से आया है)
(७३) दृष्टिवाद (विच्छेद हो गया है)

नोट :- ६५-धरणोववाए- यह नाम स्थानांग सूत्रगत संक्षेपिकदशा सूत्र के १० अध्ययन में नहीं हैं । लिपि दोष या समझभ्रम से यहाँ नंदी में आया है ।

उत्कालिक :- आगम क्रमांक ३३ से ५३ तक ये २१ सूत्रों के नाम नंदी के उत्कालिक श्रुत में है । बतीस सूत्र में भी आठ उत्कालिक एवं आवश्यक सूत्र नो कालिक नो उत्कालिक है । यों २१ + ८ =२९ उत्कालिक + १ आवश्यक = ३० सूत्र ।

कालिक :- ११ अंग सूत्र है और ७ उपांग + ४ छेद + १ उत्तराध्ययन । यों ११ + ७ + ४ + १ = २३ कलिक सूत्र तो ३२ आगम में है । उसके सिवाय उपरोक्त आगम क्रमांक ५४ से ७२ तक १९ कालिक सूत्र हैं और बारहवाँ अंगसूत्र कालिक हैं । यों ३२ आगम के २३ + १९ + १ = ४३ सूत्र कालिक है नंदी सूत्र में । यों ४३ कालिक + ३० उत्कालिक = ७३ जिसमें से + १ कालिक सूत्र नाम(कपिया) भूल से आया है उसके सहित कुल ७३ आगम नंदी सूत्र में हैं । वास्तवमें दृष्टिवाद और कप्पिया दो कम करने से अभी नंदीगत - ७१ आगम संख्या है ।

आगम क्रमांक ५४ से ७३ तक	२० कालिक आगम ।
आगम क्रमांक ३३ से ५३ तक	२१ उत्कालिक आगम ।
३२ सूत्र में ३२-९ =	२३ कालिक आगम ।
३२ सूत्र में ८ + १ =	९ उत्कालिक आगम
	७३ - २ = ७१

क्रमांक ५७ से ६७ तक धरणोववाए को छोडकर दस नाम एक शास्त्र (संक्षेपिकदशा) के दस अध्ययन है । - ***ठाणांग-१०।*** यहाँ नंदी सूत्र में उन १० अध्ययन को १० शास्त्र रूप में कभी किसी ने लिख दिये हैं । ये दस शास्त्र वर्तमान में अनुपलब्ध हैं ।

संभवतः इस सूचि में समय समय पर देवर्द्धि गणि के बाद कुछ हस्तक्षेप हुआ है । यथा- उपांग सूत्र नामक आगम एक है, पाँच उसके वर्ग है, उन्हें यहाँ पाँच आगम लिखकर उसका मूल नाम उपांग सूत्र कभी किसी ने हटा दिया है । फिर भी उस शास्त्र के प्रारंभ के मूलपाठ में आज भी उस पाँच वर्ग वाले आगम का नाम **उपांग सूत्र** मौजूद है । पाँच आगम गिनने का कारण भी मिलता है कि- **१२ अंग सूत्रों के १२ उपांग की कल्पना करके संख्या बढाने के लिये ऐसा किया गया है** और **सूर्यप्रज्ञप्ति-चंद्रप्रज्ञप्ति ऐसे दो नाम एक शास्त्र ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति** के लिखे गये हैं । मूल पाठ में उन दो शास्त्रों के लिये एक ही नाम आया है । इस तरह अंग

और उपांग की संख्या मिलाने के हेतु से नंदी सूत्र के ७ सूत्रों को १२ संख्या से गिनाया गया । वास्तव में वर्तमान में उपलब्ध **उपांग** संज्ञा वाले विभाजन के शास्त्र ७ ही है, १२ संख्या तो कल्पित है, चलाई गई पर परा है, जो लोकाशाह के पूर्व ही चलादी गई थी । अतः इसमें स्थानकवासी निर्दोष हैं । तथापि योग्य कर्तव्य परायणता विचारणा अनुप्रेक्षा संशोधन न करने रूप दोष पात्र तो सभी विद्वान हैं ही । जो जाने या अनजाने आजतक खोटा चलाये जा रहे हैं । क्योंकि जिसके संशोधन अनुप्रेक्षण में आज तक किसी विद्वान ने अपनी बुद्धि का सदुपयोग नहीं किया । यह भी एक समय की सत्ता की भवितव्यता है । तटस्थ प्रज्ञा(परंपरा चश्मे के बिना सही नेत्रों) से आज भी कोई आगम से समझना चाहे तो समझ सकता है । अतः शुद्ध दृष्टिकोण के अन्वेषक साधक आगम संख्या के आग्रह से उपर उठ कर, सही तत्त्व ज्ञान हासिल करने में प्रयत्नशील बनेंगे ।

:: नंदी सूत्र आगम सूची के उपलब्ध शास्त्र ::

नंदी सूत्र की आगम सूची में कुल ७३ आगम के नाम है उसमें से ३२ तो प्रसिद्ध एवं मान्य आगम है शेष उपलब्ध होने वाले आगमों का परिचय इस प्रकार है -

(३३) देवेन्द्रस्तव :- यह स्थविर ऋषिपाल की कृति है । नंदी सूत्र और पाक्षिक सूत्र में इसका नामोल्लेख मिलता है । यह उत्कालिक शास्त्र है । इस शास्त्र में ३११ श्लोक प्राकृत में है । प्रार भ में २४ तीर्थंकर की क्रमशः स्तुति है बाद में ३२ देवेन्द्रों का विस्तृत वर्णन है। इसका प्रकाशन मुर्शिदाबाद, अहमदाबाद, आगमोदय समिति, हर्ष पुष्पामृत जैन ग्रंथ माला, महावीर जैन विद्यालय एवं आगम संस्थान उदयपुर से हिंदी अनुवाद के साथ हुआ है । महावीर जैन विद्यालय मुम्बई से केवल मूलपाठ प्रकाशित हुआ है, पाठांतर टिप्पण सहित।

(३४) तंदुलवैतालिक :- इसे तंदुल वैचारिक भी कहा जाता है । गद्य-पद्य मिश्रित १७७ सूत्र है । यह उत्कालिक सूत्र है । मानव जीवन

के १०० वर्ष की सभी दस अवस्थाओं का वर्णन है । पूरे जीवन के आहार की गणित है । स्त्रियों के अवगुणों का संकलन है। अंत में धर्म का महात्म स्थापित किया है । यह सूत्र देवेन्द्रस्तव के समान स्थलों संस्थाओं से प्रकाशित है तदुपरांत अगरचन्द भेरोदान सेठिया बीकानेर से तथा हेम्बर्ग से प्रकाशित है । यह शास्त्र संस्कृत में है । हिंदी में भी प्रकाशित है । इसमें कुछ पाठ भगवती सूत्र से भी लिये है । यह उत्कालिक शास्त्र है ।

(३५) चन्द्रावेद्यक :- इसमें १७५ गाथाओं में संयमाचार का वर्णन है । उसका पालन चंद्रावेद्यक = राधावेध के समान कठिन है । यह **उत्कालिक** सूत्र है । इसका प्रकाशन देवेन्द्र स्तव के समान है । परन्तु पेरिस से अंग्रेजी में यह शास्त्र छपा है । कलापूर्णसूरि ने गुजराती में छपाया है ।

(३६) गणिविद्या :- इसमें आचार्य के कर्तव्य, उनके लिये मार्गदर्शन, दिशाओं का ज्ञान विवेक, तिथिकरण योग आदि का ज्ञान एवँ उपयोग करने का निर्देश है । इसका प्रकाशन उपरोक्त संस्थाओं (देरावासी) से हुआ है । इसमें ८३ गाथाएँ है । कहीं से मूल, कहीं से संस्कृत, कहीं से हिंदी में प्रकाशित है । यह **उत्कालिक** शास्त्र है ।

(३७) आत्मविशोधि :- इस शास्त्र में समस्त जीवों के प्रति हुए दुष्कृत्यों की निंदा की गई है । आहार और शरीर के त्याग का निर्देश है । अंतिम आलोचना और आत्म विशुद्धि का महात्म्य बताया है । इसमें २४ गाथाएँ है । प्रकाशन एक मात्र मुम्बई महावीरजैन विद्यालय से हुआ है । यह **उत्कालिक** शास्त्र है ।

(३८) आतुर प्रत्याख्यान :- यह गद्य पद्यमय मिश्रित शास्त्र है । कुल सूत्र संख्या ३० है । रचनाकार अज्ञात है । अंतिम संलेखना आराधना संबंधी उपदेश निर्देश है । यह **उत्कालिक** शास्त्र है । इस नाम के तीन शास्त्र मिलते है जिनमें क्रमशः ३०, ३४, ७१ गाथाएँ है। तीनों में पंडितमरण संबंधी वर्णन है ७१ गाथा वाले के रचनाकार वीरभद्राचार्य है । देरावासी संस्थाओं (उपरोक्त ४-५) से प्रकाशित है तथा धूलिया से, पायधुनी मुंबई से प्रकाशित है ।

(३९) महाप्रत्याख्यान :- इसमें संथारे संबंधी विस्तृत वर्णन है । १२ वर्ष की संलेखना का कथन है यह **उत्कालिक** शास्त्र है । १४२ गाथा है । संथारे संबंधी अनेक विषयों का अर्थात् आलोचना, प्रायश्चित्त, क्षमापना आदि वर्णन है । कर्ता अज्ञात है । उपरोक्त मूर्तिपूजक संस्थाओं से प्रकाशित है ।

(४०) ऋषिभाषित :- अंग सूत्र प्रश्नव्याकरण का यह एक अध्ययन है । देवर्द्धिगणि के लेखन समय के व्यवस्थापन में प्रश्नव्याकरण से विभाजित करके स्वतंत्र **कालिक** सूत्र रूप में नंदी की आगम सूची में रखा गया है । यह उत्तराध्ययन सूत्र जैसा उपदेशी एवं प्रमाणिक आगम है । सही में गणधर रचित एवं लेखन समय में संपादित शास्त्र है । उत्तराध्ययन में जैसे कपिलमुनि, हरिकेश मुनि, चित्तमुनि, भृगु पुरोहित के पुत्र, और रानी के उपदेश वचन है, मृगापुत्र, समुद्रपाल राजेमती केशी गौतम के नाम से उपदेश वचन है उसी तरह इस शास्त्र में अनेक ऋषि महात्माओं के नाम से उपदेश-तत्त्व वचन है । उन ऋषियों के नाम अन्यमत के सन्यासियों के नाम जैसे लगते है पर तु यह मात्र नाम सादृश्यता का भ्रम है किंतु यहाँ उनके नाम के साथ अर्हत विशेषण लगा है । इस शास्त्र का प्रकाशन (१) महावीर जैन विद्यालय, मुम्बई, (२) ऋषभदेव केसरीमल रतलाम, (३) लालभाई दलपत भाई अमदाबाद से संस्कृत अंग्रेजी में, (४) सुधर्मज्ञान मंदिर मुम्बई, (५) प्राकृत भारती जयपुर से हिंदी अनुवाद सहित प्रकाशन हुआ है । इसके ४५ अध्ययन है ।

(४१) द्वीपसागर प्रज्ञप्ति :- इसमें २२५ गाथाएँ है । यह **कालिक** शास्त्र है । इसमें भूगोल विषय है । इसमें ढाई द्वीप के अंदर-बाहर का वर्णन है । चमरचंचा राजधानी का वर्णन है । इसका प्रकाशन महावीर जैन विद्यालय मुम्बई, चंदनसागर ज्ञान भंडार बैजलपुर, आगम संस्थान उदयपुर से हिंदी में हुआ है ।

(४२) अंगचूलिका :- इसमें ८०० श्लोक है । आचार्य यशोभद्र की रचना है । यह अभी तक अप्रकाशित अर्थात हस्तलिखित कई भंडारों में उपलब्ध है । इसमें आगम स्वाध्याय संबंधी विधि नियम है । यह **कालिक** सूत्र है ।

(४३) वर्ग चूलिका :- इसमें १०९ गाथाएँ है । यह **कालिक** सूत्र है । यह आचार्य यशोभद्र रचित है एक मात्र फलोदी (जोधपुर) से प्रकाशित है ।

(४४) समुत्थान सूत्र :- अज्ञातकर्तृक **कालिक** सूत्र है । इसमें आठ अध्याय है । मुख्यत: साध्वाचार इसका विषय है । जामनगर (गुजरात) एवँ पंजाब से प्रकाशित है । नंदी सूत्र की कालिक आगम सूची में नाम है इस विषय में कोई पाठांतर नहीं है अर्थात् प्राप्त होने वाली सभी भंडारो की सभी नंदी सूत्र की प्रत में इस सूत्र का नाम स्पष्ट है अत: यह प्रमाणिक साध्वाचार का विषय वाला शास्त्र है । चौदहवीं सदी के आचार्य द्वारा इसे ४५ आगम में गिना गया है । बाद के मूर्तिपूजकों ने इसे ४५ या ८४ आगम सूची में भी नहीं रखा है क्यों कि इसके मूल पाठ से मुखवस्त्रिका मुखपर बांधने की पुष्टी होती है । इस शास्त्र को स्थानकवासियों के नहीं मानने में कारण, **अनुपलब्ध होने का** ही हो सकता है । देरावासियों ने इसे छुपाने, गुप्त रखने का ही प्रयत्न किया होगा । तभी चौदहवीं शताब्दि के आचार्य ने अपने संस्कृत श्लोकबद्ध ग्रंथ में ४५ आगम में समुत्थान सूत्र को स्पष्ट गिना है उसे बाद के मूर्तिपूजकों ने पूरा ही उडा दिया अर्थात् ४५ या ८४ आगम में भी इस शास्त्र का नाम नहीं रखा । जबकि यह नंदी सूत्र की आगम सूची का कालिक सूत्र रूप महत्त्व शाली आगम है, यह स्पष्ट है । इसके कर्ता अज्ञात है, उपांग सूत्रों के समान । कुल मिलाकर यह प्राचीन प्रमाणिक एवं महत्त्वपूर्ण आगम है । स्थानकवासी को तो अवश्य स्वीकारने योग्य आगम है।

(४५) महानिशीथ सूत्र :- यह शास्त्र **कालिक** सूत्र है । मूर्तिपूजक ४५ आगम में इसे मानते है । यह हरिभद्रसूरि के समय के भी बाद में बना हुआ शास्त्र हैं । नंदी में किसी ने बाद में नाम डाला हो ऐसा संभव है । देरावासी इसे छेद सूत्र में गिनते है । वास्तव में इसका विषय प्रायश्चित का मुख्य है फिर भी सेंकडों अन्य विषय भी इसमें है और कोई विचित्र और अघटित कल्पित सूत्र भी है अर्थात् स्पष्ट गप्प हो ऐसे निरूपण भी इसमें हैं । तथा आगम अन्वेषक श्री पुण्य-

विजयजी एवं इतिहासज्ञ अन्वेषक पू. कल्याणविजयजी पन्यास ने इस सूत्र के विषय में करारी टिप्पणी की है कि यह कोई निबंध ग्रंथ जैसा है इसमें सौत्रिकता को चेलेंज देने वाली अर्थात् नकारने वाली रचना पद्धति भी जगह जगह है । ४५ आगम में मान्य होने से अनेक जगह से यह सूत्र प्रकाशित है । अभी अभी एक साध्वी ने इस सूत्र पर पी.अेच.डी. की है । जिससे इसका निबंध ग्रंथ भी छोटी बडी दोनों साइज में छपा है । इसमें स्थानकवासियों के पक्ष में एक प्रसंग है । जिसमें मंदिर मूर्ति के कार्य को सावद्य कहकर उसकी दलाली प्रेरणा के लिये निडरता से मना करने वाले **आचार्य कुवलयप्रभ ने** तीर्थंकर नाम कर्म बाँधा, ऐसा लिखा है । (अध्याय ३)

(४६-४७) चुल्लकल्प-महाकल्प सूत्र :- इन दोनों सूत्रों को नंदी में **उत्कालिक** शास्त्र में गिना है । मध्यकाल में इन दोनों सूत्रों का यतियों ने या मूर्तिपूजकों ने पर्युषण में दुपहर की परिषद में वांचना शरू किया । क्यों कि क्रमश: २४ तीर्थंकरों का एवं पूर्वाचार्यो का जीवन वर्णन था । फिर इन सूत्रों की महिमा अतिमहिमा के चक्कर में पड़कर दशाश्रुत स्कंध का आठवाँ अध्ययन इन दोनों सूत्रों के साथ (चातुर्मास समाचारी प्रकरण) वांचन करने लगे । धीरे धीरे तीनों के विषय को एकमेक कर उसे दशाश्रुत स्कंध का आठवाँ अध्ययन १२०० श्लोक जितना कहने लगे और १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी की रचना कह कर वांचने के प्रकरण का महत्त्व बढाने लगे और संपूर्ण विषय(तीनों शास्त्र) को पर्युषणा कल्प सूत्र कहने लगे । ऐसी स्पष्ट प्ररूपण का समय १४ वीं सदी के आस-पास होने लगा । तभी पर्युषणा कल्प सूत्र का नाम प्रकाश में आया और इस नाम के सूत्र पर टीका व्याख्या आदि बनने लगे । इस चक्कर में चुल्लकल्प और महाकल्प दोनों सूत्र गौण बनकर पर्युषणा कल्प सूत्र में अंतर्भावित होकर आज विलुप्त से हो गये । इसके साथ दशा॰द॰८ भी विलुप्त विकृत हो गई है । उक्त लेखन मंदिरमार्गी विद्वान अन्वेषक कल्याण विजय जी एवं पूज्य पन्यास पुण्यविजयजी द्वारा अपने चिंतन निंबधों में

उट्टंकित है उसी के आधार प्रमाण से यहाँ उसे योग्य समझकर स्वीकारा गया है अर्थात् मनगडंत नई कल्पना अपनी नहीं दी गई है । क्रमांक-४६,४७,४८,४९ ये चार विछिन्न हो गये हैं ।

(४८) कप्पिया-कल्पिका :- नंदी सूत्र में यह नाम भूल से अधिक लिखा जाने लगा । अर्थात् जब निरियावलिका एक शास्त्र के पाँच वर्ग को पाँच शास्त्र रूप में लिखा जाने लगा तब वैकल्पिक नाम के रूप में यह नाम अधिक लिखा गया । ऐसा यह लिपि दोष मात्र से भूल से बढ गया है ।

(४९) दृष्टिवाद :- यह बारहवाँ अंग नंदी रचना के आस-पास पूर्ण विच्छेद मान लिया गया है अत: ३२ और ४५ आगम संख्या में इसे नहीं गिनकर ११ अंग शास्त्र ही गिने है । जब कि ७३ में इसकी गणना भी सामिल है अत: यहाँ इसे ४९ वाँ क्रम दिया है । यों ३२ + १७(१३) =४९(४५) ये शास्त्र आज प्रकाशित उपलब्ध है । शेष- ७३-४९=२४ शास्त्र के नाम जो यहाँ नंदी सूत्र की आगम सूचि में बताये हैं वे शास्त्र भारत के किसी भी भंडार में उपलब्ध नहीं हुए है ऐसा चिंतकों के लेखन से ज्ञात होता है ।

-: नंदी सूत्रोक्त २४ अनुपलब्ध आगम :-

नंदी सूत्र की आगम सूचि में अंग-१२, कालिक-३१ + उत्कालिक-२९ + १ आवश्यक कुल ७३ आगम श्रुत के नाम आज मौजुद है । जिसमें से १ बारहवा अंग विच्छेद गया है और १ कल्पिका नाम भूलपात्र है अत: वास्तव में ७१ आगम नंदी सूत्र की लिस्ट में होते है । उसमें से ३२ आगम स्थानकवासी में मान्य किये गये है अत: ७१-३२ = ३९ नंदी सूत्रोक्त आगम अवशेष रहते हैं । उसमें से उपलब्ध १५ + अनुपलब्ध २४ = ३९ होते है । उपलब्ध-१५ का परिचय ऊपर क्रमांक ३३ से ४७ तक में दिया है । यों कुल-४७ (-२ = ४५) आगम नंदी सूत्रोक्त आज उपलब्ध प्रकाशित है । शेष ७१-४७=२४ आगम अनुपलब्ध है अर्थात् उनकी हस्तलिखित या

प्रकाशित किसी भी प्रकार की प्रत आज नहीं मिलती है अर्थात् नंदी सूत्रोक्त ये २४ आगम नाम रूप से ही आज मिलते है । अत: इनका कुछ भी परिचय अप्राप्त है । वे २४ नाम इस प्रकार है- नंदी सूत्रोक्त अप्राप्त सूत्र २४ में १२ उत्कालिक एवं १२ कालिक सूत्र है ।

अनुपलब्ध १२ उत्कालिक आगम :- (१) कल्प्याकल्प्य (२) महाप्रज्ञापना (३) प्रमादाप्रमाद (४) पोरिषीमंडल (५) मंडलप्रवेश (६) विद्याचरण **विनिश्चय** (७) ध्यान विभक्ति (८) मरण विभक्ति (इसे मरण समाधि नामक ग्रंथ में ले लिया है) (८) वीतरागश्रुत (१०) संलेखना श्रुत (११) विहारकल्प (१२) चरणविधि ।

अनुपलब्ध १२ कालिक आगम :- (१) क्षुल्लिका विमान प्रविभक्ति (२) महल्लिका विमान प्रविभक्ति (३) वियाहचूलिया (४) अरुणो-पपात (५) वरुणोपपात (६) गरुलोपपात (७) धरणोपपात (८) वेसमणोपपात (९) वेलंधरोपपात (१०) देविंद्रोपपात (११) उत्थान श्रुत (१२) नागपरियावनिका ।

ये २४ शास्त्र देवर्द्धिगणि के बाद के मध्यकाल में कभी उपलब्ध थे इसीलिये इनका नंदी सूत्र में नाम है । पर तु अज्ञात काल से इन सूत्रों की कोई भी प्रत किसी भी भारत के भंडारों में उपलब्ध नहीं हुई है अत: इन नंदी सूत्रोक्त २४ शास्त्र को नहीं मिलने से विछिन्न मान सकते है । मिलने वाले ३२ के सिवाय १३ शास्त्रों का परिचय उपर क्रमांक ३३ से ४५ में दिया है । उन १३ शास्त्रों का नंदी सूत्र में नाम है उपलब्ध प्रकाशित है उसमें महानिशीथ सूत्र के सिवाय किसी में भी आगम विरुद्ध, जैन सिद्धांत विरुद्ध कोई भी तत्त्व नहीं लगता है । फिर भी स्थानकवासी उन १३ को आगम क्यों नहीं मानते हैं इसका विचार करना चाहिये और देरावासी भी १३ में से ६ को आगम मानते है ७ को ४५ आगम में नहीं मानते है । ६ में से ५ को प्रकीर्णक विभाग में और एक महानिशीथ को छेद शास्त्र विभाग में मानते है। ५ प्रकीर्णक नंदी में नहीं कहे को भी आगम में मानते है यह उनकी अपनी स्वतंत्रता है ।

नंदी में नहीं कहे माने जाने वाले ५ प्रकीर्णक – (१) चतुःशरण पइण्णा (२) भक्त परिज्ञा (३) संस्तारक प्रकीर्णक (४) गच्छाचार प्रकीर्णक (५) मरणसमाधि प्रकीर्णक । नंदी में नहीं कहे ३ व्याख्या ग्रंथों को आगम मानते है- (१) पंच कल्प भाष्य (२) पिंड निर्युक्ति (३) ओघनिर्युक्ति । यों ५ + ३ = ८ कुल ग्रंथों के नाम नंदी में नहीं होने पर भी देरावासी इन्हें ४५ आगम में मानते हैं यह उनका स्वतंत्र स्वबुद्धि निर्णय है ।

नंदी में कहे ७ को आगम नहीं माने जाते :- वर्तमान में देरावासी नंदी सूत्र में कहे और उपलब्ध होने वाले सात को ४५ आगम में नहीं गिनते है यथा- (१) ऋषिभाषित (२) समुत्थान श्रुत (३) चंद्रावेद्यक (कोई कभी इसे मानकर दूसरे को छोडते) (४) आत्मविशोधि (५) दीपसागर प्रज्ञप्ति (६) अंगचूलिका (७) वर्गचूलिका ।

विशेष :- स्थानक वासी पर परा में मान्य ३२ आगम शरू से आज तक निश्चित एक रूप से माने जा रहे हैं, उनमें कोई भी परिवर्तन या विकल्प भेद आजतक नहीं है ।

देरावासी जो १३ आगम अधिक मानते है उसमें (१) जीतकल्प (२) पंचकल्प (३) पाक्षिक सूत्र (४) वीरस्तव (५) गच्छाचार प्रकीर्णक (६) चंद्रावेद्यक (७) मरण समाधि (८) पिंड निर्युक्ति-ओघनिर्युक्ति(ये दो ग्रंथ है इनमें से कहीं १ को कहीं दोनों को गिनते है ।) (८) पर्युषणा कल्प सूत्र (१०) क्षमापना सूत्र (११) वंदित्तु सूत्र (१२) ऋषिभाषित (१३) समुत्थान सूत्र । इत्यादि को कोई अपनी लिस्ट में रखते हैं कोई निकालते है ऐसे अनेक विकल्प इन १३ नामों में जगह-जगह पाये जाते है । ऐसी विक्रम की १४ वीं सदी से आज २१ वीं सदी तक परिवर्तन भिन्नता मिलती है । इसे देरावासी संत एवं विद्वान श्रावक अपने निबंधो में स्वयं स्वीकारते हैं ।

जब कि स्थानकवासी की पर परा लोकाशाह से आजतक एक रूप में ही निश्चित देखी मानी जाती है । इसका कारण यह है कि देरावासी ने नंदी के आगम सूचि का कायदा भी कायम नहीं रखा

है अर्थात् उसमें नहीं होने वाले ग्रंथों को भी आगम कहने की प्रणाली अकारण चला दी है तथा व्याख्याग्रंथ भाष्य, निर्युक्ति में भी किसी को आगम कह देते है और किसी निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका को आगम नहीं मानते है । उसी से उक्त अनिश्चितता रूप अव्यवस्था हुई है, होती रहती है । स्थानकवासी नंदी सूत्र की ७३ की आगम सूचि की मर्यादा में ही रहते है उसका उल्लंघन नहीं करते हैं। यह दोनों जैन समुदायों की सोच और निर्णायकता में फरक है ।

नंदी सिवाय आगमोक्त अनुपलब्ध साहित्य ::

१६ आगम ग्रंथो के नाम नंदी के सिवाय यत्रतत्र मिलते हैं और वे अनुपलब्ध है । उनके नाम और स्थल इस प्रकार हैं-

आगम ग्रंथ	आगम में नाम निर्देश
(१) आत्म विभक्ति	पाक्षिकसूत्र, योगनंदी(प्राचीन ग्रंथ है ।)
(२) कृतिकर्म	धवला ग्रंथ में
(३) चारण स्वप्न भावना	व्यवहारसूत्र, पाक्षिकसूत्र और योगनंदी
(४) तेजोनिसर्ग	व्यवहारसूत्र, पाक्षिकसूत्र और योगनंदी में
(५) दीर्घ दशा	ठाणांग सूत्र में
(६) दृष्टिविष भावना	व्यवहारसूत्र, पाक्षिकसूत्र और योगनंदी में
(७) दोगिद्धि दशा	ठाणांग सूत्र में
(८) पुण्डरीक	धवला ग्रंथ में
(९) बंध दशा	ठाणांग सूत्र में
(१०) मरण विशुद्धि	योगनंदी में
(११) महापुंडरिक	धवला ग्रंथ में
(१२) महास्वप्न भावना	व्यवहारसूत्र, पाक्षिकसूत्र और योगनंदी में
(१३) वैनयिक	धवला ग्रंथ में
(१४) संक्षेपिक दशा	ठाणांग सूत्र में
(१५) संग्रहणी	विधिमार्गप्रपा ग्रंथ में
(१६) आशीविष भावना	व्यवहारसूत्र, पाक्षिकसूत्र(देरावासी मान्य आगम)और योगनंदी में

❖❖❖

आचारा ग सूत्र १

जैनागमों में प्रमुख शास्त्रों को अ ग शास्त्र कहा गया है । उनकी स ख्या–१२ कही गई है । जिसमें से अभी ग्यारह शास्त्र हक्त । बारहवाँ अ गशास्त्र अभी उपलब्ध नहीं है । शास्त्र की भाषा में उसका विच्छेद हो गया है । इन अ ग शास्त्रों में आचारा ग सूत्र प्रथम अ ग शास्त्र है ।

इस सूत्र के दो विभाग हक्त, जिसे शास्त्र की भाषा में श्रुतस्क ध कहा गया है । दोनों श्रुतस्क ध में क्रमश: ९+१६ = २५ अध्ययन कहे गये हक्त । जिसमें से सातवाँ अध्ययन अभी नहीं है, विच्छेद हो गया है; अत: अभी ८+ १६ =२४ अध्ययन हक्त । प्रथम श्रुतस्क ध के सभी अध्ययनों में उद्देशेहक्त। द्वितीय श्रुतस्क ध के १से ७ तक के अध्ययनों में उद्देशे हक्त। शेष में उद्देशे नहीं है । उद्देशों की स ख्या भिन्न-भिन्न है । वह स ख्या २ से लेकर ११ तक है । दोनों विभागों के कुल उद्देशक ४४+२५ = ६९ हक्त । सूत्र के बडे विभाग को श्रुतस्क ध कहा गया है। जिसमें अध्ययन और उद्देशे क्रमश: विभाग और प्रतिविभाग के नाम से हक्त । किसी सूत्र में केवल अध्ययन ही होते हक्त । अध्ययनों के अ दर जहाँ प्रति विभाग होते हक्त उन्हें उद्देशक कहा जाता है।

किसी शास्त्र में अध्ययन नहीं कहकर सीधे उद्देशे ही कहे गये हक्त। कहीं अध्ययन की जगह शतक, पद, वक्षस्कार, पाहुड, पडिवत्ति शब्द प्रयोग भी हुए हक्त। अत: ये सभी शब्द सूत्रों के अध्ययन, प्रतिअध्ययन के रूप में प्रयुक्त विभागवाची शब्द हक्त, ऐसा समझना चाहिए ।

रचनाकार गणधर :–अ ग शास्त्रों की रचना गणधर प्रभु करते हक्त। अत: आचारा ग सूत्र गणधर रचित है । वर्तमान में उपलब्ध ग्यारह अ ग सूत्र सुधर्मास्वामी के बनाये हुए माने जाते हक्त कि तु प्रार भ में ये शास्त्र नाम रहित केवल गणधर रचित ही कहे जाते हक्त । द्वादशा गी सभी गणधर मिलकर ही बनातेहक्त ।

किसी भी शासन में धर्म शास्त्र अलग-अलग नहीं होते अर्थात् ऋषभदेव भगवान के ८४ गणधरों के ८४ आचारा ग सूत्र, ८४

सूयगडा ग सूत्र बने और महावीर भगवान के ११ गणधरों के ९ आचारा ग, ९ सूयगडा ग सूत्र बने, ऐसा कभी भी नहीं समझना चाहिए और किसी भी धर्म में ऐसा होता भी नहीं है । यह कल्पना परम्परा ठीक नहीं है । गणधर अलग-अलग विभागों में, गणों में, शिष्यों को विभाजित करके अध्ययन कराते हक्त वे उनके गण कहे जाते हक्त । गणों के नाम शास्त्र में बताये हक्त वे गणधरों के नाम से नहीं कि तु अन्य नाम से हक्त । जैसे गुजरात में स प्रदायों के नाम आचार्य या गुरु के नाम से न होकर गा वों के नाम से होते हक्त ।

द्वादशा गी एक :– सार यह है कि एक तीर्थंकर के शासन में एक ही आचारा ग सूत्र होता है अनेक नहीं। सभी गणधरों को गणधर लब्धि होती है, वे सभी मिलकर सर्व स मति से एक ही द्वादशा गी बनाते हक्त अत: प्राचीन काल में अ गशास्त्र गणधर रचित कहे जाते थे । वर्तमान में ये शास्त्र सुधर्मा स्वामी की रचना है, ऐसा कहा जाता है । वास्तव में मूल जैनागम बिना नाम से समुच्चय **गणधर रचित** है । क्यों कि किसी एक गणधर की रचना नहीं है, सभी गणधरों की सम्मिलित रचना है और ये मूल शास्त्र सभी गणधरों के लिये आत्मागम भी इसलिए है कि सभी को यह ज्ञान स्वत: उत्पन्न होता है । किसी भी ट्रस्ट आदि के स विधान सभी प्रमुख मिलकर ही बनाते हक्त । श्रमण स घ के नियम विधान सभी प्रमुख स त मिलकर बनाते हक्त । वे स विधान अकेले आचार्य के नहीं कहे जाते । अत: द्वादशा गी सभी गणधरों की एक ही होती है और वह सामान्यत: गणधरों की रचना कही जाती है । वर्तमान में अमुक द्रष्टिकोण से या भ्रम से सुधर्मा की वाचना प्रचलित हो गई है।

व्याख्याकार एव प्रकाशन :– इस सूत्र पर अनेक व्याख्याएँ बनाई गई है । वर्तमान में प्रचलित प्राचीन व्याख्या शीला काचार्य की मिलती है । उसके आधार से बाद के अनेक आचार्यों की अनेक भाषाओं में बनी व्याख्याएँ मिलती है । शीला काचार्य के पहले भी इस सूत्र पर तीन व्याख्याएँ प्राकृत भाषा में बनाई गई थी । उन व्याख्याओं को निर्युक्ति, भाष्य तथा चूर्णि कहा गया है । इन तीनों प्राकृत व्याख्याओं को आधार रखते हुए शीला काचार्य ने स स्कृत में व्याख्या की है । ये सभी प्राकृत स स्कृत प्राचीन व्याख्याएँ आज प्रकाशित मिलती है।

जिनदासगणी महत्तर ने इस सूत्र पर चूर्णि व्याख्या की है । जो प्राकृत में गद्यमय है । श्रीमद् जयाचार्यजी ने हिंदी पद्यमय व्याख्या राजस्थानी भाषा में लिखी है । मुनि स तबालजी ने इसका गुजराती अनुवाद किया है । तेराप थी आचार्य महाप्रज्ञजी ने आचारा ग भाष्य बनाकर उसका हिंदी एव अ ग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित करवाया ।

इसके अतिरिक्त श्वे॰स्थानकवासी जैन पर परा में आचार्य श्री अमोलखऋषिजी म॰सा॰, आचार्य श्री घासीलालजी म॰सा॰, आचार्य श्री आत्मारामजी म॰सा॰ तथा आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, सुधर्म प्रचार म डल ब्यावर से इस आगम का हिंदी में अनुवाद विवेचन प्रकाशित हुए हैं । गुरुप्राण फाउन्डेशन-राजकोट से अर्थ, विवेचन गुजराती भाषा में प्रकाशित हुआ है ।

आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰सा॰द्वारा स पादित आगम सारा श तथा आगम प्रश्नोत्तर हिंदी एव गुजराती भाषा में इस सूत्र का प्रकाशित हुआ है। बीकानेर से अगरचन्द भेरुदान सेठिया जैन पारमार्थिक स स्था से इस सूत्र का शब्दार्थयुक्त हिंदी अनुवाद प्रकाशित हुआ है।

विषय वस्तु :- इस सूत्र के दो विभाग-श्रुतस्क ध हक्त । पहले विभाग में साधु के लिये प्रार भिक त्याग-वैराग्य का तथा आध्यात्मिक भावों के विकास का और द्रढ विचारों से तप स यम साधना में आगे से आगे बढने का तथा तत्स ब धी स स्कारों को पुष्ट करने वाला उपदेश है । दूसरे विभाग में साधु जीवन में उपयोगी प्रवृत्ति स ब धी आचार के नियम बताये गये हक्त । यथा-आहार, मकान, विहार, वस्त्र, पात्र, भाषा आदि आदि।

इसके अतिरिक्त दोनों विभागों के अ त में भगवान महावीर स्वामी के जीवन का वर्णन भी है। पहले श्रुतस्क ध के नवमें अध्ययन में भगवान महावीर की स यम साधना काल के घटितों का वर्णन है। दूसरे श्रुतस्क ध के प द्रहवें अध्ययन में भगवान महावीर का जन्म वर्णन, परिवार वर्णन तथा दीक्षा विधि वर्णन आदि है ।

प्रथम श्रुतस्क ध का परिचय :-

अध्ययन	विषय
१. शस्त्र परिज्ञा	छः काय के जीवों का, उनकी हिंसा और दया का विवेक ज्ञान ।
२. लोक विजय	स सार स्वरूप और उससे विरक्ति ।
३. शीतोष्णीय	अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति में एव कष्टों में समभाव रखना ।
४. सम्यकत्व	श्रद्धा एव अटल आस्था की प्रमुखता के वर्णन है।
५. लोक सार	आर भ-परिग्रह स सार है, उससे मुक्त होना स यम है।
६. धूत कर्म	धूनने में, क्षय करने में पराक्रम करने का उपदेश।
७. महा परिज्ञा	यह अध्ययन नहीं है ।अनुपलब्ध है ।
८. विमोक्ष	शरीर से और स सार से मुक्त होने की साधना, स थारा ।
९. उपधान	भगवान महावीर की तप,स यम,परीषह-उपसर्ग युक्त साधना का वर्णन है ।

द्वितीय श्रुतस्क ध का परिचय :-

अध्ययन	विषय
१. पि डेषणा	आहार पानी की गवेषणा आदि ।
२. शय्यैषणा	मकान, घास, पाट आदि की गवेषणा एव ग्रहण करने की विधि ।
३. ईर्या	विहार, चातुर्मास, गमनागमन ।
४. भाषा	भाषा स ब धी विधि निषेध ।
५. वस्त्रैषणा	वस्त्रग्रहण, गवेषणा एव उपयोग ।
६. पात्रैषणा	पात्र ग्रहण, गवेषणा एव उपयोग ।
७. अवग्रह	मकान, स्थान आदि की आज्ञा ग्रहण विधि
८. स्थान	खडे रहने, एव कायोत्सर्ग करने स ब धी ।
९. निषद्या	बैठकर ध्यान, स्वाध्याय करने स ब धी ।
१०. उच्चारपासवण	पाँचवी समिति स ब धी विधि निषेध ।
११. शब्द	श्रवण वृत्ति निषेध, श्रोत्र निग्रह ।

अध्ययन	विषय
१२. रूप	चक्षु इन्द्रिय निग्रह, रूप दर्शन निषेध ।
१३. परकिरिया	गृहस्थ द्वारा शरीर परिचर्या निषेध ।
१४.अन्योन्य क्रिया	साधु-साधु परस्पर परिचर्या निषेध ।
१५. भावना	भगवान महावीर का जीवन परिचय, दीक्षा, केवलज्ञान, पाँच महाव्रतों की पचीस भावनाएँ ।
१६. विमुक्ति	मोक्षोपाय और प्रेरक १२ गाथाएँ ।

इस सूत्र के अन्य नामों की विचारणा :–न दी सूत्र और समवाया ग सूत्र में इस शास्त्र का जो परिचय मिलता है उसके अनुसार तो इस सूत्र का एक ही नाम आचार+अ ग=आचारा ग सूत्र होता है । इसमें दो श्रुतस्क ध हक्त, इन दोनों में अध्ययन और उद्देशक हक्त; अन्य कोई नाम विभाग की चर्चा नहीं है ।अत: मौलिक रूप से श्रुतस्क ध, अध्ययन, उद्देशक इतने ही विभाग रहे हक्त, वह ध्रुव सत्य है ।

काला तर से इस सूत्र के निशीथ–प्रायश्चित्त विभाग अध्ययन–उद्देशों को अलग स पादित किया गया है । उस परिवर्तन के कारण इसके नामों के अनेक विकल्प बने हक्त, जो समवाया ग सूत्र, निशीथ सूत्र, व्यवहार सूत्र, एव व्याख्याग्र थों में उपलब्ध है । यथा– प्रथम श्रुतस्क ध का **'नव ब भचेर'** नाम आगम में है और इसके अतिरिक्त 'आचार' (आयारो), आचाराग्र, आचारचूला, चूलिका, प च चूलिकाख्य, आचार प्रकल्प ये नाम हक्त । ये सभी परिवर्तन नूतन स पादन लेखन युग के उत्पन्न नाम है, ऐसा समझना चाहिये ।

वास्तव में द्वितीय श्रुतस्क ध के प्रायश्चित्त विधान वाले अध्ययनों सहित १९ अध्ययन रहे थे जो प्रथम श्रुतस्क ध के ९ अध्ययन सहित कुल २८ अध्ययन =२८ आचार प्रकल्प थे । प्रकल्प शब्द का विभाग या अध्ययन अर्थ में प्रयोग हुआ है । २८ आचार प्रकल्प का होना आवश्यक सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र एव समवाया ग सूत्र में निर्दिष्ट है । छेद सूत्रों में स पूर्ण आचारा ग सूत्र को आचार प्रकल्प अध्ययन कहा गया है । आचारा ग सूत्र के मौलिक २८ अध्ययन इस प्रकार थे–

प्रथम श्रुतस्क ध के	९	अध्ययन
द्वितीय श्रुतस्क ध के	१४	अध्ययन क्रमश: है, जो वर्तमान में उपलब्ध है ।
पृथक् किये निशीथ के	५	अध्ययन–गुरु मासिक, लघु–मासिक, गुरुचौमासिक, लघु–चौमासिक, आरोपणा ।
कुल–	**२८**	

प्रायश्चित्त के ५ अध्ययन अलग करने पर २३ अध्ययन अवशेष रहते हक्त । उनके साथ 'भावना' और 'विमुक्ति' दो अध्ययन स्थाना ग सूत्र कथित "ब धदशा नामक सूत्र" के सातवें और आठवें अध्ययन–'भावना और विमुक्ति' को यहाँ रखने से पच्चीस हो जाते हक्त । फिर कालान्तर से ग्र थों में इन दोनों अध्ययनों को दो चूलिका कह कर महाविदेह क्षेत्र से लाने का और यहाँ जोड देने का कथन कर दिया गया। बाद में पाँच चूलिका हो गई है ।

इस प्रकार इस द्वितीय श्रुतस्क ध के नाम और विभागों में परिवर्तन होता रहा है और प्रायश्चित्त विभाग रूप अध्ययनों को अलग करना जिसका मूल कारण बना है ।

नौ अध्ययनों का स क्षिप्त सार :–

प्रथम अध्ययन :– इस अध्ययन के प्रथम उद्देशक में समुच्चय सिद्धा त–जीव, कर्म, स सार और स यम तथा सच्चे ज्ञानी का कथन करके फिर दूसरे से सातवें तक के छ: उद्देशों में छ:काय जीवों का स्वरूप, उनकी हिंसा और उसका परिणाम बताकर फिर हिंसा त्याग की प्रेरणा और उस त्याग का परिणाम बताया गया है ।

प्रत्येक(छहों) उद्देशों के प्रार भ में त्याग, वैराग्य, स यम, प्रेरणा, अनासक्ति, स सार स्वरूप, आसक्ति, जीवदयाभाव आदि थोडा उपदेश कुछ वाक्यों में स्वत त्र रूप से देने के बाद फिर प्रास गिक क्रम प्राप्त छ:काय जीवों का विषय लिया गया है ।

प्रत्येक उद्देशे के अ त में विराधना(आर भ) करने वाला वास्तविक

ज्ञाता नहीं माना गया है कि तु पाप का त्याग करने वाले को वास्तविक ज्ञाता माना है । यह शुद्ध नय दृष्टि का कथन करके फिर तीन करण से अर्थात् करना, कराना, अनुमोदन करना रूप हिंसा त्याग के प्रतिज्ञामय उपदेश वाक्य कहे हैं । अ त में पुनः एक वाक्य से सभी उद्देशों में सर्वथा हिंसा त्यागी को परिज्ञातकर्मा अर्थात् कर्मों को समझ कर उनसे मुक्त होने वाला कहा है । इस अ तिम वाक्य में पृथ्वी और अग्नि इन दो के लिये उनके कर्म अर्थात् व्यापार का त्यागी होना कहा है । शेष पानी आदि में उनके शस्त्र का त्यागी होना कहा है ।

तात्पर्य यह है कि पृथ्वी को खोदना आदि पृथ्वी स ब धी कर्म-कार्यों का त्याग करना कहा है और अग्नि जलाना आदि अग्नि स ब धी कार्यों का त्याग करना कहा है, जब कि पानी, वनस्पति, त्रस आदि को किसी शस्त्र से नहीं मारने का कहा गया है । **यथा- जस्सेते पुढवि कम्म समार भा परिण्णाया भव ति से हु मुणी परिण्णाय कम्मे त्ति बेमि । जस्सेते उदय सत्थ समार भा...। जस्सेते अगणि कम्म समार भा...। जस्सेते वणस्सइ सत्थ समार भा...। जस्सेते तसकाय सत्थ समार भा... ।**

सातवें उद्देशक में वायुकाय के विषय समाप्ति के बाद पुनः छज्जीवनिकाय के नाम से समुच्चय कथन किया गया है, उसके भी प्रार भ में उपदेश और शिक्षा की बात कही है । जिसमें यह बताया है कि दीक्षा लेकर भी जो आचार में रमण नहीं करके स्वच्छ दाचारी बन जाते हक्त, वे अनेकविध आर भ में पड कर कर्मब ध बढाते हक्त । यह जानकर बुद्धिमान साधक को पाप कार्यों का सेवन नहीं करना चाहिये । फिर अ त में छज्जीवनिकाय हिंसा के त्यागी को परिज्ञात कर्मा उसी पूर्व के वाक्य से कहा गया है । सार यह है कि साधक आत्माएँ तत्त्व-ज्ञानी भी बने और पापों के त्यागी भी बनें ।

दूसरा अध्ययन :- इस अध्ययन में छः उद्देशे हक्त । इस अध्ययन के दो नाम प्रतिफलित होते हक्त- (१) लोक विजय (२) लोक विचय ।

१- स सार की मोह माया को तथा प्राप्त शरीर की क्षणभ गुरता को समझना; स्वजन आदि स्वार्थी है; यह जानकर मोह स सार से ऊपर

उठकर, उदासीन होकर, वैराग्य भावित स यम जीवन स्वीकार करके साधक सदा के लिये स सार से विजय प्राप्त कर ले । इस प्रकार इस नाम से पराक्रम और पुरुषार्थ की प्रेरणा मिलती है । २- विचय का अर्थ है- चि तन, अन्वेषण । इस अध्ययन में वैराग्य एव धर्म ध्यान के प्रेरक चि तन भरे पडे हक्त । अनित्य, अशरण, स सार आदि भावनाओं को जगह जगह बल दिया गया है । अतः यह अध्ययन आत्मचि तन एव वैराग्य चि तन मूलक होने से इसका 'लोक विचय' नाम भी घटित होता है ।

कषाय रूपी भावलोक में मोह, मान को जीतने का कथन है और विषय रूपी भावलोक में स्त्री एव विषय स ग का कटु विपाक बताया है । पाँच इन्द्रिय विषयों को तो **कामगुण** शब्द से कहा गया है और इन गुणों को स सार का मूल कहा है । इस प्रकार विषय और कषाय रूप भावलोक पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा देना भी इस अध्ययन का मुख्य घोष है ।

तीसरा अध्ययन-'शीतोष्णीय' इस अध्ययन का नाम है । शीत से अनुकूलताओं का और उष्ण शब्द से प्रतिकूलताओं का सूचन है ।

स यम जीवन में प्राप्त होने वाली स सारी रुचि की आकर्षक या उसे बढाने वाली अनुकूलताएँ, शब्द आदि इन्द्रिय विषयों के स योग, शीत परीषह है । कष्ट, उपसर्ग एव प्रतिकूलताएँ ये उष्ण परीषह है । इन दोनों प्रकार के स योगों में स यम भावों को स्थिर रखना, आगे बढाते रहना, इस विषय का इस अध्ययन में अधिकतम उपदेश दिया गया है ।

इस अध्ययन में चार उद्देशे हक्त । **पहले उद्देशे में-** सुप्त कौन और जागृत कौन, इस विषय से अध्ययन का प्रार भ है । फिर आदर्श साधुत्व के गुण, समभाव प्रेरणा, दुःख, जन्म-मरण, किसको और कैसे ? उनसे मुक्ति किसको ? पर्यवजात शस्त्र और अशस्त्र का स ब ध, कर्म ही स सार है, उन कर्मों से और उन कर्मों के पीछे रहने वाले पाप और राग द्वेष से मुक्त होने का उपदेश है । **दूसरे उद्देशे में-** पापकर्मों का स ग्रह कौन करता, कौन नहीं करता, धैर्य के साथ कर्म क्षय करने की प्रेरणा, स सारी वृत्ति को चालणी में जल भरने की उपमा; हिंसा से, स्त्रियों से और कषाय से निवृत्त होने का उपदेश देकर अ त में मनुष्य

भव के अवसर को अहिंसक बनकर सफल करने की प्रेरणा की गई है । **तीसरे उद्देशे में**– अहिंसकता में अ तरमानस का भाव, स यम की सावधानी और उसके लाभ, लौकिक भ्रमपूर्ण मान्यता और सही समझ, स यम में दृढता, आत्म निग्रह से मुक्ति इत्यादि मुख्य विषय है । **चौथे उद्देशे में**– कषाय त्याग और प्रमाद त्याग तथा उसका उत्तम परिणाम बताया है ।

चौथा अध्ययन– इस अध्ययन का नाम 'सम्यक्त्व' है । इस अध्ययन के प्रथम उद्देशे के प्रार भ में धर्म के विषय में मौलिक श्रद्धा निष्ठा की प्रेरणा की गई है और श्रद्धा का स्वरूप भी बताया है । दूसरे उद्देशे में भी पीछे के वर्णन में श्रद्धा का विषय है । चौथे उद्देशे के अ त में अर्थात् इस अध्ययन के अ त में वीतराग मार्ग की श्रद्धा के साथ उसके पालन के प्रतिज्ञावचन कहे हक्त । इस प्रकार सम्यक्त्व की प्रमुखता से इस अध्ययन में उपदेश वचन होने से इसके सम्यक्त्व नामकरण की सार्थकता प्रतीत होती है । इसके चार उद्देशे हक्त ।

प्रथम उद्देशे में– तीर्थंकरों का अहिंसा मूलक उपदेश, इस धर्म की महत्ता और अप्रमत्त भाव से आचरण की प्रेरणा है । **दूसरे उद्देशे में**– विवेक बुद्धि से आश्रव प्रस गों में भी निर्जरा, स सार रुचि वालों को दु:ख स्थानों का अभ्यास–परिचय, मिथ्यामत वालों के हिंसा मूलक सिद्धात का ख डन और अहिंसा की स्थापना की गई है । **तीसरे उद्देशे में**– आत्म लक्ष्य की मुख्यता के साथ वैराग्य वृद्धि का उपदेश, शरीर के मोहत्याग युक्त वीरता से कर्म क्षय की प्रेरणा और अ त में कषाय और प्रतिकषाय त्याग की प्रेरणा की गई है । **चौथे उद्देशे में**– शरीर के अलक्ष्य की और कर्म क्षय की उत्कट प्रेरणा से उद्देशक का प्रार भ है। फिर कर्मों का विचार, उनकी सफलता, अ त में वीतराग मार्ग में चलने की प्रतिज्ञा के वाक्य हक्त ।

पाँचवाँ अध्ययन :–इस अध्ययन का नाम **लोकसार** है । **आव ति** भी इसका नाम कहा गया है । अध्ययन के आदि शब्द से भी नामकरण होता है । इस अपेक्षा से अध्ययन के प्रथम सूत्र में आये प्रथम 'आव ति' शब्द के अनुसार नाम है जो कि अर्थ प्रमुख नाम नहीं है ।

आध्यात्मिक दृष्टि से और लौकिक दृष्टि से स सार में सारभूत पदार्थ दो तरह के होते हक्त । लौकिक दृष्टि में धन, परिवार, सुख सामग्री की उपलब्धि, शरीर एव भौतिक श्रेष्ठतम पदार्थों को सारभूत समझा जाता है। आध्यात्मिक दृष्टि से सारभूत पदार्थ– आत्मा, मोक्ष, मोक्ष प्राप्ति के साधन धर्म, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, कर्मक्षय के विविध उपाय, मोक्ष प्राप्ति में सम्यग् पुरुषार्थ आदि है । ये सभी लोक में आत्मा के लिये परम हितकारी सार तत्त्व हक्त । ऐसे सर्वोत्तम सार तत्त्वों का इस अध्ययन में वर्णन होने से इस अध्ययन का यह 'लोकसार' नाम सार्थक है ।

इस अध्ययन में छह उद्देशे हक्त । उनमें क्रमश: मुख्य वर्णन इस प्रकार है– **प्रथम उद्देशक में**– स सारी जीवों की परिणति, भोगासक्ति एव उसका क्रमिक परिणाम, ब्रह्मचर्य सुरक्षा, अयोग्य एकाकी भिक्षु इत्यादि विषयों का वर्णन करके अ त में अज्ञानवादी का कथन है । **दूसरे उद्देशक में**– अमूल्य अवसर मानव देह, सम्यक् पर्याय, शरीर स्वभाव, परिग्रह, ब्रह्मचर्य और परिणामों से ब ध तथा मुक्ति का स केत करके अ त में अप्रमत्त साधना की प्रेरणा दी गई है । **तीसरे उद्देशक में**– अपरिग्रही स यमी और उसकी त्रिविध अवस्था, इन्द्रिय विषय आसक्ति और पाप सेवन से स यमच्युत होना, आत्मयुद्ध, सम्यक् स यम पालन प्रेरणा, अ त में वास्तविक मुक्त, विरत का कथन है ।**चौथे उद्देशक में**– अपरिपक्व मुनि को एकाकी चर्चा निषेध एव गुरुसानिध्य प्रेरणा, स्त्री परीषह एव ब्रह्मचर्य समाधि उपायरूप शिक्षा वचन कहे गयेहक्त । **पाँचवें उद्देशक में**– महर्षि को द्रह की उपमा, सम्यक्त्व की विशुद्धि, स यम विचारों में सम्यक् असम्यक् विविध परिणति । अहिंसक भाव की समझाइस, अ त में आत्मवादी आत्मज्ञानी का कथन है । **छट्ठे उद्देशक में**– अनाज्ञा से आज्ञा में, अन्यमत से स्वमत में स्थिर रहने की प्रेरणा, आगमानुसार स यम पराक्रम प्रेरणा, स सार श्रोत और उससे मुक्ति, अ त में सिद्धात्मा के अनेक लक्षण परिचय कहे हक्त ।

छट्ठा अध्ययन–इस अध्ययन का नाम 'धूय' या 'धूत' है । इस शब्द का अर्थ होता है धुनना, झाडना। यहाँ पर आत्मा से कर्मों को

हटाकर अलग करने के पुरुषार्थ के रूप में इस शब्द का प्रयोग हुआ है । **धूयते अष्ट प्रकार कर्म येन तद् धूतम् स यमानुष्ठान ।**

इस प्रकार स यम अर्थ में भी इस 'धूत' शब्द का प्रयोग हुआ है अर्थात् कर्म क्षय करने के जो भी तरीके है, त्याग प्रत्याख्यान, तप, स यम, साधनाएँ हक़ऊन सभी को 'धूत' शब्द से ग्रहण किया जा सकता है ।

इस अध्ययन में त्याग की प्रेरणा तथा वैराग्य भावों की वृद्धि के साथ स यम ग्रहण कर, कर्म क्षय करने का उपदेश ही प्रमुख है । अत: यह 'धूत' नाम इस अध्ययन का सार्थक कहा गया है ।

इस अध्ययन में पाँच उद्देशेक्ह । उनमें उपदेश वर्णन इस प्रकार है- **पहले उद्देशे में-** धर्मोपदेश सुनकर त्यागी बनने वालों का और स सार में रहकर अनेक रोगात क प्राप्त कर दु:खी होने वालों का वर्णन है । इसके अतिरिक्त स यम ग्रहण करने का और किसी के द्वारा उससे विचलित करने पर भी स्थिर रहने का उपदेश है । **दूसरे उद्देशे में-** स यम ग्रहण कर कामभोगों की चाहना से स यम पतितों का और साथ ही स यम में दृढ रहकर कष्ट, उपसर्गों को सहन करने वाले सफल साधकों का विस्तृत वर्णन है । अ त में एकल विहारचर्या से भी उत्तम आराधना करने वाले प्रशस्त साधकों का सूचन किया गया है। **तीसरे उद्देशे में-** स यम साधना में भी अचेल साधना का महात्म्य बताया गया है । दीर्घ स यमी की साधना की विशेषता बताकर शिष्य के प्रति कर्तव्य बताया गया है । **चौथे उद्देशे में-** गुरु के द्वारा कर्तव्य पालन करने पर भी शिष्य की अविनीतता, धीठता और स यम से अध:पतन का विविध प्रकारों से विस्तृत वर्णन किया गया है। अ त में प डित साधकों को आगमानुसार ही चलने की हित शिक्षा दी गई है । **पाँचवें उद्देशे में-** स यमी की सहनशीलता बताकर, उपदेश देने के तरीके एव विषय निर्देश किये हक्त । फिर स यम में दृढ रहने का, कषाय मुक्ति का एव अ त में शरीर ममत्व त्याग कर पादपोपगमन प डित मरण प्राप्त करने का उपदेश है।**सातवाँ अध्ययन नहीं है ।**

आठवाँ अध्ययन-इस अध्ययन का नाम 'विमोक्ष' है । इसमें अन्य अनेक साधना वर्णनों के होते हुए भी जीवन की अ तिम साधना के

वर्णन की बहुलता है । पिछले चार उद्देशों के अ त में स लेखना स थारा एव अ तिम आराधना का, कर्म विमुक्ति का वर्णन है । जिसमें पाँचवें उद्देशे में भक्त प्रत्याख्यान अनशन का, छट्ठे उद्देशे में इ गिनीमरण अनशन का और सातवें उद्देशे में पादपोपगमन अनशन का वर्णन करके उन्हें विमोक्षायतन कहा है । आठवें उद्देशे में पूर्णत: तीनों अनशन और उसके पूर्व की स लेखना साधना का ही वर्णन है, अन्य कोई वर्णन नहीं है । इस प्रकार विमोक्ष के आयतनों के वर्णन की मुख्यता होने से 'विमोक्ष' नाम पूर्ण सार्थक है ।

इस अध्ययन में कुल आठ उद्देशे हक्त । उनमें मुख्य वर्णन इस प्रकार है- **प्रथम उद्देशक में-** समनोज्ञ समाचारी वाले, साधुओं का असमनोज्ञ समाचारी वाले और अन्यतीर्थिक साधु के साथ आहार का लेन देन, अन्यतीर्थिकों की प्ररूपणा का ज्ञान, जिनमत का अहिंसक आचार । **दूसरे उद्देशक में-** आहार, वस्त्र आदि का निम त्रण और गवेषणा तथा तन्निमित्तक वध परीषह, एव समनोज्ञ असमनोज्ञ जैन श्रमण के साथ आहार आदि व्यवहार । **तीसरे उद्देशक में-** जवानी में दीक्षित साधु की विकट साधना । लोगों का भ्रम और उसका निवारण, एव सावधानी से स यम समाचारी पालन ।**चौथे उद्देशक में-** तीन वस्त्र (चद्दर) की प्रतिज्ञा आठ मास के लिये धारण करने वाले की साधना एव अ त में ब्रह्मचर्य भ ग न करने के लिये वेहायस मरण (फाँसी) का स केत और आराधना । **पाँचवें उद्देशक में-** दो वस्त्र की पडिमा, निर्बलता में भी सामने लाया कुछ भी ग्रहण नहीं करने की दृढता, वैयावृत्य स ब धी प्रतिज्ञा-पडिमा की चौभ गी, अ त में अस्पष्ट भक्त प्रत्याख्यान का स केत कि तु उसकी आराधना का स्पष्ट कथन है । **छट्ठे उद्देशक में-** एक वस्त्र की आठ मास की पडिमा का वर्णन, अनासक्त भाव से आहार करने की विधि का निर्देश, अ त में इ गिनी मरण अनशन का वर्णन है । **सातवें उद्देशक में-** आठ मास निर्वस्त्र रहने की पडिमा अथवा कटिब धन(चोलपट्टक) मात्र धारण। आहार आदान प्रदान स ब धी पडिमा और चौभ गी, अ त में पादपोपगमन स थारा का वर्णन है । **आठवें उद्देशक में-** तीन प्रकार के प डितमरण- स थारा का पद्यात्मक वर्णन है ।

नौवाँ अध्ययन– इस अध्ययन का नाम 'उपधान श्रुत' है । इसमें भगवान महावीर स्वामी के छद्मस्थ अवस्था के स यम पर्याय में आचरित विविध साधनाओं एव तप उपसर्ग आदि का कि चित् स कलन और दिग्दर्शन है । पूरा अध्ययन गाथामय–पद्यमय है ।

इस अध्ययन में ४ उद्देशों में भगवान महावीर स्वामी का स यम जीवन वर्णन इस प्रकार है– **प्रथम उद्देशक में–** स यम ग्रहण के पूर्व का आचरण, स यम ग्रहण के बाद की साधनाएँ, साधना और धर्म स ब धी सिद्धा त, समिति गुप्ति के पालन की विधियाँ एव देवदूष्य वस्त्र ग्रहण करने का और उसके व्युत्सर्जन–छोड़ने का वर्णन है । **दूसरे उद्देशक में–** स यम के विचरणकाल में निवास करने के मकानों–शय्याओं का, उनमें होने वाले कष्ट उपसर्गों का और भगवान की सहनशीलता का वर्णन है । **तीसरे उद्देशक में–** अनार्य क्षेत्र में विचरण का, अनार्य लोगों द्वारा दिये जाने वाले घोर रोमा चकारी उपसर्गों का और भगवान की शूरवीरता का वर्णन है । **चौथे उद्देशक में–** भगवान की अनशन, ऊणोदरी, रस परित्याग आदि तपस्याओं का, गोचरी की गवेषणा विधियों का, ध्यान करने का और अप्रमाद का अर्थात् प्रमाद(दोष सेवन) नहीं करने का वर्णन है ।

सूयगडा ग सूत्र २

उपलब्ध ग्यारह अ गशास्त्रों में यह सूत्र दूसरा अ ग सूत्र है । इसका प्राकृत नाम सूयगडा ग सूत्र है। प्रचलित भाषा में इसे सूत्रकृता ग सूत्र कहा जाता है ।

इस सूत्र के मुख्य दो विभाग हक्त, जिन्हें दो श्रुतस्क ध कहा है । फिर उनमें अध्ययन, उद्देशक रूप विभाग, प्रतिविभाग हक्त । प्रथम श्रुतस्क ध में सोलह अध्ययन हक्त । जिसमें प्रथम के पाँच अध्ययन तक उद्देशक रूप प्रतिविभाग ह्क। आगे के अध्ययनों में प्रतिविभाग नहीं हक्त । दूसरे श्रुत–स्क ध में सात अध्ययन हक्त ।उनमें भी कोई प्रतिविभाग नहीं है ।

रचनाकार गणधर :– उपलब्ध ग्यारह अ गसूत्रों की रचना गणधर करते हक्त । जैसे लोकसभा, विधानसभा या कोई ट्रस्ट आदि के स विधान सभी म त्रीगण, प्रमुखलोग या ट्रस्टी गण मिलकर करते हक्त । कभी एक प्रमुख के निर्णय में सभी सहमत हो जाते हक्त । उसी तरह तीर्थंकर की प्रथम देशना में प्रतिबुद्ध आत्माओं में से कुछ (गणधर) लब्धि स पन्न शिष्य होते हक्त । उन सभी गणधरों को द्वादशा गी का श्रुत स्मृति में आ जाता है उसी के आधार से वे अपने शासन योग्य द्वादशा गी का स पादन, गु थन प्रभु आज्ञा से करके शिष्यों को सिखाना प्रार भ कर देते हक्त । इस प्रकार १२ अ ग गणधर रचित कहे जाते हक्त । वे गणधर अपना नाम शास्त्रों में नहीं डालते और गौतम की द्वादशा गी या सुधर्मा की द्वादशा गी ऐसा भेद भी वे नहीं पटकते हक्त । क्यों कि एक साथ रहना और अपनी अपनी द्वादशा गी अलग करना फिर १०–२० वर्ष में वे अनेक गणधर मोक्ष चले जाय तो उनकी द्वादशा गी नष्ट हो जाना और भगवान महावीर के शासन में ३० वर्ष बाद आठ द्वादशा गी को समाप्त कर सुधर्मा की द्वादशा गी ही चलाने की कल्पना यह सब अस गत कल्पना मात्र है ।

आज जो भी सुधर्मा, ज बू, गौतम आदि के नाम आगम में मिलते हैं वे सब उस प्रार भ समय में नहीं थे और सुधर्मा स्वामी के समय भी नहीं थे क्यों कि सुधर्मा स्वामी शास्त्रों में अपना और अपने एक शिष्य का नाम क्यों डाले ? ये नामों की उपलब्धियाँ शास्त्रों में बाद की

वाचनाओं, स कलन, लेखन, स पादन के समय की स भव है ।

द्वादशा गी एक या अनेक :- एक बात और समझने की है कि सुधर्मा स्वामी के ५०० शिष्य उनकी द्वादशा गी सीखे, शेष हजारों साधु अन्य द्वादशा गी(आठ प्रकार की) सीखे । फिर ३० वर्ष बाद सब को सुधर्मा की द्वादशा गी में शामिल होना पड़े। यह तो शिष्यों के ज्ञान का, मेहनत का और आगमों का एक प्रकार का खिलवाड़ ही कहा जायेगा । एक ही स्कूल के एक ही कक्षा के **अ ब स द** चार विभाग रूप महावीर शासन के विद्यार्थियों के ये नौ श्रमणगण होते हक्त । महाविदेह क्षेत्र की अलग-अलग विजय में भिन्नता हो तो कोई बात नहीं पर तु एक ही तीर्थंकर प्रभु के निश्राय में एक मकान में बैठकर पढने और स्वाध्याय चर्चा करने वालों के मौलिक शास्त्र ही भिन्न भिन्न प्रकार के हों, यह उचित्त नहीं है । ऐसी धारणा पर परा कभी भी चली हो कि तु वह बहुत गलत कल्पना हुई है ।

सार यह है कि एक तीर्थंकर के जितने भी १०-२०-१०० गणधर हों वे सभी मिलकर एक द्वादशा गी का अपने उपस्थित श्रुतज्ञान के आधार से भगवदाज्ञा से स पादन गु थन अपने शासन योग्य कर लेते हक्त फिर अलग-अलग टुकड़ी में शिष्यों को एक ही प्रकार की द्वादशा गी सिखाई जाती है ताकि वे सभी मिलकर परस्पर में क ठस्थ स्वाध्याय को कभी भी सुन समझ सकते हक्त । १०-२० या ३०-४० वर्ष बाद उन्हें दूसरी द्वादशा गी वालों से उलझने की जरूरत नहीं पड़ती है । आचारा ग सूत्र क ठस्थ है तो किसी भी गणधर का विद्यार्थी, अन्य दूसरे गणधर के विद्यार्थी के साथ स्वाध्याय करने सुनने या प्रमाण देने बैठ जाय तो कोई उलझन पैदा नहीं होगी । अन्यथा एक कहेगा भगवती सूत्र उस शतक, उस उद्देशक में यह बात कही है, दूसरा कहेगा यह गलत है वह बात तो दूसरी जगह आई है इत्यादि ।

व्याख्या एव प्रकाशन :- इस सूत्र पर उपलब्ध प्राचीन व्याख्या शीला काचार्य की है । उसके पूर्व इस सूत्र पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णिरूप व्याख्याएँ बनाई गई थी । उसी का आधार लेकर आचार्य शीला क ने स स्कृत टीका

बनाई। अन्य भी व्याख्या अपूर्ण, पूर्ण बनी होगी कि तु वे उपलब्ध नहीं हक्त । निर्युक्ति भाष्य भी आज स्वत त्र उपलब्ध नहीं है । जिनदास गणी की चूर्णि स्वत त्र उपलब्ध है । शीला काचार्य के बाद अनेक विद्वानों ने सूयगडा ग पर व्याख्याएँ की है जो हिंदी, गुजराती, स स्कृत आदि भाषाओं में उपलब्ध है । इसके अतिरिक्त श्वे॰स्थानकवासी जैन पर परा में आचार्य श्री अमोलखऋषिजी म॰सा॰, आचार्य श्री घासीलालजी म॰सा॰, आचार्य श्री आत्मारामजी म॰सा॰ तथा आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, सुधर्म प्रचार म डल ब्यावर से इस आगम का हिंदी में अनुवाद विवेचन प्रकाशित हुए हैं । गुरुप्राण फाउन्डेशन-राजकोट से अर्थ, विवेचन गुजराती भाषा में प्रकाशित हुआ है । आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰सा॰द्वारा स पादित आगम सारा श तथा आगम प्रश्नोत्तर हिंदी एव गुजराती भाषा में इस सूत्र का प्रकाशित हुआ है।

सूत्र विषय :- इस सूत्र के दो विभाग हक्त । प्रथम विभाग रूप प्रथम श्रुतस्क ध के १-२ अध्ययन में मतमता तरों की चर्चा के साथ स्वमत और साधु के आचार का कथन है । चौथे अध्ययन में स्त्री परीषह स ब धी तथा पाँचवें अध्ययन में नरक दु:खों का वर्णन है और छट्ठे अध्ययन में भगवान महावीर स्वामी की स्तुति के साथ साध्वाचार का कुछ कथन है । अन्य सभी अध्ययन में प्राय: साध्वाचार और उपदेश है ।

दूसरे श्रुतस्क ध के सात अध्ययनों में स्वत त्र विषय है ।जिसमें तत्त्व, चर्चा, साध्वाचार, उपदेश एव मतमता तर के विषय हक्त ।

प्रथम श्रुतस्क ध के १६ अध्ययन है उनके नाम इस प्रकार हैं- (१) समय (२) वेतालीय (३) उपसर्ग (४) स्त्री परिज्ञा (५) नरक विभक्ति (६) वीरस्तुति (७) कुशील परिभाषित (८) वीर्य (९) धर्म (१०) समाधि (११) मार्ग (१ २) समवसरण (१३) यथातथ्य (१४) ग्र थ (१५) यमतीत-आदानीय (१६) गाथा ।

दूसरे श्रुतस्क ध के ७ अध्ययनों के नाम और विषय इस प्रकार है-

नाम	विषय
१. पु डरीक कमल	कमल प्राप्ति के इच्छुक पाँच पुरुषों की उपमा से चार मता तर एव जिनमत के श्रमण ।
२. क्रियास्थान	तेरह क्रिया स्थान एव धर्म-अधर्म पक्ष का स्वरूप ।
३. आहार परिज्ञा	समस्त जीवों के आहार विषयक विविध विचारणा ।
४. प्रत्याख्यानक्रिया	अप्रत्याख्यानी जीवों का स्वरूप एव प्रत्याख्यान माहात्म्य ।
५. अनाचार श्रुत	अनाचरणीय-श्रद्धा, प्ररूपणा एव प्रवृत्तियाँ ।
६. आर्द्रकीय	अनार्य क्षेत्रीय आर्द्रकुमार की दीक्षा एव अन्य तीर्थिक स वाद ।
७. उदक-पेढालपुत्र (नाल दीय)	नाल दा में गौतमस्वामी और उदक पेढाल पुत्र पार्श्वस्थविर की धर्म चर्चा ।

अध्ययनों का स क्षिप्त सार :-

अध्ययन-१ : इस अध्ययन में चार उद्देशक हक्त । इस अध्ययन का नाम **समय** है । समय शब्द के अनेक अर्थ हक्त पर तु यहाँ भावात्मक अर्थ है- सिद्धा त । नाम के अनुसार ही इस अध्ययन में स्वसिद्धा त और अन्य मतमता तरों के सिद्धा तों का कथन किया गया है । इसलिये इसका **समय** सार्थक नाम है ।

मक्त कौन हूँ ? मनुष्य कैसे बना हूँ ? मक्त शुद्ध आत्मा हूँ, कर्म स ब ध से स सार में रूप परिवर्तित करते हुए मनुष्य बना हूँ । आत्मा कर्म ब धनों में क्यों पडता है, कर्मों का कर्त्ता कौन है, इन कर्मों का स्वरूप क्या है इन्हें कौन तोड सकता है ? स सार में कर्म ब ध के मुख्य कारण हिंसा और परिग्रह हक्त । साथ ही पारिवारिक मोह स ब ध भी स सार का मुख्य हेतु है । प्राणियों की हिंसा करने से या दु:ख देने से आत्मा में वैर की वृद्धि होती है । ममत्वभाव युक्त पदार्थों का स ग्रह करना परिग्रह कहलाता है और पारिवारिक लोगों में अत्य त मोह-मूर्च्छा, आसक्ति दु:ख हेतुक है । इस प्रकार आत्मस्वरूप, कर्मस्वरूप तथा ब ध और मुक्त होने का स्वरूप एव कर्म ब ध के मुख्य एव अन्य

सभी हेतुओं को जानना चाहिये और इन ब ध के हेतुओं का सर्वथा या आ शिक त्याग करना ही मुक्ति की साधना है । यही स्वसिद्धा त है । इसे समझे बिना अन्य भिन्न भिन्न सिद्धा तों में फ स कर प्राणी आर भ परिग्रह में या काम भोगों में आसक्त रहतेक्त ह ।

मूल पाठ में मुख्यता और स क्षिप्तता से कहा गया है । विस्तार की अपेक्षा असत्य, चोरी, कुशील आदि सभी पापों एव आश्रवस्थानों को समझ लेना चाहिये ।

सातवीं गाथा से अठारहवीं गाथा तक इस अध्ययन के प्रथम उद्देशक में ६ प्रकार के सिद्धा त-मतमता तर बताये हक्त, वे ये हक्त- **(१)** पाँच महाभूतवाद **(२)** एकात्मवाद **(३)** तज्जीव-तत्शरीरवाद **(४)** अकारक वाद **(५)** आत्मषष्टवाद **(६)** क्षणिकवाद- इसके दो रूप हक्त- १. प च स्क धवाद २. चार धातुवाद । इसके अतिरिक्त **(७)** नियति-वाद **(८)** अज्ञानवाद **(९)** कर्मोपचयनिषेधवाद (क्रियावादी) **(१०)** जगत्कर्तृत्ववाद **(११)** अवतारवाद **(१२)** लोकवाद, वगेरे स ब धी स केत भी है ।

इस अध्ययन के तीसरे उद्देशक में आधाकर्म दोष के आ शिक मिश्रण से दूषित पूतिकर्म आहार सेवन से स यम के दूषित होने का कथन किया गया है और चतुर्थ उद्देशक के अ त में अहिंसा धर्म और चारित्र शुद्धि, आहार आदि की विशुद्धि तथा कषाय त्याग प्रेरणात्मक मोक्षमार्ग का कथन किया गया हक्त ।

अध्ययन-२ : इस अध्ययन के तीन उद्देशक हक्त उनमें मुख्य विषय कर्म क्षय करने का अर्थात् कर्म विदारण का है । इसके स दर्भ में वैराग्यप्रद उपदेश, स यम आराधना हेतु हितशिक्षाएँ, कषाय विजय, परीषह जय कष्टसहिष्णुता आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है । अ त में अज्ञानी जीवों की दशा बताकर मुक्ति साधना की प्रेरणा दी गई है । इस प्रकार कर्म विदारण का उपदेश होने से इस अध्ययन का वैतालीय नाम सार्थक है ।

इस अध्ययन का वैराग्यप्रद उपदेश :- (१) बीती हुई रात्रियाँ वापिस नहीं आती । **(२)** मनुष्य जीवन पुन: मिलना मुश्किल है ।

(३) प्राणी स्वय कर्म बा धता है फिर उसका फल उसे ही भुगतना पडता है । (४) गर्भ से लेकर वृद्धावस्था तक की सभी अवस्थाओं में आयुष्य समाप्त होने पर जीव मर जाते हक्त अर्थात् मृत्यु का कोई समय नहीं (५) परिवार में मोह रखने से सद्गति मिलने वाली नहीं है । (६) देव, दानव, राजा, सेठ, पशु, कीडे सभी आयु समाप्त होने पर दु:खी होकर भी अपने स्थान को छोडते ही हक्त । (७) विपुल भोग सामग्री और परिवार है तो भी जीव को अकेले ही अकेले कर्मों के साथ जाना पडता है । (८) मनुष्य जीवन नाशवान है यह जानकर, हे पुरुष ! पाप कार्यों का त्याग कर । (९) यह जीवन बढाया नहीं जा सकता फिर भी अज्ञानी प्राणी वर्तमान को ही देखते हैं और कहते हक्त कि परभव किसने देखा है ? (१०) गृहस्थ जीवन में भी प्राणियों का स यम करे, समता भाव में रहते हुए व्रतों का आराधन करे तो वह व्यक्ति भी देवगति में जाता है । (११) धन परिवार को बाल-अज्ञानी जीव शरणभूत मानते है कि तु दु:ख या मौत आने पर अकेले ही भुगतना पडता है । (१२) स सार में प्राणी अपने-अपने किये कर्मों के फल से व्यक्त या अव्यक्त दु:खों से दु:खी होकर भटकते रहते हक्त । (१३) इस मनुष्य भव के अवसर को समझो ! अन्यत्र ऐसी बोधि और आराधना दु:शक्य है । (१४) गृहस्थ जीवन इस लोक में भी दुष्कर है और परभव में भी दु:खकर है यह समझ कर कौन घर में रहेगा ?

अध्ययन–३ : इस अध्ययन में चार उद्देशक हक्त । उनमें विविध प्रकार के उपसर्गों में सुरक्षित रहने का उपदेश है। उपसर्ग प्रतिकूल-कष्टदायक भी वर्णित है, स यम स ब धी परीषह रूप भी है, मोहजनित भी कहे गये हक्त और अन्यतीर्थिकों द्वारा आने वाले आचारविचार स ब धी भी हक्त । उपसर्गों का ज्ञान और उनसे सावधानी का वर्णन होने से इस अध्ययन का "उपसर्ग परिज्ञा" नाम भी सार्थक है ।

शास्त्रकार कहते हक्त कि ऐसे अनेक कष्ट परीषह स यम में आते हक्त । इसके लिये योग्य धैर्य स जोकर ही दीक्षा लेना चाहिये अन्यथा जो कायर साधक होते हक्त, वे ऐसे स यम के कष्टों में घबराकर पुन: घर चले जाते हक्त । जैसे कि बाँणों से आहत घबराया हुआ हाथी रण मैदान छोडकर भाग जाता है । पर तु परिपक्व और वीर साधक स यम में डटे रहते हक्त ।

अध्ययन–४ : इस अध्ययन में दो उद्देशक हक्त दोनों में स्त्री स ब धी वर्णन है । जिसमें स्त्रियाँ किन आचरणों से साधु को फुसला सकती है? स्त्री के फ दे में पड जाने वाले की क्या-क्या दशा होती है ? यह बताने के साथ साधु को सावधान रहने का उपदेश है । अ त में स्त्री स ग से भ्रष्ट स यम छोडने वाले की स्त्री द्वारा होने वाली विड बनाओं का चित्रण कर पुन: सावधान रहने का उपदेश दिया गया है । इस प्रकार स पूर्ण वर्णन स्त्री स ब धी होने से अध्ययन का 'स्त्री परिज्ञा' नाम सार्थक है ।

सावधान रहने का उपदेश :– मृग की तरह जाल में फँस जाने के बाद छूटना कठिन होता है । जैसे मा स के लिये सि ह पींजरे में पकडा जाता है वैसे साधु भी ब धन में जकडा जाता है । विष मिश्रित खीर खाने के बाद पश्चात्ताप करना पडता है । इसलिये विवेकी साधक विष लिप्त क टक के समान समझकर स्त्री स सर्ग से दूर रहे । अपनी पारिवारिक बेटी, पोती, दोहित्री, पुत्रवधु आदि के अतिस पर्क से भी दूर रहे । दीर्घ तपस्वी भिक्षु भी स्त्री स सर्ग में सावधान रहे । जिस प्रकार लाख का घडा अग्नि से तप्त होने पर नष्ट हो जाता है इसी तरह स्त्री स सर्ग से अणगार के साधुत्व को खतरा रहता है । हे साधक ! सूअर को फँसाने के लिये चावल के दाने के समान इन स्त्री प्रलोभनों को समझ कर सावधान रहो । ये स्त्रियाँ ब्रह्मचारी पुरुष के लिये भय रूप है, खतरे पैदा करने वाली है । कल्याणकारी नहीं है। यह जानकर कभी भी स्त्री का स्पर्श नहीं करे । चाहे वह स्त्री पशु हो या मानव । स्त्री से सुरक्षित रहने में या शील को कायम रखने में मन वचन काया का कोई भी कष्ट सहना पडे तो भी स्वीकार करे । इस प्रकार वीर प्रभू ने कहा है कि साधक अपने मोह कर्म को धुने, क्षय करे, अध्यवसायों को विशुद्ध रखे ।

स्त्री स ग की विड बनाएँ :– इस अध्ययन के दूसरे उद्देशक की गाथा ९ से १८ तक में ऐसी विड बनाओं का चित्रण किया है । जिसका सार अ तिम अठारवीं गाथा में बताया गया है कि इस प्रकार जो साधु भोगों में पडता है, स्त्री के वश में चला जाता है, फिर उसे दास की

तरह, भोले नौकर की तरह और पशु की तरह होकर स्त्री के और घर के कार्य करने पडते हक्त । स्त्री भी दास के साथ के समान व्यवहार करने लग जाती है । प्रार भिक गाथाओं में घर-गृहस्थी के कार्य, स्त्री के व्यक्तिगत कार्य या शरीर सेवा एव उत्पन्न पुत्रों की सार स भाल आदि विविध विड बनाएँ कहीक्त्ह, जिन्हें स सार के अनुभवी लोग अच्छी तरह जानते हक्त । इस प्रकार कामासक्त साधक दास से भी हीन दशा को प्राप्त करता है । उभय लोक बिगाड़ देता है। इसलिये मोक्षमार्ग को पाकर अणगार स्त्री परिचय, स पर्क वृद्धि में पहले से ही सावधान रहे । यही इस स्त्रीपरिज्ञा अध्ययन के विस्तृत वर्णन का उद्देश्य है ।

अध्ययन–५ : इस अध्ययन में दो उद्देशक हक्त । उनमें नरक स ब धी वर्णन अनेक प्रकार से किया गया है । जिसमें नरक के विभिन्न दु:खों का वर्णन है, उसके साथ ही कुछ शिक्षा उपदेश वचन है । अनेक विभागों-प्रकारों से नरक का वर्णन होने से इस अध्ययन का **नरक विभक्ति** नाम सार्थक है ।

जो बाल अज्ञानी जीव इस जीवन के लिये घोर पापकर्म करते हक्त वे घोर नरक में जाते हक्त । अपने सुख के लिये तीव्र परिणामों से त्रस जीवों को मारते हक्त, चोरियाँ करते हक्त, सदाचरण कुछ भी नहीं करते हक्त, पाप करने की आदत वाले बन जाते हक्त । क्रोधादि कषायाग्नि जिनकी बुझती नहीं है ऐसे जीव नरक में अधोमुख होकर जन्म लेते हक्त ।

जो स्वय अपनी आत्म व चना करते हक्त, सैकडों अधम भवों से क्रूर कर्म करते हक्त वे नरक में जाते हक्त। जो जैसे कर्म करते हक्त वैसे ही कर्मों से भारी होकर नरक में जाते हक्त । अनार्य पुरुष पाप उपार्जन करके कर्मों से पराधीन होकर नरक में जाते हक्त । दुष्कृत कर्म करने वाले बाल अज्ञानी जीव नरक में जाकर पूर्वकृत कर्मों को वेदतेक्त्ह ।

धीर पुरुष नरक गमन के कारणों को जानकर उनसे बचने का उपाय सोचे; समग्र लोक में किसी भी जीव की हिंसा न करे; परिग्रह त्याग करे, समस्त पापों का त्याग करे । आत्म तत्त्व और जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा रखे । अशुभ कर्म करके अशुभ फल भोगने वाले जीव लोक के स्वरूप को जाने कि तु उस प्रवाह में न बहे । चारों गति के कृत

कर्म फल दु:ख को जाने । मोक्ष लक्ष्य रखकर स यम धर्म का आचरण करे । प डित मरण की आका क्षा रखे । इस प्रकार के सदगुणों को धारण करने वाला सदा के लिये नरक गति के दु:खों से छूट जाता है ।

अध्ययन–६ : इस अध्ययन में नाम के अनुसार ही समस्त वर्णन भगवान महावीर स्वामी की स्तुति गुणानुवाद रूप है । अत: सार्थक नाम है– महावीर स्तुति । इसमें उद्देशक नहीं है । आगे भी उद्देशक नहीं है ।

भगवान की स यमचर्या और उपलब्धियाँ :– परम महर्षि भगवान का ज्ञान, आचार और दर्शन अनुत्तर था । उसके द्वारा ही उन्होंने स पूर्ण कर्म क्षय कर सादि अन त सिद्ध गति को प्राप्त किया । तप-उपधान में भगवान सर्वोपरि थे । कहीं पर भी आसक्ति नहीं रखते थे, स ग्रह नहीं करते, चारों कषायों से पूर्णतया अलग रहते, कोई भी पाप का सेवन नहीं करते, नहीं कराते । क्रियावादी आदि एका तवादी को जानकर अपने अनेका तिक स यम में स्थित रहते । प्रभु स्त्रियों का और रात्रिभोजन का पूर्ण वर्जन करते, कर्म क्षय के लिये तपस्या करते थे । वे उभय–लोक को जानकर सर्व पापों का वर्जन करने में समर्थ थे । अर्हत् भाषित इस धर्म की श्रद्धा रखकर आराधना करने वाले साधक मुक्त हो जाते हक्त अथवा देवगति में जाते हक्त ।

अध्ययन–७ : इस अध्ययन में आचार–विचार की अपेक्षा कुशील श्रमणों के विषय में प्रतिपादन किया गया है एव उनके दुर्गति गमन आदि परिणाम बताये गये हक्त। इसलिये 'कुशील परिभाषा' यह नाम सार्थक है ।

स्वतीर्थिक और परतीर्थिक दोनों प्रकार की कुशीलता के वर्णन के साथ ही सुशीलता की प्रेरणा की गई है । प्रार भ में स सारी प्राणियों की कुशीलता और उसका परिणाम बताया है ।

अध्ययन–८ : इस अध्ययन में बाल और प डित जीवों के सकर्मवीर्य (बालवीर्य) और अकर्मवीर्य(प डित वीर्य) का वर्णन है । यहाँ वीर्य का अर्थ है– पराक्रम, पुरुषार्थ । दोनों प्रकार के वीर्यों का वर्णन होने से अध्ययन का सार्थक नाम 'वीर्य' है । प्रमाद है वह सकर्म है और अप्रमाद है वह अकर्म है ।

अध्ययन–९ : जीवन में धर्म की आवश्यकता और उपयोगिता समझाकर स यम धर्म की प्रेरणा, स यम धर्म के मूल गुणों के पालन की प्रेरणा, उत्तरगुण स ब धी दोषों को जानकर उसके त्यागने का स देश, भाषा विवेक एव गुणवृद्धि हेतु हित शिक्षाएँ सूचित की गई है । इस प्रकार धर्म बोध एव स यम धर्म के वर्णन युक्त इस अध्ययन का 'धर्म' नाम सार्थक एव उपयुक्त है ।

धर्म बोध :– इस स सार में अर्थात् मानव स सार में जो भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, चा डाल आदि लोग हक्त वे सभी वर्तमान जीवन के उद्देश्य से आर भ और परिग्रह में व्यस्त हक्त और साथ ही आर भ से उत्पन्न विषय सुखों में लीन रहते हक्त । जिससे वे स सार में कर्मों की और वैर की वृद्धि करके दु:ख पर परा बढाते रहते हक्त कि तु वे दु:खों का अ त नहीं कर पाते । मनुष्य जीवन में मृत्यु आने पर पाप से स ग्रहित धन अन्य पारिवारिक लोगों के काम आता है । मृतक के दाह स स्कार आदि कृत्य करके वे लोग उस मृत व्यक्ति का धन ले लेते हक्त, बाँट लेते हक्त कि तु उस व्यक्ति के कर्म तो उसके साथ ही चले जाते हक्त । उन्हें कोई नहीं लेता है, नहीं बाँट सकता है । उन कर्मों से उस प्राणी को स्वय ही दु:खी होना पडता है, चाहे वे नरक योग्य कर्म है या अन्य गति के । असहाय होकर उसे अकेले ही भोगने पडते हक्त ।

उस दु:ख के समय माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र आदि कोई भी सहायता करने नहीं पहुँचते, ये स ब ध यहीं छूट जाते हक्त, स ब धी लोग उस व्यक्ति के पापकृत धन से मौज करते हक्त । इस परमार्थ का विचार करके भिक्षु ज्ञातिजनों का त्याग करके एव समस्त शोक स ताप को छोडकर इसलोक की प्रवृत्तियों से निरपेक्ष होकर स यम में विचरण करे ।

अध्ययन–१० : इस अध्ययन में मुख्यतया मुनि द्वारा ग्रहण किये हुए चारित्र की समाधि सफलता किस प्रकार हो सकती है? वह चारित्र सुरक्षित, निराबाध किस प्रकार जीवनपर्यंत रह सकता है? आत्मसमाधि, आत्म-प्रसन्नता, आत्म स तुष्ठी किस तरह बनी रहे इस प्रकार की शिक्षाओं, सूचनाओं से युक्त इस अध्ययन का 'समाधि' यह नाम सार्थक है ।

समाधि की प्राप्ति :– अध्ययन की तेरहवीं एव अ तिम गाथाओं में उपस हार के रूप में शिक्षा वचन इस प्रकार है– **(१)** स्त्री एव मैथुन से विरत रहने वाला, परिग्रह से परे रहने वाला एव विविध इन्द्रिय विषयों से आत्मा को पूर्ण सुरक्षित रखने वाला अथवा छकाय रक्षक भिक्षु अर्थात् प्रथम, चतुर्थ और पाँचवें महाव्रत को सुरक्षित रख सकने वाला; नि:स देह समस्त महाव्रतों और स यम नियमों को सुरक्षित रखकर स यम समाधि एव आत्म समाधि को प्राप्त होता है। **(२)** जिस तरह वन्य प्राणी ज गल में सि ह आदि हिंसक पशुओं से सदा सावधान और बचकर रहते हक्तउसी प्रकार स यम साधक सदा पाप से बचता रहे, सावधान रहे, दूर रहे । **(३)** धर्म बोध को प्राप्त करके बुद्धिमान पापों से निवृत्त होवे । क्यों कि हिंसा आदि पाप ही महान दु:ख और अधर्म के जनक क्त । **(४)** आत्मार्थी मुनि असत्य न बोले एव अन्य पाप भी न करे, न करावे तथा अनुमोदन भी न करे । **(५)** शुद्ध आहार मिल जाय तो भी उसे परिभोगेषणा दोषों से दूषित न करे, आसक्ति का त्याग करे । निर्दोष आहार से निर्वाह करके भी यश-कीर्ति-पूजा-प्रतिष्ठा के लिये स यम खराब न करे । इनसे मुक्त रहकर स यम में विचरण करे। **(६)** घर छोडने के बाद मुनि अन्य कोई आका क्षा न रखे, काया का ममत्व छोडकर कर्म काटे तथा जीवन मरण की आशा या भय से मुक्त होकर साधना करता हुआ स सार चक्र से विमुक्त हो जावे ।

इस प्रकार इस अध्ययन में स यम समाधि एव आत्म समाधि के माध्यम से ज्ञान दर्शन चारित्र तप की विशुद्धि के साथ मोक्ष की उत्तम आराधना दर्शाई गई है ।

अध्ययन–११ : इस अध्ययन का नाम 'मार्ग' है । जो मोक्षमार्ग–निर्वाणमार्ग की मुख्यता से है । अध्ययन में मार्ग जानने की जिज्ञासा के साथ स क्षिप्त में २–४ मुद्दे निर्वाण मार्ग के, एक मुद्दा मिश्रमार्ग-पुण्यमार्ग का, कुछ मुद्दे अनिर्वाण मार्ग के, छिद्रोवाली नावा के दृष्टा त के साथ कहे गये हक्त । अ त में स यम मार्ग की आराधना का उद्बोधन किया गया है । इसलिये इस अध्ययन का छोटा सा नाम 'मार्ग' यह पूर्ण रूप से सार्थक है ।

दानशाला, प्याऊ एव दानापीठ विचारणा :- इन कार्यों की प्रेरणा श्रावक समाज में मानवता एव जीवों को सुख सुविधा देने की दृष्टि से होती रहती है । जैन मुनि की अपनी विशेष मर्यादा होती है, भाषा विवेक भी उसका विशिष्ट होता है । अत: वह इन विषयों की एका तिक चर्चा में नहीं उलझे । मुनि श्रोताओं को जीवों का स्वरुप और उनके दु:ख का स्वरुप बताकर अनुक पा रस का सिंचन कर सकता है तथा पुण्य-पाप तत्त्व का समुच्चय स्वरुप समझा सकता है । पर तु उक्त स्थानों, कार्यों की स्पष्ट अनुमोदना प्रेरणा नहीं कर सकता । साथ ही इनका निषेध भी नहीं कर सकता है । गृहस्थ अनुक पा रस से और अपने कर्तव्य से स्वय ये कार्य करते हक्त । शास्त्रकार इस अध्ययन में स्पष्टीकरण करते हक्त कि मुनि इन स्थानों, कार्यों को धर्म या पुण्य कहकर स्पष्ट प्रेरणा करे तो वहाँ होने वाले आर भ समार भ की अनुमोदना-प्रेरणा होने से साधु का प्रथम महाव्रत दूषित होता है । यदि प्रतिपक्ष में होकर साधु गृहस्थों द्वारा किये जाने वाले अनुक पा के इन कार्यों का निषेध करे अथवा इन्हें पाप या अधर्म बतावे तो भी उसका प्रथम महाव्रत दूषित होता है । क्यों कि ऐसा करने में प्राणियों की जीवनवृत्ति का छेद-अ तराय दोष लगता है; जो कि हिंसा रूप है । अत: जैन मुनि उक्त विषयों में अर्थात् दान-पुण्य के स्थलों अथवा कार्यों स ब धी पक्ष-प्रतिपक्ष रूप किसी भी आग्रह में न पडे, दोनों पक्ष की भाषा न बोले और विवेक के साथ कर्म ब ध से बचे, तो वह निर्वाण मार्ग की सही आराधना कर सकता है । सार यह है कि मुनि उपस्थित परिषद के योग्य जीव तत्त्व, पुण्य-पाप तत्त्व का स्वरूप, अनुक पा धर्म का समुच्चय स्वरूप, यथावसर समझावें किन्तु उपरोक्त स्थलों या कार्यों की स्पष्ट चर्चा में न जावे ।

अध्ययन-१२ : इस अध्ययन का नाम 'समवसरण' है । इसमें विविध प्रकार के मत-प्रवर्तकों का "समूह-स ग्रह" **समवसरण** शब्द में विवक्षित किया गया है । तीर्थंकर के आगमन को तथा उनके व्याख्यान की परिषद को भी **'समवसरण'** शब्द से पहिचाना जाता है कि तु यहाँ ऐसा अर्थ अपेक्षित नहीं है । धर्म सिद्धा त की अपेक्षा मुख्य चार प्रकार के मता तरों में

छोटे- बड़े विभिन्न मतों का समावेश हो जाता है । इस अध्ययन में उन चारों मता तरो की एका तिक मान्यता और उसका समाधान दिया गया है । इस प्रकार चारों मता तररूप समवसरणों का वर्णन होने से इस अध्ययन का 'समवसरण' यह सार्थक नाम है ।

अध्ययन के समस्त वर्णन का तात्पर्य यह है कि उपदेष्टा और गुरु का विवेक पूर्वक परिक्षण करके ही उन्हें समर्पित होना चाहिये, बिना विवेक किसी का भी उपदेश स्वीकारना या उसके चक्कर में आना अथवा गुरु रूप में स्वीकार कर लेना, अपने जीवन की सफलता के लिये उचित नहीं है । अत: यहाँ मतमता तरों, वादियों का प्रस ग होने से मोक्षार्थी व्यक्ति कहीं गलत जगह न फँस जाय, इसलिये सच्चा उपदेष्टा और सच्चे गुरु का मार्गदर्शन अ तिम गाथाओं में स केत रूप में किया गया है ।

अध्ययन-१३ : इस अध्ययन का नाम 'यथातथ्य' है । इस अध्ययन में सुसाधु-कुसाधु का अथवा कुशील-सुशील साधु का यथार्थ-यथातथ्य-सही सचोट वर्णन किया गया है । इस कारण से इसका **'यथातथ्य'** नाम सार्थक है । इस अध्ययन के प्रार भ में **'आहत्तहीय '** पद है जिसका स स्कृत शब्द यथातथ्य बनता है । अत: आदि पद के अनुसार भी इस अध्ययन का नाम 'यथातथ्य' उपयुक्त है ।

इस अध्ययन के प्रार भ में साधुओं की कुशीलता और सुशीलता का वर्णन है । तदन तर सुशील के उन्नत गुणों का कथन करते हुए उन गुणों का महत्त्व नष्ट कर देने वाले अवगुणों का कथन किया गया है । साथ ही उन्नत गुणों से सुसाधु का विकास बताया गया है । अ त में साधु को यथातथ्य उपदेश देने का विवेक बताकर यथातथ्य आचरण से स सार मुक्त होने का स देश दिया गया है ।

उच्चकोटि के साधक :- जो साधु (१) प्रज्ञामद (२) तपोमद (३) गोत्रमद (४) लाभमद को मन से निकाल देते हक्त वे उच्च कोटि के महात्मा हक्त, प डित हक्त । जो स सार का कारण समझ कर इन मदों से आत्मा को पृथक् कर देते हक्त, जरा भी मद का सेवन नहीं करते, वे उच्च कोटि के महर्षि हक्त और गोत्र कर्म रहित मोक्ष गति को प्राप्त

करते हक्त । जो सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं, धर्म एव स यम धर्म के स्वरूप को भलीभाँति समझे हक्त, ग्राम-नगरों में विचरते हुए एषणीय अनेषणीय पदार्थों का विवेक रखते हक्त, आहार पानी आदि पदार्थों में आसक्ति भाव नहीं रखते हक्त, वे धर्मविज्ञ तथा प्रशस्त लेश्या स पन्न साधु हक्त ।

सामान्य श्रमण भी इन गुणों को धारण करने से उच्च कोटि के महात्मा बन जातेक्त । ऐसा शीला काचार्यने टीका में स्पष्ट किया है । इस प्रकार गाथा १५-१६-१७ में ये भाव कहे गये हक्त ।

एक श्रमण सर्वथा अकि चन है । भिक्षा द्वारा निर्वाह करता है । उसमें भी रूखा सूखा आहार प्राप्त करके प्राण धारण करता है । इतना उच्चाचारी होकर भी यदि वह अपनी ऋद्धि-लब्धि एव भक्तों की जमघट या ठाठ बाठ का, अपने शरीर का गर्व करता है, अपनी प्रश सा और प्रसिद्धि की आका क्षा करता है, वह जन्म-मरण की वृद्धि करता है ।

गुणों को नष्ट करने वाले अवगुण :- एक श्रमण भाषाविज्ञ है, हितमित प्रिय भाषण करता है, प्रतिभा स पन्न है, शास्त्रज्ञान में निपुण-विशारद है, प्रज्ञावान बुद्धिशाली है एव धर्म भावना से उसका हृदय अच्छी तरह से भावित है परन्तु इतने गुणों के होते हुए भी कभी अह भाव में आकर दूसरों का तिरस्कार करता रहता है, दूसरो की निंदा करता है, उन्हें झिड़क देता है, अपने लाभ के मद में अन्य की हीलना करता है । वह साधक समाधि भ्रष्ट हो जाता है । वह गुणवान होते हुए भी मूर्ख की कोटि में हो जाता है ।

ऐसे तुच्छ प्रकृति के साधक अपनी प्रज्ञा के मद में सारे गुणों पर पानी फेर देते हक्त । उनका यह लोक परलोक दोनों ही बिगडता है अर्थात् यहाँ भी निंदा पाते हक्त और विराधक बनते हक्त ।

अध्ययन-१४ : इस अध्ययन की प्रथम गाथा में आदि पद 'ग थ ' है । इस आदिपद से अध्ययन का नाम 'ग्र थ'रखा गया है । इस अध्ययन का स पूर्ण विषय भी निर्ग्रंथ के लिये है कि नवदीक्षित निर्ग्रंथ, गुरु सानिध्य में रहकर अपना सर्वांगीण विकास करे । श्रुत अध्ययन में, श्रद्धा में, आचार में, एव तपस्या, ध्यान आदि में अभ्यास पूर्वक प्रगति

करे । अस यम, कर्मब ध, मिथ्यात्व आदि ग्र थियों से दूर रहे । स यम और मुक्ति की पूर्ण पात्रता हासिल करे । गुरु शिक्षा या अन्य हितैषियों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा को स्वीकार करने की नम्रता, विनयशीलता, निरभिमानता रखे ।

वचन योग एव प्रवचनकुशलता स ब धी सद्प्रेरणा शिक्षा वचन भी इस अध्ययन में है । इस प्रकार स सार और परिग्रह रूप ग्र थी का त्याग कर निर्ग्रंथ बनने वाले नवदीक्षित को सच्चा निर्ग्रंथ एव मोक्ष आराधक बनने का मार्गदर्शन है और साथ ही स्वय तिरने का तथा अन्य को भी तिरने योग्य बनाने का मार्गदर्शन है और वही इस अध्ययन का हेतु है । इस प्रकार इस अध्ययन का नाम विषय से सार्थक भी है और आदिपद की प्रमुखता वाला भी है ।

अध्ययन-१५ : इस अध्ययन में गाथा रचना में **यमक अल कार** प्रयोग के कारण शब्दों की मुख्यता होने से विषयबद्धता नहीं है । फिर भी अध्यात्म प्रधानता और मोक्षमार्ग की प्रमुखता युक्त वर्णन है । जिसमें सम्यक् श्रद्धा, सम्यग् साधना, मनुष्यत्व और धर्माचरण की दुर्लभता, मुक्तात्माओं का अपुनरागमन और स यम साधना का परिणाम दिखाया गया है ।प्राप्त धर्म एव प्राप्त मनुष्य जन्म को जो प्राणी यों ही खो देता है, उसे पुन: मनुष्य जन्म और धर्मबोधि-धर्मज्ञान मिलना दुर्लभ हो जाता है और मोक्ष प्राप्ति के लिये प्राप्य मुख्य साधन ये दो हीहक्त। बिना मनुष्य जन्म के भी मुक्ति स भव नहीं है और धर्म समझ के बिना भी मोक्ष साधना शक्य नहीं है । इसलिये प्राप्त मानव जन्म एव प्राप्त धर्मज्ञान को सार्थक करने में पुरुषार्थ करना चाहिये, आलस्य प्रमाद में इसे नहीं गुमाना चाहिये ।

अध्ययन-१६ : इस अध्ययन का नाम 'गाथा' है । इसमें एक भी गाथा-श्लोक नहीं है । यह अध्ययन गद्यात्मक है । जब कि प द्रह अध्ययन पद्यमय है । यह अध्ययन सभी अध्ययनों से छोटा है पर तु इसमें श्रमणों के विशाल गुणों का स कलन है ।

गाथा शब्द के प्राप्त होने वाले अनेक अर्थों में एक अर्थ है- 'प्रश सा' है । इस अध्ययन में स यम साधक आत्माओं की अनेक गुणों के माध्यम से प्रश सा की गई है ।

गाथा शब्द का एक अर्थ है– 'उपदेश' । इस अध्ययन में अनेक श्रमण गुणों के स कलन द्वारा श्रमणों को इन गुणों को धारण करने की प्रेरणा प्रकट होती है और इन गुणों से समन्वित साधक ही सच्चे अर्थ में मोक्षसाधक मुनि है ।

इस अध्ययन में मोक्ष साधक मुनि के चार पर्याय शब्दों के माध्यम से गुणों का विभाजन है । यथा– (१) माहण–अहिंसक (२) श्रमण (३) भिक्षु (४) निर्ग्रंथ । माहण, श्रमण, भिक्षु और निर्ग्रंथ किसे कहा जा सकता है ? वास्तव में इन शब्दों से कहलाने योग्य कौन है ? यह इस अध्ययन में बताया गया है ।

इस प्रकार चार सूत्रों के द्वारा जैन श्रमण के अनेक गुणों का स कलन करके श्रमण को इन गुणों से युक्त होने की प्रेरणा की गई है । इस अध्ययन का यही तात्पर्य है कि श्रमण सच्चे गुणों से स पन्न बनकर सफल साधना करे ।

द्वितीय श्रुतस्क ध

अध्ययन–१ : अध्ययन के प्रार भ में जल से परिपूर्ण पुष्करणी का वर्णन है । वह पुष्करणी कमल पुष्पों से आकीर्ण है, व्याप्त है ।उन पुष्पों के मध्य एक अति सु दर अति विशालकाय पु डरीक-श्वेत-अतिश्वेत श्रेष्ठ कमल है । इस प्रकार कमल वाली पुष्करणी की कल्पना की गई है । फिर उस पु डरीक कमल को ग्रहण करने की लालसा-इच्छा वाले पुरुषों का सा गोपा ग विवरण दिया गया है । इस प्रकार "पु डरीक कमल" की प्रधानता से प्रार भ किये इस अध्ययन का **पु डरीक कमल** यह सार्थक नाम है ।

अध्ययन–२ : तेरह प्रकार की क्रियाओं का एव धर्म-अधर्म क्रिया का वर्णन होने से इस अध्ययन का नाम **क्रियास्थान** सार्थक है । तेरह क्रियास्थान के वर्णन के बाद धर्मी, अधर्मी और मिश्र ये तीन प्रकार के पुरुष कौन है, उसको दो विकल्पों से विस्तार पूर्वक समझाया है । अ त में धर्म अधर्म रूप दो पक्ष करके अधर्म पक्ष वालों को अहिंसा का पाठ मार्मिक ढ.ग से पढ़ाया है ।

अध्ययन–३ : दस औदारिक द डकों के जन्म से आहार ग्रहण करने की विधि स ब धी परिज्ञान होने से इस अध्ययन का सार्थक नाम **आहार परिज्ञा** है ।यहाँ नारकी एव देवता के आहार स ब धी वर्णन नहीं है । क्यों कि उनमें आहार स ब धी विशेष भिन्नताएँ नहीं है । सभी जन्म समय में उत्पत्ति स्थान से ओजाहार और बाद में रोमाहार ग्रहण करते हक्त किन्तु औदारिक के दस द डकों के आहार में कुछ विशेषताएँ जानने योग्य है, जो इस अध्ययन के मनन पूर्वक वा चन से स्वत: ज्ञात हो जाती है ।

अध्ययन–४ : इस अध्ययन में प्रत्याख्यान और क्रिया स ब धी निरूपण है । प्रत्याख्यान करने से पाप क्रिया-आश्रव रुक जाता हक्त । प्रत्याख्यान नहीं करने से पापक्रिया, अव्रत क्रिया लगती रहती है इसे दृष्या त के साथ समझाया है । इस प्रकार अध्ययन का नाम पूर्ण सार्थक है ।

इस अध्ययन का परमार्थ :– आत्म कल्याण के इच्छुक आत्माओं को पाप और अविरति को जिनवाणी से भलीभाँति समझ कर पापों का स पूर्ण त्यागी–विरत बनना चाहिये । जब तक पूर्ण त्याग न हो सके तब तक अपने ज्ञान का विकास करके **जितना शक्य हो** उतना पाप का, प्रवृत्तियों का, भोग-उपभोग सामग्री का और मौज शौक का त्याग करना चाहिये । विरतिमय प्रत्याख्यानमय चित्त की वृद्धि करनी चाहिये । अन्यथा अनादि पाप और भोग स स्कार आत्मा पर हावी होकर उसे(अपने आपको अपापी होने का भ्रम रहते हुए भी) पापी और अविरत बनाये रखेंगे। पाप और अविरत का परिणाम स सार परिभ्रमण और दु:ख रूप है । जब कि प्रत्याख्यान का परिणाम कर्मब ध मुक्ति और स सार दु:ख मुक्ति रूप है ।

अध्ययन–५ : इस अध्ययन के विभिन्न नाम प्राप्त होते हक्त । जिसमें आचार-विचार स ब धी वर्णन के कारण **आचारश्रुत** नाम प्रसिद्ध है । निषिद्ध आचारों का अर्थात् अनाचारों का बहुलता से वर्णन होने से **अनाचार श्रुत** नाम भी है तथा अणगार स ब धी आचार-विचार तथा अणगार के अनाचरणीय वचन आदि वर्णन होने से इस अध्ययन का नाम **अणगार श्रुत** भी पढने में आता है । इस अध्ययन में श्रद्धा-प्ररूपणा, मान्यता तथा भाषाप्रयोग स ब धी विधिनिषेधात्मक वर्णन सरल तथा

स्पष्ट भाषा में है । जिसमें साधु को एका तिक वाक्य प्रयोग नहीं करने की प्रेरणा की गई है और आवश्यक होने पर आग्रह मुक्त अनेका तिक वाक्यप्रयोग की सूचना की गई है, ऐसा समझना चाहिये ।

इस अध्ययन गत विषयों में जैसी आगम आज्ञा है, जैसा जिनेश्वर का आदेश है तदनुसार ही अपनी श्रद्धा-प्ररूपणा एवं आचरण तथा भाषा प्रयोग करना चाहिये ऐसा विवेक व्यवहार और शुद्ध संयमानुष्ठान साधक को मोक्ष प्राप्ति पर्यंत निरंतर करते रहना चाहिये । इस प्रकार की शिक्षा अध्ययन की अंतिम गाथा में दी गई है ।

अध्ययन-६ : इस अध्ययन में आर्द्रकुमार से स ब धित वर्णन होने से इसका नाम **आर्द्रकीय** है । यह अध्ययन पद्यमय है जिसमें दीक्षित आर्द्रमुनि की गोशालक, बौद्ध, वेदा तिक, सा ख्य तथा हस्तितापस आदि मतावल बियों के साथ हुई चर्चा अर्थात् सवाल जवाब है । अध्ययन की ५५ गाथाओं में मात्र तात्त्विक स वाद ही है । जिसमें आर्द्रक मुनि का नाम स बोधन रूप में उपलब्ध है उसके सिवाय उनके जीवन स ब धी वर्णन इस अध्ययन की व्याख्या निर्युक्ति भाष्य में है । मूल में नाम के अतिरिक्त कोई भी स केत नहीं है। आर्द्रकमुनि जातिस्मरण ज्ञान के कारण शुद्ध वीतराग धर्म में स्थिर बन चुके थे । अ त में भगवान महावीर की सेवा में पहुँचकर अपना आत्मकल्याण कर लिया । अन्यान्य दार्शनिकों के अभिप्रायों को देखते हुए यह स्पष्ट होता है कि वीतराग सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु का उपदिष्ट धर्म ही निर्दोष तथा पूर्ण शुद्ध धर्म है। छद्मस्थों के द्वारा चलाये गये धर्म अपूर्ण एव दोषयुक्त होते हक्त । अत: आत्मकल्याण की अभिलाषा वाले साधकों को अन्य समस्त तर्क वितर्क छोडकर केवली प्ररूपित धर्म को स्वीकार करके अपनी शक्ति अनुसार उसी धर्म में ओतप्रोत रहना चाहिये । वर्तमान समय में वीतराग धर्म में भी अनेक भेद प्रभेद जो दिखते हक्त उनमें से भी आगमाधार से अनेका तिक अहिंसामूलक सुमेल युक्त मार्ग को स्वीकार कर व्रत-प्रत्याख्यान, त्याग-तप की आराधना में लीन बनकर साधु या श्रावक के ठाणा ग सूत्र कथित तीन मनोरथ को पूर्ण करने का प्रयत्न करते रहना चाहिये ।

अध्ययन-७ : इस अध्ययन का नाम **उदक-पेढालपुत्र** है । क्यों कि इस में पार्श्वनाथ भगवान के शासन में दीक्षित निर्ग्रंथ श्री पेढालपुत्र उदकमुनि की गौतमस्वामी गणधर प्रभु के साथ हुई चर्चा का विस्तृत कथन है । यह चर्चा राजगृही नगरी के नालन्दा नामक उपनगर में हुई थी । इसलिये आगम में इस अध्ययन का नाम **नाल दीय** ऐसा भी कहा गया है ।

गृहस्थ को आगार युक्त प्रत्याख्यान कराना :- उदकमुनि के प्रश्न के समाधान में मूलपाठ में प्रयुक्त **गाथापति चोर विमोक्षण** न्याय का अर्थ विश्लेषण व्याख्याकार ने कथानक द्वारा समझाया है कि कोई गाथापति के छ पुत्रों को किसी अपराध में राजा ने फाँसी की सजा घोषित कर दी । गाथापति ने स्वय उपस्थित होकर राजा से अत्यधिक अनुनय विनय करी । राजा नहीं माना । फिर भी उसने अपना प्रयत्न चालू रखा । अ त में राजा ने एक पुत्र को छोडना स्वीकार किया । सेठ ने ज्येष्ठ पुत्र को जीवित बचा लिया । फिर भी सेठ जिस तरह पा च पुत्रों की हिंसा का अनुमोदक नहीं कहलाता है । वैसी ही परिस्थिति से श्रावकों के स्थूल हिंसा का त्याग कराने में अवशेष हिंसा के प्रेरक या अनुमोदक वे श्रमण नहीं बन जाते । श्रावक अपनी शक्ति अनुसार ज्यादा से ज्यादा हिंसा का त्याग करे यही भाव श्रमणों का होता है ।अत: श्रमण ऐसे प्रत्याख्यान कराने पर अपनी श्रमण मर्यादा से च्युत नहीं कहला सकते ।

उदक मुनि की सारी समस्या हल हो गई । उन्हें समझ में आ गया कि जो भी प्रत्याख्यान कराने की पद्धति है वह गलत नहीं है । त्रसभूत लगाना जरूरी नहीं है । और श्रावक के गृहस्थ जीवन की परिस्थिति अनुसार मुनि उसे शक्य प्रत्याख्यान आगार सहित करवा सक्तेहक्त। समाधान हो जाने पर उदक मुनि ने गौतम स्वामी को श्रद्धा पूर्वक व दन व्यवहार किया और भगवान महावीर के शासन में सम्मिलित होने के अर्थात् पुन: दीक्षित होने के भाव व्यक्त किये । तब गौतम स्वामी उस गृह प्रदेश(कमरे) में से निकलकर उदक मुनि को लेकर बगीचे में भगवान की सेवा में पहुँच गये । फिर भगवान महावीर की सेवा में

उदकमुनि ने चातुर्याम धर्म से प च महाव्रत रूप धर्म स्वीकार किया एव क्रमशः आत्मकल्याण की साधना में लीन बन गये । इसके बाद में उदकमुनि की गति का वर्णन प्राप्त नहीं है । शक्यता मोक्ष गति की अधिक लगती है । इस प्रकार इस अध्ययन की समाप्ति पर १६ अध्ययन युक्त प्रथम श्रुतस्क ध और सात अध्ययन युक्त द्वितीय श्रुतस्क ध यों दोनों मिलकर कुल २३ अध्ययनात्मक शुद्ध आचार एव शुद्ध श्रद्धान का प्रेरक तथा अनेक मतमता तरों का परिचायक यह गणधरकृत द्वितीय अ ग शास्त्र रूप सूत्रकृता ग सूत्र पूर्ण होता है ।

यों इस अध्ययन में श्रावकविधि, श्रावकाचार आदि की सु दर चर्चा दृष्टा तों के साथ करके कर्मब ध से मुक्त होने के उपाय दर्शाये गये है । इस तरह जैन आगम द्वादशा गी का यह अति महत्वपूर्ण शास्त्र है।

स्थाना ग सूत्र ३

जिनशासन के श्रुतज्ञान रूप द्वादशा गी का यह तीसरा अ गशास्त्र है अर्थात् पहला अ गशास्त्र आचारा ग सूत्र है, दूसरा अ गशास्त्र सूयगडा ग सूत्र है और तीसरा अ गशास्त्र यह स्थाना ग सूत्र है ।

रचनाकार :- सभी अ गशास्त्र गणधर रचित होने से यह शास्त्र स्थाना ग सूत्र भी गणधर रचित है । भगवान महावीर स्वामी के ११ गणधरों में से ९ गणधर भगवान की उपस्थिति में ही मोक्ष पधार गये थे एव गौतम स्वामी गणधर प्रभु को भगवान के निर्वाण होने की रात्रि में ही केवलज्ञान प्राप्त हो गया था । तीर्थंकर के प्रथम पाट पर छद्मस्थ गणधर बिराजित होते हक्त, वे ही भगवान के नाम से सर्व तत्त्वों का निरूपण कर सकते हक्त। केवली गणधर तो स्वय सर्वज्ञ सर्वदर्शी होने से प्रत्येक तत्त्व का निरूपण भगवान के नाम से नहीं कर सकते। अतः भगवान के निर्वाण बाद गौतम स्वामी केवली पर्याय में विचरण करते थे एव सुधर्मास्वामी भगवान महावीर के प्रथम पट्टधर आचार्य बनाये गये थे अर्थात् जिनशासन की स पूर्ण बागडोर सुधर्मास्वामी के सुपूर्द की गई थी । इन्हीं कारणों से द्वादशा गी सुधर्मा स्वामी के नाम से कही जाने लगी है कि तु स पूर्ण द्वादशा गी रूप बारह अ गशास्त्रों के रचनाकार सामान्यतः गणधर प्रभु ही कहलाते हक्त क्यों कि तीर्थंकर द्वारा चतुर्विध स घ की स्थापना के बाद प्रभु आज्ञा से सभी गणधर मिलकर द्वादशा गी की पूरे शासन के लिये रचना करते हक्त । वही एक द्वादशा गी जिनशासन के समस्त साधु-साध्वियों को सिखाई जाती है। इस प्रकार उपलब्ध यह तीसरा अ गशास्त्र स्थाना ग सूत्र भी मौलिक रूप से गणधर रचित है ।

व्याख्यासाहित्य :- वर्तमान में इस सूत्र पर प्राचीन व्याख्या आचार्य अभयदेवसूरि की स स्कृत भाषा में उपलब्ध है । उसके बाद अनेक बहुश्रुत श्रमणों ने इस सूत्र पर स स्कृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में स क्षिप्त, विस्तृत अर्थ-विवेचन आदि लिखे हक्त जो विविध प्रकार से मुद्रित उपलब्ध है । **जिसमें स्थानकवासी पर परा में** आचार्य श्री

अमोलख ऋषिजी का, आचार्य श्री घासीलालजी म॰सा॰ का, युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म॰सा॰ का, आचार्य श्री आत्मारामजी म॰सा॰ का, उपाध्याय श्री कन्हैयालालजी म॰सा॰ का, प जाब से श्री अमरमुनिजी का, गुजरात से श्री प्राण फाउन्डेशन राजकोट का एव राजस्थान से सुधर्म प्रचार म डल वगैरह का मुख्य रूप से प्रसिद्धि प्राप्त है। आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित आगम सारा श एव आगम प्रश्नोत्तर हिंदी तथा गुजराती सरल–सुगम भाषा में प्रकाशित हैं। आचार्य तुलसी के प्रमुखत्व में मुनि नथमल(आचार्य महाप्रज्ञ)द्वारा स पादित इस शास्त्र में स स्कृत हिंदी अनुवाद के साथ प्रत्येक स्थान की भूमिका तथा महत्व के विषयों की विवेचना की गई है जो लाडनूँ(राजस्थान)से प्रकाशित है ।

विषय वर्णन :– इस सूत्र में विषय वर्णन १ से १० तक की स ख्या के आधार से किया गया है । इसलिये उस स ख्या में समाविष्ट होने वाले तत्त्व, उपदेश, कथाविषय, गणितविषय, आचारविषय आदि अनेक विषयों का समावेश इस शास्त्र में किया गया है । इसलिये इस शास्त्र का कोई भी एक मुख्य विषय नहीं कहा जा सकता है ।

विभाग :– इस शास्त्र में १ से १० स ख्या के आधार से १० अध्ययन हक्त जिन्हें 'स्थान' स ज्ञा दी गई है अर्थात् मुख्य विभाग 'दस स्थान' है। इन मुख्य विभाग में किसी में प्रतिविभाग है और किसी में नहीं है। उन प्रतिविभागों को 'उद्देशक' कहा गया है । इस प्रकार इस शास्त्र में १० स्थान है और उसमें किन्हीं किन्हीं में उद्देशक भी है । प्रथम स्थान में उद्देशक नहीं है, **दूसरे तीसरे चौथे** स्थान में चार-चार उद्देशक ह्क्त। **पाँचवें** स्थान में तीन उद्देशक हक्त । आगे किसी भी **स्थान** में उद्देशक रूप विभाग नहीं है।

अध्ययनों(स्थान–१०) का सार :–

स्थान–१ :– इसमें **एक** स ख्या को लेकर अनेक तत्त्वों का स ग्रह नय से या जातिवाचक कथन की अपेक्षा से एक स ख्या से कथन किया है । कहीं अनेक तत्त्वों का विभाजन लक्ष्य से एक-एक के रूप में

कथन किया गया है और कई वास्तविक एक स ख्या वाले तत्त्वों का निरूपण किया गया है । कुछ तत्त्व शास्त्रों में बिना भेद-प्रभेद वाले हक्त फिर भी अपेक्षा से उनके अनेक प्रकार हो सकते हक्त यहाँ उन्हें **एक** की स ख्या से कहा गया है । कई तत्त्वों को यहाँ वर्गणा की भिन्नता से एक-एक रूप में कहा गया है ।

(१) लोक में आत्माएँ अन त हैं उन्हें स ग्रह नय की अपेक्षा से एव मूलभूत शुद्ध आत्मतत्त्व सभी का एक समान अरूपी अस ख्यप्रदेशी होने से सूत्र में 'एगे आया' इस प्रकार कहा गया है । (२) उत्तराध्ययन आदि सूत्रों में मन द ड, वचन द ड, काय द ड रूप में तीन द ड कहे हक्त तो भी यहाँ स ग्रह नय से 'एगे द डे' ऐसा कहा गया है । (३) इस प्रकार इस **स्थान** में अनेक तत्त्व स ग्रह नय से एक कहे गये हक्त जैसे कि– क्रिया, ब ध, पुण्य, पाप, आश्रव, स वर, वेदना, निर्जरा । जब कि शास्त्रों में क्रिया के दो, पाँच, पचीस प्रकार भी कहे हक्त, ब ध के चार प्रकार कहे हक्त, पुण्य के ९ प्रकार कहे हक्त , पाप अठारह कहे हक्त । आश्रव-स वर के पाँच या बीस प्रकार कहे हक्त । वेदना, निर्जरा आठ कर्मों की आठ तथा अनेक प्रकार की होती है । (४) तर्क, स ज्ञा, मति-बुद्धि, विज्ञाता, ज्ञान,दर्शन, चारित्र, समय, प्रदेश, परमाणु, सिद्ध, परिनिवृत्त; ये सब अनेक एव अन त है तथापि यहाँ एगे णाणे, एगे सिद्धे, एगे परमाणु आदि कथन सामान्य रूप से अर्थात् स ग्रह नय से अनेक को एक में स ग्रहित करके कहा गया है ।

स्थान–२ :– इस दूसरे स्थान में तत्त्वों को दो की स ख्या में समाविष्ट करके या समाविष्ट होने वाले तत्त्वों का निरूपण है अर्थात् इस स्थान का प्रत्येक कथन दो की स ख्या वाला है । इस स्थान के विभाग रूप में **चार उदेशक** हक्त । चारों उद्देशकों में दो स ख्या वाले विविध विषयों का स कलन है और इस स कलन में कोई भी किसी प्रकार का क्रम नहीं है अर्थात् अक्रमिक वर्णन की बहुलता है ।

प्रथम उद्देशक में :– दो भेदों से विध-विध जीवों-अजीवों का, क्रियाओं का, द्रव्यों का, प्रत्याख्यान का, धर्मप्राप्ति-मोक्षप्राप्ति का, ज्ञान स ब धी, चारित्र स ब धी तथा दिशाओं स ब धी वर्णन मुख्य रूप से किया गया है।

दूसरे उद्देशक में :–दो की स ख्या को लेकर चोवीस द डक के जीवों की द्विविध गतागत बताकर उनके अनेकविध दो-दो प्रकार बताये हक्त । इसके उपरा त जीवों के कर्मफल भोगने, समवहत या विकुर्वित अवस्था में ज्ञान की स्थिरता, देश-सर्व से सुनना देखना आदि विषयों को समाविष्ट किया है ।

तीसरे उद्देशक में :–दो की स ख्या को आधार बनाकर भाषा और शब्द, पुद्गल भेद, पाँच शब्दादि विषय, प चाचार, विविध पडिमाएँ, सामायिक, उपपात आदि, गर्भस्थ जीव, स्थिति, आयुष्य कर्म स ब धी स क्षिप्त दो भेदों का कथन है । उसके बाद ज बूद्वीप, भरत आदि क्षेत्र, पर्वत आदि दो दो की स ख्या से अनेक कथन हक्त जिनका मौलिक क्रमिक वर्णन ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र एव जीवाभिगम सूत्र में है ।

चौथे उद्देशक में :–जीव अजीव को लेकर समय, आवलिका, ग्रामादि तथा छाया आदि की विचारणा, मृत्यु समय में आत्मप्रदेश निकलने का, धर्मबोधि, कषाय, जीवों के दो-दो भेद, आठों कर्मों के दो-दो भेद तथा देवों की स्थिति, परिचारणा आदि दो स ख्या से छुटक विषय भी कहे गये हक्त ।

एक समय से लेकर उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी तक सभी ४८ काल की इकाइयाँ जीव-अजीव दोनों पर प्रवर्तित होती है । जीव अजीव दोनों की पर्यायें काल से स ब धित होती है । अत: समय आदि को जीव रूप भी कहा जा सकता है और अजीव रूप भी कहा जा सकता है । दो स ख्या का कथन होने से इन्हें जीव और अजीव दोनों रूप में होना स्वीकारा गया है ।

ग्राम नगर आदि, उद्यान आदि, सरोवर-नदी-पर्वत, नरकपृथ्वी घनोदधि आदि, द्वीपसमुद्र, नैरयिक आवास यावत् वैमानिक आवास, वर्ष(हरिवासादि) वर्षधरपर्वत, कूट, विजय, राजधानी वगैरह सभी क्षेत्रीय पदार्थ जीवाश्रय होने से जीव रूप तथा अजीवमय होने से अजीव रूप यों दो दो प्रकार के स्वीकार किये गये हक्त ।

छाया, आतप, अ धकार, उद्योत आदि अजीव होने से अजीव

रूप और जीवाश्रय होने से जीव रूप यों दोनों ही प्रकार के स्वीकार किये गये हक्त अर्थात् ये उपरोक्त सभी जीव रूप भी कहे गये हक्त और अजीव रूप भी ।

स्थान–३ :– इसमें तीन की स ख्या वाले तत्त्वों का कथन है तथा अनेक तत्त्वों को कोई भी अपेक्षा या पद्धति से तीन की स ख्या में समाविष्ट करके कथन किया गया है । इस स्थान में ४ उद्देशक हक्त जिनमें कुल २०० से अधिक सूत्रों में तीन की स ख्या से स ब धित अनेक विषय हक्त। चारों उद्देशकों के विभाजन में कोई विषय विभाजन नहीं है । जहाँ तहाँ विविध विषय चारों उद्देशकों में अक्रमिक रूप से स कलित है ।

प्रथम उद्देशक में :– तीन की स ख्या को लेकर विक्रिया, परिचारणा, योग-प्रयोग-करण, आयुब ध, गर्हा-प्रत्याख्यान, पुरिषजात, स्त्री-पुरुष, नपु सक, लेश्या, देव विषयक, तारा टूटना, ऋण मुक्ति, उपधि-परिग्रह-प्रणिधान, योनि, स्थावर तीर्थ, काल, उत्तम पुरुष, लोक में समान स्थल, सद्गति, दुर्गति आदि तथा अन्य भी प्रकीर्णक अनेक विषय इस उद्देशक में समाविष्ट किये गये हक्त ।

दूसरे उद्देशक में :– तीन की स ख्या के आधारित देवेन्द्रादि की पर्षदा, धर्म के आचरण का एव दीक्षा का समय, दीक्षित होने के निमित्त, तीन दिशा, जीवों को दुख का भय, लोक प्रकार, पुरुष के परिणाम, सुन्दर-असुन्दर जीवन का परिणाम, लोकस स्थिति एव अछेद्य-अभेद्य आदि का कथन है । इसके सिवाय अन्य आगमों में आने वाले जीवभेद, निर्ग्रंथ प्रकार, स्थविर, शैक्ष, त्रस-स्थावर, बुद्ध, बोधि, मोह आदि अनेक विषयों को तीन की स ख्या से स ब धित करके कहा गया है ।

तीसरे उद्देशक में :–तीन की स ख्या से स ब धित अनेक विषयों का स कलन है, यथा– आलोचना, सूत्रधारण, वस्त्र-पात्र, आत्मरक्षक, वृष्टि, पदवी, विस भोग, देवों का आना या नहीं आना, देवों की आका क्षा, देवों का दु:ख, विमान, तपस्या में धोवणपानी, ऊणोदरी, लब्धियों की प्राप्ति, राजनीति, अविनय, सत्स ग आदि विषयों का निरूपण है ।

चौथे उद्देशक में :–तीन की स ख्या के आधार से मुख्य विषय इस प्रकार

वर्णित है– स यम के उपघात और विशोधि, ज्ञानादि में अतिक्रम आदि और उनकी शुद्धि, क्षेत्र, पर्वत, नदी, भूमिक प, किल्विषी देव, देवपर्षद की स्थिति, प्रायश्चित्त, दीक्षा, अध्ययन, अनेकविध प्रत्यनीक, अ गोपा ग, मनोरथ, पुद्गल प्रतिघात, चक्षु, अवधिज्ञान, ऋद्धि, जिन, केवली, लेश्या, मरण, स्थिर-अस्थिर चित्त के नुकशान लाभ, विग्रह गति, वलय, तीर्थंकर, ग्रैवेयक वगैरह विषयों का निरूपण है ।

स्थान–४ :– इस स्थान में चार की स ख्या को लेकर उसमें समाविष्ट होने वाले तत्त्वों का कथन है तथापि इसमें एक दो गुणों को, बोलों को, लक्षणों को, उपमाओं को लेकर चौभ गियाँ बनाई गई है और उन चौभ गियों के माध्यम से साधकों को, जिज्ञासुओं को, मोक्षार्थियों को आत्मबोध एव मानव जीवन स स्कारित सुवासित करने का बोध दिया गया है । चौभ गियों का, उपदेशक विषयों का, उपमाओं का कोई क्रम नहीं रखा गया है कि तु जहाँ तहाँ कहीं तत्त्वज्ञान, कहीं चौभ गी, कहीं उपमाएँ, कहीं जीवन शिक्षाएँ तो कहीं मोक्षमार्ग में प्रगतिकारक गूढ शब्दों में उपदेश निहित किया गया है । इस स्थान के विभाजन रूप चार उद्देशक हक्त । उनमें भी विषय का कोई विभाजन नियत नहीं करते हुए अक्रमिक बिखरे मोतियों की तरह सैकडों विषयों का निरूपण ४०० से अधिक सूत्रों में किया गया है ।

प्रथम उद्देशक में चार की स ख्या वाले **तत्त्व विषय** इस प्रकार हैं– अ तक्रिया, भाषा, पुत्र, वनस्पति के ४ भेद, नारकी, साध्वी की चादर, ध्यान, देवों के पद, देवों आदि के स वास(मैथुन), कषाय भेद, कर्म, पड़िमा, अस्तिकाय, प्रणिधान, १२० लोकपालों के नाम, पाताल कलश, देवजाति, प्रमाण, दिशाकुमारियाँ, पर्षदा की देवियों की स्थिति, स सार, दृष्टिवाद, प्रायश्चित्त, पुद्गल परिणाम, चातुर्याम, सुगति–दुर्गति, केवली, हास्यउत्पत्ति, नौकर, अग्रमहिषी, विगय- महाविगय, अवगाहना, प्रज्ञप्तिसूत्र आदि ।

दूसरे उद्देशक में चार की स ख्या को लेकर प्रथम उद्देशक के समान ही अनेक विषयों का अक्रमिक स ग्रह किया गया है, यथा– प्रतिस लीनता, हस्ती, विकथा, धर्मकथा, अतिशय ज्ञानोत्पत्ति-अनुत्पत्ति,

स्वाध्याय-अस्वाध्याय, लोक स स्थिति, गर्हा, निर्ग्रंथ, तमस्काय, कषाय स्वरूप, स सार-आयु-भव, आहार, कर्म्म ध, जीव उपक्रम एक-अनेक, सर्व, पर्वत, कूट, क्षेत्र, जघन्यपदे अरिह त आदि, मेरु पर्वत के वन, अभिषेक शिला, चूलिका, अ तरद्वीप, पातालकलश, आवासपर्वत, वेल धर-अणु-वेल धर, लवणसमुद्र, धातकीख ड, भरतक्षेत्रादि, न दीश्वरद्वीप, सत्य, आजीविक-तप, स यम,त्याग, अकि चनता इत्यादि ४ की स ख्या वाले विषयों का कहीं विस्तृत वर्णन है और कहीं नाम मात्र कथन है । इसके सिवाय पूर्ववत् अनेक चौभ गियों, उपमाओं द्वारा पुरुष के गुणों, प्रकारों का वर्णन है ।

तीसरे उद्देशक में चार की स ख्या को लेकर ९३ चौभ गियाँ पुरुष की अपेक्षा कही गई हक्त जिसमें ५० चौभ गियाँ पक्षी, वृक्ष आदि की तुलनापूर्वक कही गई है और ४३ चौभ गियाँ मात्र पुरुष की ही कही गई है । उसके अतिरिक्त चार की स ख्या के आधार से अनेक विषय हक्त, यथा– उदक, भारवाहक, शूरवीर, निर्ग्रंथ-निर्ग्रंथी, श्रावक-श्राविका, श्रमणो-पासक, दु:खसेज्जा, सुखसेज्जा, दीक्षा, दृष्टा त के भेद-प्रभेद, हेतु, अ धकार, उद्योत इत्यादि । तथा अन्य शास्त्रों में आने वाले चार की स ख्या वाले विषयों को भी स कलित किया गया है ।

चौथे उद्देशक में चार की स ख्या में समाविष्ट होने वाले अनेक विषयों का अक्रमिक वर्णन किया गया है, यथा– विष, व्याधि-चिकित्सा, आसुरी आदि भावना, प्रव्रज्या, उपसर्ग, कर्म, धर्मद्वार, आयुष्यब ध, वाद्य, नृत्य, गीत आदि तथा तुलनात्मक पुरुष की, आचार्य-भिक्षुकी, माता-पिता की, आवर्त्त-कषाय की कुल ६४ चौभ गियाँ एव मात्र पुरुष की १५ चौभ गियाँ है तथा अन्य अनेक छुटकर विषयों का वर्णन है ।

स्थान–५ :– इस पाँचवें स्थान में ५–५ की स ख्या वाले तत्त्वों का, विषयों का स कलन है । स ख्या के कारण अनेक विषय आचार शास्त्रोक्त का पुनर्कथन रूप है तथापि कुछ कुछ ऐसे महत्त्वशील आचार वर्णन भी हक्त जिनका अन्यत्र किसी भी आगम में कथन नहीं है । २०० करीब सूत्रों में और तीन उद्देशकों में इसका विषय विभाजन है । विभाजन में पूर्वानुसार कोई भी विषय क्रम नहीं है, अक्रमिक वर्णन

पद्धति का ही अनुसरण है ।

पाँच स्थावर के मालिक देव, अवधिज्ञान की उत्पत्ति एव नष्ट होना, आचार्य उपाध्याय के गच्छ में विघटन स गठन, कष्ट सहन मनोवृत्ति, हेतु अहेतु, चातुर्मास में विहार, नौका विहार, राजमहलों में साधु का जाना, गर्भ रहने, नहीं रहने के कारण, साधु-साध्वी एक मकान में, धर्म सुलभ दुर्लभ, आचार्य का गच्छ त्याग, मु डन, साधु के उपकारी पृथ्वी, पानी आदि भी, **अचेल धर्म के गुण,** प्रत्याख्यान विवेक, पाँच प्रतिक्रमण, आगम वाचना से लाभ इत्यादि अन्य भी पाँच की स ख्या से अनेक विषय स कलित हुए है ।

स्थान–६ :– ६ की स ख्या से स ब धित विषयों का इस स्थान में निरूपण किया गया है । इसमें अन्य कोई विभाजन–उद्देशक आदि नहीं है । सीधा १२१ सूत्रों से वर्णन किया गया है । वर्णन विषय अक्रमिक ही है, कोई निश्चित्त विषय क्रम नहीं है ।

स घाडा प्रमुख के गुण, मृतक साधु–स ब धी विधि, अशक्य और दुर्लभ, आत्मार्थी अनात्मार्थी के हानि लाभ, प्रमाद प्रतिलेखन, तिथी घटना बढना, ६ ऋतु, भोजन के परिणाम, आश्रवों के ६ प्रकार, प्रतिक्रमण–६, इन्द्रों की अग्रमहिषी, दिशा, आहार, लेश्या, अवधिज्ञान, स्थिति आदि ६ स ख्या स ब धी अनेक विषय है ।

स्थान–७ :– इस स्थान में सात की स ख्या वाले विषयों का निरूपण है । इसमें उद्देशक विभाग नहीं है । अन्य शास्त्रों में वर्णित अनेक विषय भी यहाँ स ख्या के निमित्त से लिये गये हक्त ।

गच्छ त्याग के कारण, विभ ग ज्ञान, केवली एव छद्मस्थ की पहचान, मूल गौत्र मनुष्यों के, आयुष्य का टूटना, निन्हव, आचारा ग के बडे अध्ययन, छोटे अध्ययन, सात नय, दुषम–सुषम काल के लक्षण, विकथा, वचन, कुलकोटि आदि ७ की स ख्या वाले कथन है ।

स्थान–८ :– इस स्थान में ८ की स ख्या से स ब धित अनेक विषयों का स कलन है । उद्देशक विभाग कोई नहीं है । कुल १२२ सूत्रों में अन्य आगमों में वर्णित विषय अनेक है तथापि किसी आगम में नहीं आये हो

ऐसे नूतन विषय भी है ।

आलोचना प्रायश्चित्त के मानस, आयुर्वेदशास्त्र ८ प्रकार के, दिशाकुमारिकाएँ, चैत्यवृक्ष देवों के, तीर्थंकरों के, मद, मत, निमित शास्त्र, आठ पाट मोक्ष, आठ राजा मोक्ष, ८००० धनुष का योजन, कृष्ण की ८ पटराणियों की दीक्षा, सिद्धाशिला के आठ नाम, आठ सूक्ष्म आदि आठ की स ख्या के अनेक विषय ।

स्थान–९ :– इसमें ९ की स ख्या से आधारित विषयों का निरूपण है । जिसमें कितने ही नये प्रतिपादन हक्त और कितने ही अन्य शास्त्रों में वर्णित है । इस अध्ययन में विभाग रूप उद्देशक आदि नहीं है ।

अपने स्वच्छंद श्रमण को गच्छ से निकालना, ब्रह्मचर्य की ९ वाड, रोगोत्पत्ति के ९ कारण, ९ विगय, ९ पुण्य, पाप श्रुत नौ, विशेषज्ञ, भगवान महावीर के गण, आयु के ९ परिणाम, ९ जीव तीर्थंकर बनेगें, नव तत्त्व, नव श्रोत औदारिक शरीर के, लोका तिक, महाग्रह, जीव के भेद, बलदेव या वासुदेव आदि ९ की स ख्या के कथन है ।

(स्थान–१०) इस स्थान में १० की स ख्या से स ब धित अनेक विस्तृत एव स क्षिप्त सूत्र हक्त, जिसमें अन्य शास्त्रों में एव पूर्व स्थानों में आये विषय भी अनेक हक्त और नये विषय भी बहुत हक्त । उद्देशक विभाग बिना कुल १६२ सूत्र इस स्थान में है । इस शास्त्र का यह अ तिम अध्याय है ।

लोक स्वभाव, चैत्यवृक्ष कल्पवृक्ष, मानव के सुख, शस्त्र, दान, प्रत्याख्यान, दस अध्ययनों वाले शास्त्र,अच्छेरे, ज्ञानवृद्धि के नक्षत्र आदि १० की स ख्या के अनेक बोलों का स ग्रह है ।

समवाया ग सूत्र ४

ग्यारह अ गशास्त्रों में यह चौथा अ गशास्त्र है, अत: यह आगम गणधर रचित है, तथापि स ख्या दृष्टि से कोई वर्णन देवर्द्धिगणी के लेखन काल में पूर्वधर स्थविर स पादित भी है। इस सूत्र पर नवा गी टीकाकार आचार्य श्री अभयदेवसूरि कृत प्राचीन टीका है। वर्तमान में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी म.सा. आचार्य श्री आत्मारामजी म.सा.आचार्यश्री घासीलालजी म.सा. युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी म.सा.आचार्य श्री तुलसी आदि द्वारा तथा स स्कृति रक्षक स घ ब्यावर, गुरुप्राण फाउन्डेशन राजकोट द्वारा यह शास्त्र अर्थ-विवेचन सहित स पादित, प्रकाशित है। समय की आवश्यकता के अनुसार स क्षिप्त में ३२ आगमों का सारा श तथा प्रश्नोत्तर की शैली में ३२ आगमों का प्रकाशन हिंदी एव गुजराती दोनों भाषा में हुआ है जो आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित उपलब्ध है ।

इस सूत्र में १ से लेकर एक करोड तक की स ख्या के आधार से कुछ विषयों का स कलन है जिसमें प्राय: स क्षिप्त सूचन रूप कथन है । कोई-कोई स ख्या-विषय का विस्तार भी है । इस स ख्या वर्णन के बाद जीवराशि, अजीवराशि एव स्थितियों, आवासों आदि विविध तत्त्वों का भी वर्णन है । तदन तर द्वादशा गी–बारह अ गशास्त्रों का परिचय भी न दी सूत्र के समान है, कुछ भिन्नता है । अ त में तीर्थंकर, कुलकर, चक्रवर्ती वगैरह शलाका पुरुषों (पूजनीय पुरुषों) के स ब ध में जानकारियाँ दी गई है । इस सूत्र के विभागों- अध्ययनों को 'समवाय' स ज्ञा दी गई है, जो १०० समवाय तक है । उसके बाद प्रकीर्णक विषय है, जिनका समवाय स ख्या से विभाजन नहीं है ।

स्थाना ग सूत्र के समान इस सूत्र में भी स ख्या के आल बन से तत्त्वों का, आचारों का, क्षेत्र, उम्र, जीव, अजीव स ब धी वर्णन है तथा जीव और पुद्गल के अनेक परिणामों का स कलन है। अ त

में स ख्या का आल बन छोडकर प्रकीर्णक वर्णन है । यों इस शास्त्र में अधिकतम विषय अन्य शास्त्रों में आया हुआ है, तथापि कुलकर और शलाका पुरुषों का वर्णन इस शास्त्र की अपनी विशेषता है ।

इस शास्त्र के अ तिम उपस हार सूत्र में महापुरुषों के वर्णन रूप अ तिम प्रकरण का उपस हार करते हुए स पूर्ण शास्त्र का उपस हार किया गया है । जिसमें स क्षेप में इस शास्त्र का माहात्म एव परिचय दर्शाया गया है। यथा–

इस प्रकार इस शास्त्र में कुलकर, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, दशार–म डल (वासुदेव–बलदेव) और गणधर स ब धी पर पराएँ अर्थात् तीसरे आरे के अ त से लेकर चौथे आरे के अ त तक होने वालों का, आगामी काल में होने वालों का या भूतकाल के तीर्थंकर आदि का तथा भरतक्षेत्र के साथ ऐरवतक्षेत्र स ब धी वर्णन इत्यादि वर्णन है । इन वर्णनों में प्रयुक्त **व श** शब्द अनेक पर पराओं को प्रगट करने के अर्थ में लगा है । इसी प्रकार इस शास्त्र में अनेक वर्णन श्रमणों स ब धी होने से उन्हें अलग-अलग अपेक्षा से ऋषिवर्णन, यतिवर्णन एव मुनिवर्णन के रूप में स्वीकारा गया है और स न्निकट लय से(चक्रवर्ती व श वगैरह वर्णन के समीप होने से)सभी के साथ व श शब्द लगाया गया है। यह एक विशिष्ट शैली का प्रयोग है, यथा– व्यवहार सूत्र में पडिमा शब्द का प्रयोग एकलविहार के साथ लगा होने से उसके बाद में अन तर वर्णित पासत्था आदि सभी को पड़िमा शब्द लगाया गया है तथा समुद्घात के प्रकरण में ४ कषाय की समुद्घात कहने के साथ अकषाय की भी समुद्घात कही है।

इसके बाद के शब्दों से बताया गया है कि यह शास्त्र– (१) श्रुत रूप है ।(२) श्रुतज्ञान का अ ग रूप (१२ अ ग में से एक होने से) है ।(३) श्रुत समास=श्रुत का स क्षेप है क्यों कि इसमें अनेक विषय और अनेक शास्त्रों की बातें स क्षिप्त में कही है ।

(४) श्रुत स्क ध- यह एक ही श्रुतस्क ध है, इसमें अन्य बडे विभाग नहीं है ।(५) अनेक तत्त्वों का या जीवादि समस्त तत्त्वों का इसमें समावेश होने से समवाय रूप है । (६) स ख्या रूप वर्णन वाला शास्त्र है ।(७) समस्त=परिपूर्ण अ ग सूत्र है । (८) पूरा शास्त्र एक ही अध्ययन रूप है, इसमें उद्देशक आदि कोई छोटे-छोटे विभाग भी नहीं है । **प्रकरण रूप** विभाग भी मूल पाठ में नहीं है, वे पाठकों की सुविधा के लिये आधुनिक विभाजन रूप में प्रचलित हुए हक्त । इस प्रकार उपस हार सूत्र कुछ कठिन सा दिखता है अत: यहाँ उसका सरलार्थ दिखाया है । इस तरह उस सूत्र को प्रस्तुत शब्दार्थों के माध्यम से समझने समझाने का प्रयत्न करना चाहिये ।

भगवती सूत्र ५

जिनशासन में श्रुतज्ञान रूप द्वादशा गी मौलिक आगम रूप में प्रसिद्ध है ।जिसमें **पाँचवाँ** अ ग सूत्र **व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र** है। यह शास्त्र वर्तमान में उपलब्ध शास्त्रों में अतिविशाल है एव महत्वपूर्ण अनेक सैकडों विषयों को लिये हुए होने से इसका अपरनाम **भगवती सूत्र** प्रसिद्ध हुआ है। जिससे मौलिक-आगमिक नाम व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र केवल लेखन में रह गया है । बोलचाल में प्रचलन में श्री भगवती सूत्र उपनाम ने ही पूर्ण स्थान पा लिया है। इसी मौखिक पर परा का वहन करते हुए यहाँ भी भगवती सूत्र नाम को प्राधान्य दिया गया है ।

इस सूत्र का स क्षिप्त परिचय श्री न दीसूत्र तथा समवाया ग सूत्र में मिलता है । वहाँ यह बताया गया है कि इसमें छत्तीस हजार प्रश्नोत्तर है । स ख्या दृष्टि से यह गिनती आज सिद्ध नहीं की जा सकती है तथापि इस शास्त्र में देव, देवेन्द्र, नरेन्द्र, गणधर, साधु, श्रावक, श्राविका अन्य मतावल बी ब्राह्मण आदि के प्रश्न और भगवान महावीर के उत्तर विशाल स ख्या में उपलब्ध है । मुख्य रूप से भगवान के उत्तर 'गौतम' इस स बोधन पूर्वक होने से यह आगम भगवान महावीर और गौतम गणधर के प्रश्नोत्तरों का महास ग्रह रूप है, ऐसा स्वीकार किया जा सकता है ।

रचनाकार :- द्वादशा गी के रचनाकार गणधर प्रभु होने से यह शास्त्र भी गणधर रचित है । किसी भी गणधर का नामकरण रचना के साथ जोडा जाना योग्य नहीं है क्यों कि **"अत्थ भासइ अरहा, सुत्त गु थ ति गणहरा णिउणा ।"** यहाँ पर सूत्र गु थन में बहुवचन से गणधरों का सामान्य कथन है । इसी के आधार से हमें समस्त **अ ग शास्त्रों को** गणराज्य के स विधान के समान व्यक्तिगत नाम के बिना **गणधर रचित** इतना ही स्वीकारना चाहिये । इस विषय को आचारा ग सूयगडा ग के परिचय में विशेष स्पष्ट किया गया है । जिज्ञासु पाठक उसका पुनरावलोकन करें।

नामकरण :– इस शास्त्र का आगमिक नाम व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र है जिसका प्राकृत–अर्धमागधी भाषा में **वियाह पण्णत्ति** यह शुद्ध लेखन एव उच्चारण है । क्यों कि **व्याख्या** शब्द का प्राकृत में 'वियाह' शब्द योग्य बनता है । तथापि लय विशेष से रूढ पर परा में **'विवाहप्रज्ञप्ति'** भी लिखा एव बोला जाता है । इसे भी व्याख्याकारों ने स्वीकार कर अर्थघटन करने का प्रयत्न किया है । यों प्राकृत भाषा में एक ही शब्द के अनेक वैकल्पिक रूप भी स्वीकारे जाते हक्त । जिसे व्याकरण के अभ्यासी समझ सकते हैक्त ।

व्याख्यासाहित्य :– वर्तमान में इस सूत्र पर प्राचीन व्याख्या आचार्य अभयदेवसूरि की स स्कृत भाषा में उपलब्ध है । उसके बाद अनेक बहुश्रुत श्रमणों ने इस सूत्र पर स स्कृत, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में स क्षिप्त, विस्तृत अर्थ-विवेचन आदि लिखे हक्त जो विविध प्रकार से मुद्रित उपलब्ध है । जिसमें स्थानकवासी पर परा में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी का, आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. का, युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा. का, गुजरात से गुरुप्राण फाउन्डेशन राजकोट का एव राजस्थान से सुधर्म प्रचार म डल वगैरह का मुख्य रूप से प्रसिद्धि प्राप्त है ।आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित इस आगम का सारा श एव आगम प्रश्नोत्तर हिंदी तथा गुजराती सरल–सुगम भाषा में प्रकाशित हैं ।

विषयवस्तु :– जैन वाङ्मय में जैनशास्त्रों में आने वाले मौलिक प्राय: सभी विषय इस महाकाय महाशास्त्र में प्रश्नोत्तर रूप में स ग्रहित हुएहै । जिसमें कथानक–जीवनचरित्र, उपदेश, स यमाचार, श्रावकाचार, तत्त्व, भ गजाल, मतमता तर, चर्चाएँ, क्षेत्रीय वर्णन, स्व–सिद्धा त, षड्द्रव्य, नारक देव स ब धी वर्णन, ज्योतिषी देव–देवलोक, सूर्य–चन्द्र आदि का भ्रमण, विरोधी भावों वाले गोशालक द्वारा उपद्रव अर्थात् भगवान के समवशरण में दो महामुनियों की हत्या, कोणिक–चेडा जैसे भगवान के परम भक्त जैन राजाओं का सामान्य कारण से युद्ध करके १ करोड ८० लाख ***(कदाचित् १ लाख ८० हजार)*** जीवों का घमासान

आदि विविध, विचित्र विषय समाविष्ट किये गये हैक्त । स क्षेप में सरल से सरल एव कठिन से कठिन विषय इस शास्त्र में निरूपित किये गये हैक्त ।

विभाग एव परिमाण :– इस सूत्र में मुख्य विभाग–अध्याय–४१ है, जिन्हें **शतक** कहा गया है एव शतक में आये प्रति विभागों को **उद्देशक** कहा गया है । जिनकी स ख्या कोई भी निर्धारित नहीं है। बत्तीसवें शतक तक ये दो विभाग–शतक और उद्देशक रूप है । उसके बाद शतक तेतीसवें से शतक, अवाँतर शतक और उद्देशक यों तीन विभाग किये गये हक्त । प द्रहवें शतक में कोई विभाग नहीं है, एक ही शतक विभाग में गोशालक स ब धी विशाल वर्णन है।

इस शास्त्र में उद्देशकों की स ख्या भी १० से लेकर, ११, १२, ३४ और १९६ आदि भी हक्त । यह शास्त्र प्राचीन पर परा से १५७५२ श्लोक प्रमाण का माना जा रहा है । ब्यावर से प्रकाशित युवाचार्य मधुकर मुनि स पादित इस सूत्र के भाग–४ की प्रस्तावना में उपाचार्य श्री देवेन्द्रमुनिजी ने सभी शतकों के अक्षरों की गिनती से उपलब्ध **उन्नीस हजार तीन सौ बीस** श्लोक प्रमाण यह शास्त्र वर्तमान में उपलब्ध है ऐसा स्वीकार किया है ।

स क्षेप में इस शास्त्र के ४१ शतक, अ तर शतक को गिनने से कुल १३८ शतक तथा कुल १९२३ उद्देशक हक्त एव अपेक्षा से १९३२० श्लोक प्रमाण यह शास्त्र उपलब्ध है ।

प्रकाशकों के विभाजन :– अति विशालता के कारण इस शास्त्र का प्रकाशन (१) प डित बेचरदासजी दोशी अनुवादित टीका ग्र थ चार भागों में (२) स स्कृति रक्षक स घ सैलाना से सात भागों में (३) आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से चार भागों में (४) गुरु प्राण फाउन्डेशन राजकोट से ५ भागों में (५) एव आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. द्वारा स पादित हिंदी–गुजराती दोनों भाषा से स युक्त १७ भागों में पूर्ण किया गया है ।(६) आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित सारा श तीन भागों में एव

प्रश्नोत्तर दो भागों में प्रचलित हुए हैं ।

बीकानेर(राजस्थान)से इस सूत्र के तत्त्वज्ञान को थोकडों के रूप में स कलित स पादित करके ९ भागों में प्रकाशित करवाया गया है । जिसके प्रकाशक है श्री अगरचन्द्र भेरोदान सेठिया है । उन नव भागों में दिये गये सेकडों थोकडे आगम अभ्यासी साधक क ठस्थ करते हैं जो इस सूत्र के अर्थ भावार्थ को समझने में बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं । अन्य भी अनेक स स्थाओं और विद्वानों द्वारा यह शास्त्र विशाल होते हुए भी विध-विध रूप से प्रकाशित करवाया गया है । स्थानकवासी स्वाध्यायी समाज में इस शास्त्र का वा चन चिंतन मनन बहु प्रचलित है । प्राय: संपूर्ण श्वेता बर समाज में इस शास्त्र के प्रति अत्य त अहोभाव तथा सन्मान के भाव दृष्टिगोचर होते है । इस कारण व्याख्यान में, वाचणी में, थोकडों के ज्ञान में इस शास्त्र का बहुत प्रचलन है ।

उन्ही थोकडों को नवीनरूप देकर चार्ट आदि देकर सुव्यवस्थित रूप से स्वाध्यायी विमलकुमार नवलखा ने भी जैन तत्त्व दर्शन भाग १ में भगवती सूत्र तथा भाग २ में प्रज्ञापना एवं अन्य आगमों के थोकडों को लिखकर अम्बा गुरू शोध संस्थान उदयपुर से प्रकाशित करवाया है ।

ज्ञाता धर्म कथा सूत्र ६

ग्यारह अ गसूत्रों में यह छट्ठा अ गसूत्र है । भगवती सूत्र के बाद इस शास्त्र का क्रम रखा गया है। अ गसूत्र होने से यह गणधर रचित आगम है ।

विभाग-परिमाण :- विभाजन की अपेक्षा इसके दो श्रुत स्क ध है । प्रथम श्रुतस्क ध में १९ अध्ययन और द्वितीय श्रुतस्क ध में १० वर्ग और उन वर्गों में कुल २०६ अध्ययन है । वर्तमान में उपलब्ध इस सूत्र का परिमाण ५५०० श्लोक तुल्य स्वीकारा गया है ।

व्याख्या साहित्य :-इस सूत्र पर प्राचीन व्याख्या आचार्य अभयदेवसूरि जी की स स्कृत भाषा में उपलब्ध है । वर्तमान में अर्वाचीन व्याख्याएँ स स्कृत हिंदी गुजराती आदि भाषाओं में उपलब्ध है जिसमें स्थानकवासी पर परा में आचार्य श्री अमोलखऋषि जी म॰सा॰ आचार्य श्री आत्माराम जी म॰सा॰ आचार्य श्री हस्तीमलजी म॰सा॰ आचार्य श्री घासीलालजी म॰सा॰ आदि द्वारा स पादित मिलती है। इसके ऊपरा त युवाचार्य श्री मधुकर मुनि जी म॰सा॰ के नाम से प्रसिद्ध बत्तीसी में, गुरुप्राण आगम बत्रीसी में तथा स स्कृति रक्षक स घ ब्यावर की बत्तीसी में यह शास्त्र विवेचन सहित उपलब्ध है । आगम मनीषी श्री तिलोक मुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित ३२ आगम के सारा श एव प्रश्नोत्तर दोनों सेट में यह शास्त्र अनेक शिक्षा प्रेरणा एव ज्ञातव्य तत्त्वों के निर्देश पूर्वक हिंदी-गुजराती दोनों भाषा में अलग-अलग प्रचारित हुआ है ।

नामकरण :-इस पूरे सूत्र में शिक्षाप्रद दृष्टा त(ज्ञात) और धर्मकथाएँ वर्णित होने से इसका परिपूर्ण नाम ज्ञाता+धर्मकथा=**ज्ञाताधर्मकथा** अ गसूत्र है । स क्षिप्त में इसे ज्ञातासूत्र भी कह दिया जाता है।

विषयवस्तु :–प्रथम श्रुतस्क ध में कितनी ही ऐतिहासिक कथाएँ है अर्थात् घटित घटनाएँ एव चरित्र है और कितनी ही कथाएँ रूपक या दृष्टा त के रूप में कही गई है । इन सभी कथाओं का उद्देश्य विविध प्रकार से प्रतिबोध प्रेरणा या शिक्षा देना मात्र है । जिनसे मुमुक्षु साधक भलीभाँति आत्मजागरण एव आत्म उत्थान कर सकें।

इन कथाओं में श्रद्धा का महत्त्व, आहार करने का उद्देश्य, अनासक्ति, इन्द्रिय विजय, विवेक बुद्धि, गुण वृद्धि, पुद्गल स्वभाव, कर्म परिणाम एव कर्मों से आत्मा की दशा, क्रमिक आत्म विकास, भोगों का जहर के समान दुष्परिणाम, सहनशीलता के माध्यम से स यम की आराधना-विराधना एव दुर्गति-सद्गति आदि विषयों पर सरल और सरस भाषा में प्रकाश ड़ाला गया है । ये कथाएँ वाद-विवाद या मनोर जन के लिए नहीं है, अपितु जीवन उत्थान के लिये आदर्श रूप में चि तन मनन करने योग्य है।

द्वितीय श्रुतस्क ध में स यम साधना करके देवलोक में जाने वाले २०६ जीवों का जीवन वृत्त है। इसमे वर्णित सभी साधिकाएँ स्त्री पर्याय में स यम स्वीकार कर देवी के रूप में उत्पन्न होने वाली आत्माएँ है । वे सभी तेवीसवें तीर्थंकर के शासन में दीक्षित हुई एव स यम की विराधिका बनी । देव भव के अन तर मनुष्य भव प्राप्त कर स यम की शुद्ध आराधना करेगी एव वे सभी(२०६) आत्माएँ मुक्ति प्राप्त करेगी ।

इस प्रकार यह छट्ठा अ ग सूत्र कथा प्रधान शास्त्र है । जन साधारण के लिए भी यह रोचक आगम है एव जीवन निर्माण योग्य अनेक प्रेरणाओं का भ डार है । एक विशेषता इसकी यह भी है कि इसमें कही गई जीवन उत्थान की प्रेरणाएँ श्रमण एव श्रमणोपासक दोनों ही वर्गों के लिए बहुत उपयोगी है ।

इसके १९ अध्ययनों के नाम और परिचय इस प्रकार है–

क्रम	अध्ययन नाम	विषय
१	उत्क्षिप्त ज्ञात	सयम से उत्क्षिप्त चित्त, ऐसे साधक मेघमुनि के जीवन दृष्टा त से स यम में पुनः स्थिर होने की शिक्षा दी गई है ।
२	स घाड़ज्ञात	विजय चोर का स गाथ(साथ) जेल में धन्ना शेठ के द्वारा निभाने के दृष्टा त से श्रमणों को ऐसी भावना से शरीर के साथ को निभाने हेतु आहार का कथन।
३	अ डे	धीरज रखने से **अ डे** द्वारा आन दकारी मयूर की प्राप्ति के दृष्टा त से साधकों को स यम–मोक्षमार्ग में श्रद्धायुक्त धैर्य रखने का कथन है ।
४	कूर्म (कछुआ)	अ गों को स्थिरता से गोपन करके रखने वाले कछुएँ के दृष्टा त से श्रमणों को इन्द्रिय निग्रह करने की प्रेरणा की गई है।
५	शैलक राजर्षि	स यम मार्ग में चलते हुए कभी प्रमाद प्रविष्ट हो जाय तो पुनः विवेक जागृत करना-कराना, यह शैलक मुनि और प थक शिष्य के घटित दृष्टा त से दर्शाया गया है ।
६	तु बड़	तुम्बे के दृष्टा त से समझाया गया है कि जीव कर्मलेप बढ़ने से भारी होकर स सार में गमन करता है और कर्मलेप से मुक्त होकर ऊपर गति करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है ।अतः साधक कर्म क्षय करने में प्रयत्नशील बनें ।
७	रोहिणी ज्ञात	धन्ना सार्थवाह द्वारा चार बहुओं की परीक्षा में रोहिणी नाम की छोटी बहु

क्रम	अध्ययन नाम	विषय
		विशेष बुद्धिशाली होने से घर की अधिकारिणी बनी ।उसी तरह ग्रहण किये चारित्र तप में उत्तरोत्तर उन्नति करके साधक मोक्षाधिकारी बन सकता है ।
८	मल्ली भगवती	उच्च स यम-तप में भी लघु-माया कपट क्षम्य नहीं होता । उच्च रसायन युक्त साधना के एक या अनेक गुणों से तीर्थंकर पद की प्राप्ति हो सकती है । श्रेष्ठ वचन प्रतिज्ञा को समय पर निभाकर ६ मित्रों ने दीक्षा का साथ निभाया; मोहाभिभूत बने हुए तथा आक्रमण करके आये राजाओं को विशेष सूझबूझ से मल्ली कु वरी ने विरक्त बनाया इत्यादि तत्त्व दर्शन **मल्ली भगवती** के जीवन वृता त के माध्यम से कराये गये हक्त ।
९	माक दीय	माक दी सार्थवाह के पुत्र जिनरक्ष और जिनपाल के जीवनवृत्त(दृष्टा त) से भुक्त भोगों की पुनः स्मृति नहीं करके साधक को साधना में सावधान रहना चाहिए तो वह जिनपाल की तरह अपनी नगरी में अर्थात् मोक्ष में पहुँच सकता है । पुनः भोगों में आकर्षित होने से जिनरक्षित की तरह दुःखद परिणाम की प्राप्ति होती है।
१०	च द्रमा	च द्र की कला घटती भी है और बढ़ती भी है; वैसे ही साधक को गुणों की वृद्धि करके पूर्णता को प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहना चाहिये । गुणों को विलुप्त कर अमावसवत् कभी भी नहीं

क्रम	अध्ययन नाम	विषय
		बनना चाहिये ।
११	दावदव	वृक्षों द्वारा विविध हवाओं को सहन करने के दृष्टा त से साधक को अनुकूल प्रतिकूल सभी प्रकार के परीषहों के आने पर अथवा मनोज्ञ अमनोज्ञ वचनों के स योग में भी मध्यस्थ भावों में, स यम भावों में स्थिर रहने की प्रेरणा दी गई है अर्थात् स यम में डावाडोल नहीं होना एव रागद्वेष में भी नहीं पड़ना चाहिये ।
१२	उदक ज्ञात	पानी के दृष्टा त से पुद्गलों के परिवर्तनशील स्वभाव को दर्शाया गया है । अच्छे पुद्गल खराब और खराब पुद्गल अच्छे बन जाते हक्त । अतः सर्व पुद्गल स्वभाव को जानकर साधक को स्थिर समत्व भावों में रमण करना चाहिए
१३	दर्दुर–मेंढ़क	साधक को धर्मप्राप्ति के बाद भी स त समागम करते रहना चाहिए जिससे धर्म स स्कार पुष्ट होते रहें । अन्यथा साधक न द मणियार की तरह भटक जाता है, पशुयोनि में पहुँच जाता है । मानव को दान आदि परोपकार के कार्यों की यशकीर्ति में डूबना नहीं चाहिये । ये शिक्षा नद मणियार के दृष्टा त द्वारा इस अध्ययन में समझाई गई है ।
१४	तेतलि पुत्र	तेतलिपुत्र प्रधान और सुनार की पुत्री पोटिला के घटित दृष्टा त द्वारा अनेक शिक्षा स देश दिये गये हक्त । प्रसन्न व्यक्ति या राजा कभी अप्रसन्न हो जाता

क्रम	अध्ययन नाम	विषय
		है। अनुरागी व्यक्ति कभी तिरस्कार कर देता है । वचनबद्ध देव अनेक प्रयत्नों से वचन निभाता है । जीवन के अच्छे स योग भी क्षणिक होते हक्त, वे कभी दु:खदायी भी बन जाते हक्त धर्म ही एक मात्र त्राण-शरण रूप सुखदायी है ।
१५	न दी फल	जहरीले मधुर फलों की उपमा द्वारा बताया गया है कि स सार के लुभावने सुखभोग भी जीवन में विष तुल्य है एव भवो-भव जन्म-मरण की वृद्धि कराने वाले हक्त । इनसे दूर ही (बचकर) रहने में सुरक्षा है ।
१६	अमरक का(द्रौपदी)	द्रौपदी के अनेक भवों के वर्णन से एव अ त में अमरक का में स हरण युक्त घटित जीवन चरित्र के द्वारा अनेक शिक्षाएँ सूचित की गई है ।
१७	आकीर्ण अश्व	घोड़ों के दृष्टा त से शब्दादि इन्द्रिय विषयों की आसक्ति का कटुफल वध-ब धन रूप बताकर उन्नतजाति के अश्वों के समान इन्द्रिय विषयों से दूर रहने की शिक्षा साधकों को दी गई है ।
१८	सु सुमा दारिका	इस अध्ययन में आहार की उत्कृष्टतम अनासक्ति की दशा को प्रतिफलित किया गया है । साधक साधनाकाल में जो आहार करता है, वह मात्र शरीर निर्वाहार्थ करे; स्वादवृत्ति, आसक्ति उस आहार में न करे, यह शिक्षा दर्शाई गई है ।

क्रम	अध्ययन नाम	विषय
१९	क ड़रीक-पु ड़रीक	महाविदेह क्षेत्र के दो भाई राजाओं के जीवन दृष्टा त से दर्शाया गया है कि स यम साधना से च्युत होकर राज्य एव भोग सुखों में लीन होने पर जीव की अवदशा अधोगति हो जाती है । सैकड़ों हजारों वर्षों की स यम साधना व्यर्थ हो जाती है और स यम साधना युक्त जीवन जीने वाले की अल्प समय में ही उच्च गति हो जाती है ।

द्वितीय श्रुतस्क ध वर्णित २०६ आत्माओं का वर्तमान परिचय :-

१	चमरेन्द्र की अग्रमहिषियाँ	५
२	बलीन्द्र की अग्रमहिषियाँ	५
३	दक्षिण के नागकुमार आदि ९ की अग्रमहिषियाँ	६×९=५४
४	उत्तर के नागकुमार आदि ९ की अग्रमहिषियाँ	६×९=५४
५	दक्षिण व्य तर के ८ इन्द्रों की अग्रमहिषियाँ	४×८=३२
६	उत्तर व्य तर के ८ इन्द्रों की अग्रमहिषियाँ	४×८=३२
७	चन्द्रेन्द्र की अग्रमहिषियाँ	४
८	सूर्येन्द्र की अग्रमहिषियाँ	४
९	सौधर्मेन्द्र की अग्रमहिषियाँ	८
१०	ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियाँ	८
		२०६

द्वितीय श्रुतस्क ध में तेवीसवें तीर्थंकर के शासन में प्रव्रजित २०६ आत्माओं के जीवन वृत्तांत से यह दर्शाया गया है कि गुरुणी की एव जिनाज्ञा की पूर्ण पालना नहीं कर पाने वाली एव अकेली निवास करने वाली साध्वियों ने स यम तप एव मोक्षार्थ के लक्ष्य को

कायम रखने से एव अ त समय में अनेक दिनों का स थारा प्राप्त करके स यम विराधिका होते हुए भी भव भ्रमण नहीं बढाया एव सभी (२०६) अगले मानव भव से आराधना कर मोक्ष प्राप्त करेगी ।

इन अध्ययनों से द्विपक्षीय शिक्षाएँ मिलती है । (१) स यम की जिनाज्ञा की पूर्ण आराधना नहीं कर पाने वाले भी अपने मोक्ष लक्ष्य एव तप त्याग में आगे से आगे बढते रहें तो वे भवभ्रमण को रोक सकते हैं। (२) स यम की शुद्ध आराधना करने वाले पुण्यवान जीवों को ऐसी आत्माओं के प्रति घृणा-निंदाभाव न बढाकर अनुक पा भाव और सद्भावना रखना चाहिये क्योंकि शास्त्रकारों ने भी ऐसी आत्माओं को सादर आगम में स्थान दिया है ।

विशेष नोंध :- इस आगम वर्णन से एक आदर्श बोध यह भी उद्भूत होता है कि इन साध्वियों के द्वारा गच्छ में रहते हुए मर्यादा उपरा त स्वेच्छाचार करने पर भी गुरुणी ने या किसी सत्ताधारी श्रमण ने इन्हे स घ निष्काषित करने का **हीन कर्तव्य नहीं अपनाया** था और इन्हें किसी को मकान नहीं देने के लिये भी उत्प्रेरित नहीं किया था।

२०६ को भी अकेले रहने को मकान मिल गया था और शा तिपूर्वक तप त्याग के लक्ष्य से शुभ गति को प्राप्त किया था । स सार भ्रमण नहीं बढाया था । आज के साधकों का मानस एव प्ररूपण ऐसा हो गया है कि एकलविहारी या गुरु आज्ञा में नहीं चलने वाले सभी अन त स सार भ्रमण बढाते है । किन्तु ऐसी एका त समझ एव एका त प्ररूपणा करने वाले खोटी पर प चायत करके खुद की आत्मा को भारी करते हैं ।

आज तो आगमोक्त आचार का दम भरने वालों के द्वारा अपनी जिद्द की प्रकृति से दुर्भावना एव बदले की भावना से साध्वियों को खोटे सत्ता नशे में एव मोहा ध भक्तों के अह में फूल कर बडी शान से फिजुल के आक्षेप लगा कर, आज्ञा बाहर करके आन द माना जाता है । इस प्रकार इस शास्त्र में घटित और कल्पित दृष्टा तों से धर्म साधकों को अनेकानेक शिक्षाएँ दी गई है । इन शिक्षाओं को धारण कर साधक अपनी साधना में स्थिरता पूर्वक आराधक बन सकता है ।

०००००

उपासक दशा सूत्र

७

ग्यारह अ ग सूत्रों में यह शास्त्र सातवाँ अ गसूत्र है । अ ग सूत्र होने से यह गणधर रचित है। इसके १० अध्ययन है, अन्य कोई छोटा या बड़ा विभाग इसमें नहीं हक्त । दस अध्ययनों में दस श्रमणोपासकों का विशिष्ट साधनामय, त्यागमय जीवन अ कित किया गया है । स पूर्ण सूत्र गद्यमय है एव इसका सूत्र प्रमाण ८१२ श्लोक प्रमाण माना गया है ।

व्याख्या साहित्य :- इस सूत्र पर नवा गी टीकाकार आचार्य श्री अभयदेवसूरि कृत स स्कृत भाषा में प्राचीन टीका उपलब्ध है । आचार्य श्री अभयदेवसूरिजी ने प्रार भ के दो अ गसूत्र छोड़कर शेष ९ अ गसूत्रों पर स स्कृत में टीका लिखी है । अतः नवा गी टीकाकार के रूप में वे जैनजगत में प्रसिद्ध हैं । इनके पूर्व आचार्य श्री शीलांकाचार्य ने आचारा ग, सूयगड़ा ग सूत्र पर स स्कृत में टीका लिखी थी, वह अभयदेव सूरिजी के समक्ष उपलब्ध थी । इस कारण उन दो सूत्रों के सिवाय ९ अ ग सूत्रों पर उन्होंने टीका लिखी थी ।

इस प्राचीन टीका के अतिरिक्त इस सूत्र पर आज अन्य अनेक विद्वानों की स स्कृत, हिंदी, गुजराती, अ ग्रेजी आदि भाषाओं में टीका-व्याख्या आदि उपलब्ध है । स क्षिप्तिकरण की रुचि के इस जमाने में इस सूत्र पर स क्षिप्त सारा श भी अनेक परिशिष्टों के साथ हिंदी, गुजराती भाषा में अलग-अलग उपलब्ध है। प्रश्नोत्तर शैली के ३२ आगमों के सेट में भी इस शास्त्र के प्रश्नोत्तर दोनों भाषा में उपलब्ध है ।

विषय एव नामकरण :- इस सूत्र में केवल १० श्रमणोपासकों का ही जीवन वर्णन होने से इसका गुणस पन्न नाम **उपासकदशा ग** सूत्र है । भगवान महावीर स्वामी के श्रावकों की स ख्या एक लाख उनसाठ हजार थी । उसमें भी मुख्य श्रावक के रूप में शास्त्र में **शख-पुष्कली** का नाम आया है तथापि यहाँ विशिष्ट घटना एव विशिष्ट ऋद्धि स पन्नता आदि की मुख्यता से आन द आदि दस श्रावकों का जीवन चरित्र दिया गया है। दस अध्ययनों में वर्णित दस श्रावकों के नाम इस प्रकार है- (१) आन द (२) कामदेव (३) चुलनी पिता (४) सुरादेव

(५) चुल्लशतक (६) कु डकौलिक (७) सकडाल (८) महाशतक (९) न दिनी पिता (१०) सालिही पिता ।

इस सूत्र से प्राप्त होने वाले शिक्षा वचन :- (१) धर्म की सच्ची श्रद्धा निष्ठा समझ प्राप्त हो जाने के बाद व्रत धारण में आलस्य नहीं करना चाहिये । कितनी भी विशाल स पत्ति हो या कितना ही विशाल कार्यक्षेत्र क्यों न हो, श्रावक के व्रत धारण करने में उसे बाधक नहीं मानना चाहिये । क्यों कि स पत्ति धर्म में बाधक नहीं होती है उसकी अमर्यादा एव मोह-ममत्व बाधक होता है। कई लोग वर्षों तक धर्म सुनते रहते हैं और भक्ति भाव करते रहते हैं किन्तु श्रावक के १२ व्रतों को धारण करने में आलस के कारण परिस्थितियों और जिम्मेदारियों के बहानों को सामने रख देते हक्त । उन्हें इन श्रावकों के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये ।

धर्म गुरुओं को भी चाहिए कि वे आई हुई परिषद् को श्रावक व्रतों का स्वरूप सरलता पूर्ण विधि से समझा कर उन्हें व्रतधारी श्रावक बनने के लिये उत्साहित करें । आजकल के धर्मोपदेष्टा व कई पूज्य आचार्य आदि यह विषय प्रायः लेते ही नहीं और कई इस विषय का प्रतिपादन करें तो भी श्रावक के व्रतों को पहाड़ के समान बताकर कठिनता का भय श्रावकों में भर देते हक्त । जिससे वे लोग श्रावक व्रतों को धारण करने की वार्ता को सदा आगे से आगे धकेलते रहते हक्त। अतः ऐसा न करते हुए इस विषय में विद्वान आचार्यों एव स त सतियों को विशेष ध्यान देना चाहिये ।

(२) उपदेश श्रवण के बाद जिनवाणी की हृदय से प्रश सा अनुमोदना करनी चाहिये । अपनी शक्ति का मूल्या कन करके या विकास करके व्रत धारण करना । पारिवारिकजनों को भी धर्म कार्य में व्रत प्रत्याख्यान में उत्साहित करना । श्रावक पर्याय में तत्त्वज्ञान की भी वृद्धि करते रहना । आगमों का स्वाध्याय भी करना।

(३) शीघ्र ही जिम्मेदारियों से निवृत्त होने की लगन रख कर सा सारिक कार्यभार पुत्र आदि को स भला देना चाहिये, यह नहीं कि मरे जहाँ तक घर दुकान का ध धा और मोह छूटे नहीं । ऐसी मनोवृत्ति से आराधना स भव नहीं रहती है । अतः समय पर ध धों से निवृत होकर साधना की अभिवृद्धि करने का लक्ष्य भी रखना चाहिये । यह श्रावक का

पहला मनोरथ भी है । निवृत्त जीवन में शक्ति अनुसार तप, ध्यान, एका त चि तन मनन में लीन होकर साधना करना । परिजनों की इतनी परवशता न होना अर्थात् पारिवारिक मोह की इतनी प्रगाढ़ता न होना कि स थारा स्वीकार करने में वे बाधक बनते रहें ।

(४) गुणों के शिखर तक विकास होने पर भी विनय गुण नहीं छोड़ना । आन द का जीवन त्याग, तप, ध्यान, पड़िमा युक्त था, आदर्श श्रावक रत्न था, अवधिज्ञान प्राप्त हो गया था फिर भी उसने गौतमस्वामी को देखते ही उनके प्रति श्रद्धा, विनयभक्ति के भावों में कोई कमी नहीं रखी । **(५)** सत्य का सन्मान सदा जीवन में होना चाहिये । विनयवान होते हुए भी सत्य के लिये दृढ़ मनोबल भी होना चाहिये। सत्यता में किसी से दबने की या ड़रने की जरूरत नहीं होती है । **(६)** भूल की जानकारी हो जाय तो घम ड़ या झूठा द भ नहीं करना चाहिये । सरलता और क्षमायाचना रूप नम्रता धारण कर जीवन सुन्दर एव साधनामय बनाना चाहिये । **सार- *जिन शासन में त्याग का, व्रत निष्ठा का, शुद्ध श्रद्धा का, सरलता, नम्रता आदि गुणों का, सत्यनिष्ठता, निडरता एव क्षमापना भाव युक्त आत्मविकास करने वालों का महत्व है । ऐसे साधक अ तिम समय तक उच्च साधना में लीन बन कर आत्मकल्याण साध लेते हक्त । वे बीच में गुस्सा, घमण्ड़, अप्रेम, वैमनस्य, कलह, द्वेष, निन्दा, प्रमाद, आलस्य आदि दूषणों के शिकार नहीं होते हक्त ।***

(७) धर्म में निश्चल दृढ़ मनोबल के साथ अपनी श्रद्धा को स्थिर रखने की प्रबल प्रेरणा कामदेव के चारित्र से मिलती है । मानव को अपने कर्म स योग से शारीरिक, आर्थिक, मानसिक, सामाजिक आदि कई स कट की घड़ियों से गुजरना पड़ता है । उसमें क्षुब्ध नहीं होना, म्लान नहीं बनना, घबराना नहीं किन्तु धैर्य के साथ आत्म क्षमता को केन्द्रित करते हुए प्रसन्न चित्त से दृढ़धर्मी एव प्रियधर्मी बनकर समय व्यतीत कर लेना चाहिये । दशवैकालिक सूत्र में मनोबल को दृढ़ करने वाला आश्वासन वाक्य है उसे सदा स्मरण में रखना चाहिये, यथा- ***ण मे चिर दुक्खमिणं भविस्सइ ॥ पलिओवम झिज्झइ सागरोवम ,***

किम ग पुण मज्झ इम मणो दुह **॥ भावार्थ–** यह मेरा दुःख शाश्वत सदा रहने वाला नहीं है। बेचारे कई प्राणी नरक में अस ख्य वर्षों तक घोरातिघोर दुःख वेदना सहन कर रहे हक्त। मेरा यह मानसिक शारीरिक दुःख तो उसके सामने कुछ भी नहीं है । आत्मा सबकी समान हक्त । मेरी आत्मा ने भी वैसे ही घोरातिघोर कष्ट अज्ञान दशा में सहन किये हक्त। तो ज्ञानी एव मानव होकर अब मक्त ऐसे सामान्य कष्टों में क्यों घबराऊँ, मेरा घबराना श्रेयस्कर नहीं है । इस तरह चि तन कर श्रेष्ठ आदर्शों को सामने रख कर धैर्य से आपत्ति की घड़ियों को प्रसन्नता पूर्वक पार कर लेना चाहिये ।

(८) कई श्रद्धालु लोग धर्म से लौकिक सुखों की चाहना करते रहते हक्तएव उसकी पूर्ति होने और न होने में ही धर्म की और धर्मगुरुओं की कीमत आ कते रहते हक्त । उन्हें तो चमत्कारी गुरु और चमत्कारी धर्म ही प्रिय लगता है । उन श्रावकों को कामदेव श्रावक के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये कि उसने देव द्वारा दिए कष्ट भी सहर्ष झेल लिए कि तु किसी भी प्रकार की दीनता नहीं की, यों भी नहीं सोचा कि "इतना ऊँचा धर्म धारण किया, तीर्थंकरों की शरण ली और उत्कृष्ट श्रावक धर्म का पालन कर रहा हूँ तो भी कोई स कट को टालने वाला नहीं मिला और इस धर्म के कारण ही यह इतनी बड़ी आफत आई, वास्तव में इस धर्म में कोई दम नहीं है । इसे धारण करने से क्या लाभ हुआ? सुख की जगह दुःख ही मिला ।" ऐसा कोई स कल्प-विकल्प उसमें नहीं था ।

जिसमें ज्ञानयुक्त सच्ची श्रद्धा होती है उसके तो ऐसे उक्त गलत विचार आ ही नहीं सकते । किन्तु केवल अ धश्रद्धा एव स्वार्थ युक्त भक्ति जिनमें होती है वैसे ऐहिक इच्छा वाले भद्रिक श्रद्धालु लोगों की स्थिति शीघ्र डावांडोल होती रहती है । उन्हें चाहिये कि वे धर्म के प्रति ज्ञान गर्भित श्रद्धा रखें । अस्थिर चित्त वाले न बनें एव धर्म से चमत्कार और ऐहिक आशाओं से मुक्त बनें ।

(९) अपार वैभव स पन्न होते हुए भी प्राचीन काल में मानव इतना सरल और पवित्रहृदयी होता था कि शीघ्र ही धर्म का बोध पाकर जीवन परिवर्तित कर लेता था । आज के मानव को भी अपने जीवन में ऐसी

जैन आगम परिचय

सहजता लानी चाहिये । धन स पत्ति को ही सर्वस्व और अ तिम पाथेय नहीं समझना चाहिये । परलोक में चलने वाला भाता(पाथेय)धन नहीं किन्तु धर्म ही है, यह अच्छी तरह हृदय में उतारना चाहिये ।

(१०) अपने किसी भी कोने में छिपी कमजोरी के कारण मानव से नहीं चाहते हुए भी कभी भूल हो जाना स भव है कि तु भूल को भूल समझ लेना, मान लेना और छोड़ कर सुधर जाना, यह जीवन का श्रेष्ठ आदर्श एव उत्थान करने वाला एक गुण है । हम अपने जीवन में भी ऐसा गुण धारण करें एव तत्काल अपनी भूलें स्वीकार कर सन्मार्ग में आ जावें । **(११)** श्रमण श्रमणोपासकों को अपने साधना जीवन में कुछ समय शास्त्र अध्ययन श्रवण एव चि तन मनन में लगाकर ज्ञान की अक्षय निधि को प्राप्त करना चाहिये । दशवैकालिक सूत्र अध्ययन–९, उद्देशक–४ में कहा है कि **श्रुत अध्ययन** चित्त को एकाग्र करने का अचूक उपाय तो है ही, साथ ही समय पर अपनी या अन्य की आत्मा को धर्म में स्थिर करने में भी श्रुत स पन्न साधक अद्भुत सफलता प्राप्त कर सकता है । अतः दत्तचित्त होकर साधकों को यथासमय श्रुत अध्ययन करके अपनी निर्णायक एव कुशल बुद्धि का विकास करना चाहिये । **(१२)** एका तवाद सभी मिथ्या है, अतः अनेका त सत्य स्वीकार करना चाहिये अर्थात् नियति को स्वीकार करते हुए भी पुरुषार्थ की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । किसी भी कार्य की सफलता होने में एक या अनेक समवायों की प्रमुखता स्वीकार करते हुए अन्य का एका तिक निषेध नहीं करना चाहिये। व्यवहार, पुरुषार्थ प्रधान होता है, यह स्वीकारने के साथ ही काल, कर्म, नियति और स्वभाव का भी अपनी-अपनी सीमा का महत्त्व समझना चाहिये । शकड़ाल श्रावक ने अपनी बुद्धि एव समझदारी का आदर्श उपस्थित किया एव अ त में शुद्ध सत्य को निर्णायक बुद्धि से दृढ़ता के साथ स्वीकार किया । जिसे गोशालक की चमत्कारिक शक्ति भी विचलित नहीं कर सकी । उसी तरह जीवन में अनेक उतार चढ़ाव भले ही आवे किन्तु जीवन सत्य के साथ व्यतीत हो ऐसी सरलता एव बुद्धिमानी रखनी चाहिये । नियतिवाद के एका त सिद्धा त को मानने वाले व्यक्ति किसी का भी प्रयत्न या कर्तव्य नहीं मान

सकते । किसी का गुण या अपराध भी नहीं मान सकते, जो कि व्यवहार से सर्वथा विपरीत होता है तथा नियतिवादी के लिये धर्म क्रिया का पुरुषार्थ भी निरर्थक होता है । अतः ऐसे एका त सिद्धा त के मिथ्या चक्कर में नहीं आना चाहिये ।

(१३) अशुभ कर्मों के स योग से किसी तीव्रतम दुरात्मा का निकटतम स योग मिल जाय तो उससे उपेक्षा भाव रखते हुए भी आत्मसाधना की जा सकती है । यह आदर्श महाशतक श्रमणोपासक ने उपस्थित किया। चि तन करें कि- क्या कमी थी रेवती की दुष्प्रवृत्ति में ? मद्य मा स की लौलुप, बारह सौतों को मारने वाली, पीहर से नित्यप्रति गाय के नवजात दो बछड़ों का मा स म गाने वाली, पौषध के समय पति के साथ काम-वासना का व्यवहार करने वाली एव यहाँ तक कि पति के आमरण स थारे के समय भी कामवासना युक्त व्यवहार एव प्रेरणा करने से नहीं रुक सकी । अहो ! आश्चर्य है, कर्मों की विचित्रता और विड़ बनाओं का, कैसा विरोधी स योग, पति तो महान दयालु धर्मात्मा और पत्नि महारस लौलुप, कामासक्त और दुर्गतिगामी । दोनों का मरण समय भी लगभग साथ ही रहा ।**(१४)** व्यसनी या मद्य मा सलोलुप व्यक्ति कहाँ तक गिरता ही जाता है, इसका कोई ठिकाना ही नहीं है वह घोर से घोर पाप कार्यों में फँसता जाता है । यह जानकर सदा सात कुव्यसनों से दूर रहना चाहिये। सात कुव्यसन मानव के लिये सर्वथा त्याज्य है- जुआ, शिकार, वैश्या, परस्त्री, चोरी, मद्य, मा स ।

(१५) जिन शासन में तनिक भी कटुता या अमनोज्ञ व्यवहार क्षम्य नहीं है । सामने वाला कितना भी पापी दुरात्मा क्यों न हो । देखें- एक छोटी सी दिखने वाली भूल के लिये स्वय भगवान ने गौतमस्वामी को भेजकर महाशतक श्रावक को सावधान होने की प्रेरणा की । जैसे कि उसने कोई महान् अपराध कर लिया हो । वास्तव में लोहे और लकड़ी, पीतल और ता बे में लोहे की मेख (कील)क्षम्य हो सकती है किन्तु सोने के पात्र में लोहे की बारीक मेख भी अक्षम्य होती है । जिस तरह सुकौमल पाँव में का टे की बारीक शलाका भी क्षम्य नहीं हो सकती, वह सारे शरीर की समाधि नष्ट करने वाली हो

सकती है । उसी प्रकार अहिंसा एव समभाव की साधना के सर्वोच्च जीवन(स थारे) में पापी व्यक्ति के प्रति की गई कटुता या अमनोज्ञता का व्यवहार भी अक्षम्य है । जिसे सुधारने के लिये तीर्थंकर-गणधर को भी प्रयत्न करना आवश्यक हो जाता है और जिन शासन का गृहस्थ महान साधक भी उस भूल को स्वीकार कर प्रायश्चित्त करता है । यह है जिन शासन की साधना का महान् आदर्श । जिन शासन की साधना में लगे सभी साधकों को अपने जीवन के व्यवहारों का सूक्ष्मतम अवलोकन करना चाहिए एव किसी भी व्यक्ति के प्रति अपने मानस में कटुभाव हो अथवा कटु व्यवहार या अमोज्ञ व्यवहार हो तो उसे अपनी ही भूल समझकर स्वीकार करना चाहिये और उसे सुधारना अपनी आराधना के लिये आवश्यक समझना चाहिये ।

आजकल साधकों के मन में न मालूम किन-किन के प्रति कटुता, अमनोज्ञता, अप्रसन्नता, अमैत्री के स कल्प चक्कर काटते ही रहते हक्त । किन-किन के प्रति अमनोज्ञ भाव और अमनोज्ञ व्यवहार के चक्र चलते रहते हक्त । उन सभी साधकों को आत्म जागरणा कर सजग-सावधान होना चाहिये । अन्यथा बाह्य क्रियाएँ और विचित्र विकट साधनाएँ सफलता की श्रेणी में नहीं पहुँचा सकेगी । इस पर बार बार सभी श्रमणोपासकों को और विशेष कर निर्ग्रंथ साधना करने वालों को आत्मसाक्षी पूर्वक मनन चि तन एव स शोधन अवश्य करना चाहिये । सा प्रदायिक फूट-फाट के कारण कितने ही उच्चकोटी के साधक श्रमण एव श्रावक अपने ही पड़ोसी श्रमण श्रावकों के प्रति या गुरुभाई श्रमण या साधर्मिक भाईयों के प्रति जीवनभर का वैर-भाव वैमनस्य भाव स जोये रखते है, स भाल कर रखते है, स वत्सरीयें कितनी भी बीत जाय वे परस्पर मैत्रीभाव बढाने की जगह ईर्ष्या, द्वेष ही बढाते हैं । फिर भी अपने को परम धर्मात्मा और उत्कृष्टाचारी साधक समझते हैं, वास्तव में वे फूट में धर्मधन लुटाकर मिथ्यात्व रूपी दिवालियेपन के ही अधिकारी होते हैं ।

(१६) कई धर्म श्रद्धालुजन व्रतों की प्रेरणा करने पर घर की परिस्थिति का आल बन लेकर व्रत नियम एव साधनाओं से व चित रह जाते हक्त। उन्हें महाशतक श्रमणोपासक का आदर्श सामने रखना

चाहिये कि तेरह पत्नियाँ होते हुए भी भगवान के पास व्रत धारण करने में उसने शर्म या बहाना बाजी नहीं की कि तु आत्मीयता से धर्म मार्ग को स्वीकार किया । बारह स्त्रियों की मृत्यु दुर्घटना रेवती पत्नि के द्वारा एक श्रावक के घर में कर दी गई तो भी उस श्रावक ने सामायिक और महिने के छः पौषध आदि साधना नहीं छोड़ी । स्वय की प्रमुख स्त्री का मा साहार और मद्य सेवन नहीं छूट सका तो भी महाशतक श्रावक अपनी साधना की प्रगति करते ही गये ।

रेवती की विलासिता एव आसक्ति बढ़ती ही गई तो भी महाशतक की अपनी साधना बीस वर्ष में अविराम स थारे तक पहुँच गई । कितनी उपेक्षा, कितनी एकाग्रता, शा ति, समभाव रखा होगा महाशतक श्रमणोपासक ने, कि ऐसी विकट स योगजन्य स्थिति में भी उन्होंने गृहस्थ जीवन में अवधिज्ञान एव आराधक अवस्था प्राप्त कर ली । इन महान् श्रमणोपासक के शा त एव धैर्य स युक्त साधनामय जीवन से प्रेरणा पाकर हमें अनेकानेक गुणों को प्राप्त करके अपने जीवन को उज्जवल बनाना चाहिये ।

(१७) आजकल अधिकतर लोग दुर्घटनाओं के वातावरण से व्याप्त होकर व्यक्ति के दोष से भी धर्म को बदनाम करने में लग जाते हक्त, यह उनकी भावुकता एव अज्ञानदशा से होने वाली एक गहरी भूल है। आध्यात्म धर्म किसी को अकृत्य करने की र च मात्र भी प्रेरणा नहीं करता है । धार्मिक स स्कारों वाले व्यक्ति के परिवार में यदि कोई अकृत्य हो भी जाता है तो वह उस पारिवारिक सदस्य की अधार्मिकता आदि दूषणों का अथवा पूर्व कृत कर्मों का प्रतिफल है, ऐसा समझना चाहिये । धर्म और धार्मिक व्यक्ति तो ऐसे समय में भी अपने आदर्श एव सिद्धा त में कायम रहते हक्त । कहा भी है–

कीमत घटे नहीं वस्तु नी, भाखे परीक्षक भूल ।
जेनो जेहवो पारखी, करे मणी नो मूल ॥

०००००

अ तकृत दशा सूत्र ८

जिनशासन में प्रत्येक तीर्थंकर के शासन में उनके शासन के अनुरूप स पादन युक्त द्वादशा गी की रचना के लिये उन-उन तीर्थंकरों के प्रथम दिन के प्रतिबुद्ध शिष्यों में से गणधर लब्धि स पन्न शिष्य, गणधर पद से विभूषित किये जाते है । उन्हें ही द्वादशा गी स पादन का कर्तव्य एव अधिकार प्रभु निर्दिष्ट एव स्वतः गणधर पद सिद्ध होता है । वे सभी गणधर मिलकर द्वादशा गी की रचना करते हक्त । यों द्वादशा गी शाश्वत भी है, जो तात्त्विक भावों एव सिद्धा तो की अपेक्षा से है । कथानक, घटनाएँ, दृष्टा त, स वाद, प्रश्नोत्तर, तीर्थंकर स्तुति, व्यक्ति गुण वर्णन, परिचय, प्रतिबोधक वर्तमान घटित विवरण आदि गणधर भगव त अपने शासन के अनुरूप स पादित करते हैं । अतः प्रत्येक शासन की अपेक्षा द्वादशा गी के रचनाकार उस शासन के गणधर कहे जाते हक्त। अतः यह अ तगड़ सूत्र द्वादशा गी का आठवाँ अ गसूत्र होने से गणधर कृत–रचित एव स पादित मान्य किया गया है ।

नामकरण :– किसी भी शास्त्र का नामकरण उसके मुख्य विषय, विशिष्ट विषय, उसके अ तर ग भाव या प्रार भिक अध्ययन अथवा प्रार भिक शब्द आदि पर से; यों अनेक तरह से नामकरण किया जाना व्याकरण एव साहित्य सम्मत है । तदनुसार इस शास्त्र में उग्र के अ तिम क्षणों में ही केवलज्ञान उत्पादन करके मोक्ष जाने वाले ९० भव्यात्माओं का वर्णन होने से **अ तकृत–अ तगड़** नामकरण है । इसके साथ **दशा** शब्द जो लगा है उसका कारण यह बताया जाता है कि इसके आठ वर्ग में से प्रथम वर्ग में दस अध्ययन है।

जिस तरह विपाक सूत्र के दो विभाग में से प्रथम दुःख विपाक विभाग में १० अध्ययन है, दूसरे सुखविपाक विभाग में भी १० अध्ययन है । इस प्रकार १० अध्ययनों की प्रमुखता से उस शास्त्र को स्थाना ग सूत्र के १०वें स्थान में **कर्मविपाक दशा** नाम से कहा गया है और १० अध्ययनों के नाम में दुःखविपाक के १० अध्ययनों के नाम गिनाये हक्त और सुखविपाक लघु होने से उसे नगण्य किया है । इसलिये इस शास्त्र में जीवन के अ तिम क्षणों में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जाने वाले जीवों का वर्णन तथा प्रथम वर्ग के १० अध्ययन होने से, इस शास्त्र का पूरा नाम **अ तगड़दशा सूत्र** है ।

व्याख्या साहित्य :- इस सूत्र पर आचार्य अभयदेवसूरिजी की प्राचीन टीका उपलब्ध है । अन्य अनेक कृतियाँ इस सूत्र पर प्रकाशित प्रचारित हुई है । स्थानकवासी पर पराओं में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी का, आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. का, युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा. का, गुजरात से गुरु प्राण फाउन्डेशन राजकोट का एव राजस्थान से सुधर्म प्रचार म डल वगैरह का मुख्य रूप से प्रसिद्धि प्राप्त है।आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित आगम सारा श एव आगम प्रश्नोत्तर हिंदी तथा गुजराती सरल-सुगम भाषा में इस सूत्र का प्रकाशित है ।

विषय वर्णन :- वर्तमान में इस शास्त्र के मुख्य विभाग रूप ८ वर्ग है और पेटा विभाग रूप कुल ९० अध्ययन है । जिसमें बावीसवें अरिष्टनेमि भगवान के शासन के ५१ जीवों का वर्णन करने के बाद चौबीसवें भगवान महावीर स्वामी के शासन के ३९ जीवों का वर्णन है । राजा, राजकुमार, राजराणियों, श्रेष्ठीपुत्रों एव मालाकार, बाल, युवक, प्रौढ़ तथा वृद्ध अनेक वय वालों के स यम, तप, श्रुत अध्ययन, ध्यान, आत्मदमन, क्षमाभाव आदि आदर्श गुणों युक्त वैराग्यपूर्ण जीवन का वृत्ता त इस सूत्र में अ कित है ।

९० मुक्तात्माओं के अतिरिक्त सुदर्शन श्रावक, कृष्ण वासुदेव एव देवकी राणी के जीवन की एक झाँकी भी अ कित है, जिसमें तीनों को वीतराग वाणी के प्रति दृढ़ श्रद्धावान एव प्रियधर्मी दृढ़धर्मी बताया गया है । उपासकदशा सूत्र के समान प्रार भ से इस सूत्र में भी दस अध्ययन ही थे, ऐसा ठाणा ग-समवाया ग सूत्र एव अनेक ग्रंथों में आये वर्णनों से ज्ञात होता है । न दीसूत्र की रचना के समय इस सूत्र का ९० अध्ययनात्मक यह स्वरूप मौजूद था अर्थात् न दी सूत्र कर्ता देववाचक श्री देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने अथवा उनके समकालीन या कुछ पूर्ववर्ती बहुश्रुत पूर्वधर श्रमण भगव त ने इस सूत्र का यह प्रारूप स कलित कराया हो ऐसा ज्ञात होता है ।

महत्त्व एव वा चन पर परा :- कथाओं एव जीवन चारित्रों के माध्यम से इस सूत्र में अनेक शिक्षाप्रद, जीवन-प्रेरक तत्त्वों का मार्मिक रूप से कथन किया गया है, अतः अनेक अपेक्षा से यह सूत्र पाठकों के लिये एव विशेष कर व्याख्याताओं व श्रोताओं के लिये भी रुचिकर

आगम है । इसीलिए स्थानकवासी पर परा में प्रति वर्ष पर्युषण पर्व के आठ दिनों में इस सूत्र का व्याख्यान सभा में वाँचन एव श्रवण किया जाता है।अ गों में यह आठवाँ अ ग है, इसके आठ वर्ग है, पर्युषण के दिन भी आठ है एव आठ कर्मों को ही क्षय करके आत्मा के आठ गुणों को प्रगट करने का साधक का प्रमुख लक्ष्य है । इस प्रकार स ख्या मिलान करके भी इस सूत्र का पर्युषण में वाँचन श्रवण से स ब ध जोड़ा जाता है । धर्मध्यान के इन आठ दिनों में जीवन स स्कारित बने, गृहस्थ जीवन में भी त्याग-वैराग्य की वृद्धि होवे, विवेक बढ़े, विचार व प्रवृत्तियाँ शुद्ध बने एव प्रबल प्रेरणाओं से स यम धारण करने का दृढ़ आत्मस कल्प बने, इसी उद्देश्य से इस शास्त्र का पर्युषण में वाँचन श्रवण किया जाता है ।

वर्गात्मक परिचय :- **(१)** प्रथम वर्ग में १० अध्ययन है, जिसमें गौतमकुमार का विस्तृत वर्णन है, शेष स क्षिप्त है ।**(२)** दूसरे वर्ग में ८ अध्ययन है, ये सभी स क्षिप्त है । **(३)** तीसरे वर्ग में १३ अध्ययन है जिसमें देवकी राणी, कृष्ण, अनिकसेन आदि का और गजसुकुमाल का विस्तृत वर्णन है ।**(४)** चौथे वर्ग में- जालिकुमार आदि दस का स क्षिप्त वर्णन है । चारों वर्ग में कुल ४१ यादव पुरुषों का वर्णन है। **(५)** पाँचवें वर्ग में- १० अध्ययन है, जिसमें ८ कृष्ण की पटराणियों का एव दो पुत्रवधुओं का वर्णन है एव कृष्ण वासुदेव की धर्मदलाली रूप दीक्षा दलाली का तथा द्वारिका विनाश का कथन है । इस प्रकार पाँच वर्गो में अरिष्टनेमिनाथ भगवान के शासनवर्ती ५१ जीवों का वर्णन है । **(६)** छट्ठे वर्ग में- १६ अध्ययन है । जिसमें अर्जुनमाली और एव ताकुमार का विस्तृत वर्णन है । **(७)** सातवें वर्ग में- श्रेणिक राजा की न दा आदि १३ राणियों का स क्षिप्त वर्णन है । **(८)** आठवें वर्ग में- श्रेणिक राजा की काली आदि १० राणियों का विस्तृत वर्णन है।यों पिछले तीन(६,७,८) वर्गों में भगवान महावीर स्वामी के शासन के ३९ जीवों का वर्णन है । यों दो तीर्थंकरों के शासन के ५१+३९=९० जीवों का वर्णन आठ वर्गों में पूर्ण होता है ।वर्तमान में उपलब्ध यह सूत्र ९०० श्लोक परिमाण माना गया है ।

०००००

अनुत्तरोपपातिक सूत्र ९

ग्यारह अ ग शास्त्रों में यह नौवाँ अ गसूत्र है, अतः इसके रचनाकार गणधर भगव त है । इसका परिमाण २९२ श्लोक प्रमाण माना गया है । यह शास्त्र कथाप्रधान अ गसूत्र है ।

इस शास्त्र में तीन वर्ग एव उनमें क्रमशः १०, १३, १० यों कुल ३३ अध्ययन है । जिसमें ३३ भव्यात्माओं का जीवन अ कित है । दो वर्गों में श्रेणिक राजा के पुत्रों का और तीसरे वर्ग में धन्ना श्रेष्ठी आदि विविध आत्माओं का स यम ग्रहण कर मुक्त होने तक का वर्णन है । पर तु वर्तमान स यम साधना से ये ३३ ही आत्माएँ अनुत्तर(श्रेष्ठ) विमान स ज्ञक देव विमानों में उत्पन्न हुए हक्त । आगे फिर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर स यम आराधना करके समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष जायेंगे ।

व्याख्या साहित्य :- इस पर प्राचीन व्याख्या आचार्य अभयदेवसूरि की है । जो स क्षिप्त है । अर्वाचीन व्याख्या साहित्य हिंदी स स्कृत एव गुजराती भाषा में अनेक जगह से प्रकाशित उपलब्ध है ।स्थानकवासी पर परा में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी का, आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. का, युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा. का, गुजरात से श्री प्राण फाउन्डेशन राजकोट का एव राजस्थान से सुधर्म प्रचार म डल वगैरह का मुख्य रूप से प्रसिद्धि प्राप्त है।आगम मनीषी श्री तिलोक मुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित आगम सारा श एव आगम प्रश्नोत्तर हिंदी तथा गुजराती सरल-सुगम भाषा में इस सूत्र का प्रकाशित है ।

विशिष्ट पात्र :- इस सूत्र के विशिष्ट पात्र इस प्रकार हैं- भगवतीसूत्र एव निरयावलिका सूत्र वर्णित वेहल्ल और वैहायस दोनों कोणिक के सगे भाइयों का अर्थात् चेलणा राणी के पुत्रों का दीक्षित होने का तथा दूसरे एव तीसरे अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने का कहा गया है ।

श्रेणिक के पुत्र एव श्रेष्ठी पुत्री न दा राणी के आत्मज अभयकुमार का भी वर्णन है । जिसमें यह दर्शाया गया है कि अभयकुमार भगवान महावीर के पास दीक्षित होकर स यम तप की आराधना करके ५ वर्ष

की दीक्षा पर्याय एव एक महीने के स थारे से आराधक बन कर विजय नामक प्रथम अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए ।

तीसरे वर्ग के प्रथम अध्ययन में श्रेष्ठीपुत्र धन्ना मुनि का विशिष्ट एव रोचक विस्तृत वर्णन है, जिसमें उनके तपस्या से कृश बने शरीर का अल कारिक भाषा में उपमाओं से परिपूर्ण वर्णन किया गया है तथा श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर में भगवान ने १४००० श्रमणों में धन्ना अणगार की स यम आराधना को उस समय सर्व श्रेष्ठ, महादुष्कर, कठिनतम, महानिर्जरा वाली कहा है ।

अध्ययन में आये नाम विचारणा :- धारिणी, लष्टद त एव वेहल्ल ये तीन नाम इस शास्त्र में दुबारा आये हैक्त । जिसमें से **धारिणी** नाम की श्रेणिक की दो राणिया थी ऐसा समझना उपयुक्त होता है । प्रथम वर्ग की धारिणी माता के सात पुत्रों का वर्णन है । द्वितीय वर्ग की धारिणी माता के १३ पुत्रों का वर्णन है । अलग-अलग दोनों वर्गों में वर्णित धारिणी माता को एक नहीं किया जा सकता है । एक करने पर नई-नई उलझने, श काएँ उत्पन्न होती है जिनका समाधान हो नहीं पाता है ।

लष्टद त नाम भी प्रथमवर्ग एव दूसरे वर्ग यों दोनों में आया है । प्रथम वर्ग में सातमा अध्ययन लष्टद त का है जिसने १२ वर्ष दीक्षापर्याय का पालन किया था । दूसरे वर्ग के लष्टद त ने १६ वर्ष दीक्षा का पालन किया था । प्रथम वर्ग का लष्टद त चौथे अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुआ है और दूसरे वर्ग का लष्टद त दूसरे अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुआ है । दोनों लष्टद त श्रेणिक के पुत्र थे । इस नाम साम्यता से भी दोनों की माता धारिणी भिन्न-भिन्न थी, यह स्पष्ट होता है । क्यों कि एक ही माता-पिता की स तान के एक समान नाम नहीं दिये जाते हक्त। **वेहल्ल** नाम पहले और तीसरे दो वर्गों में आया है । पहले वर्ग का वेहल्ल श्रेणिक और चेलना राणी का पुत्र है। इसकी **दीक्षा पर्याय १२ वर्ष** की है एव यह तीसरे अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुआ है । जब की तीसरे वर्ग के वेहल्ल के माता पिता का नाम स्पष्ट नहीं मिलता है । राजगृहीनगर का कथन है एव **६ महीने की दीक्षापर्याय** से सर्वार्थ सिद्ध विमान में जाने का कथन है । अतः ये दोनों **वेहल्ल** भी अलग-

अलग है । स क्षेप में- प्रथम वर्ग का वेहल्ल श्रेणिक राजा और चेलना राणी का पुत्र होना सूत्र पाठ से स्पष्ट है तथा तीसरे वर्ग के वेहल्ल का दीक्षा महोत्सव उसके पिताने किया था, इतना ही सूचन मूलपाठ में है कि तु माता-पिता के नाम का कोई स्पष्टीकरण पाठ में नहीं है ।

शिक्षा सूचन :-समझना यह है कि सरीखे नाम एव स क्षिप्त पाठों के वर्णन में अनुमान से कुछ भी कल्पित करके उसकी पर परा चला देने एव उसे ही आग्रह युक्त धारणा बना देने से उलझन युक्त तत्त्व खड़े रहते हक्त । तथा अलग-अलग वर्गों के व्यक्तिओं के माता-पिता दोनों को एक कर देने से भी नाम स ब धी उलझने खड़ी रहती है । इसलिये जितना स्पष्ट वर्णन मिलता है उतना ही कथन करने से तथा अलग वर्ग के व्यक्तियों के माता-पिता दोनों को एक नहीं कर देने से अर्थात् माता को अलग और सरीखे नाम वाली मान लेने से उलझन वाले प्रश्न खड़े नहीं रहते हक्त ।अ तगड़ सूत्र और इस अनुत्तरोपपातिक सूत्र में इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि अलग वर्ग के वर्णित व्यक्तियों को सगे भाई या एक माता-पिता की स तान मानने की भूल कभी नहीं करनी चाहिये ।

प्रश्नव्याकरण सूत्र १०

वर्तमान में उपलब्ध ११ अ गसूत्रों में यह दसवाँ अ गसूत्र है । अ गसूत्र होने से इस सूत्र के रचनाकर्ता गणधर प्रभु ही कहे जाते है । इसमें दो विभाग है-आश्रव विभाग और स वर विभाग । दोनों ही विभागों में पाँच-पाँच अध्ययन होने से कुल १० अध्ययनमय यह एक ही श्रुत स्क ध है । उपलब्ध यह सूत्र १२५६ श्लोक परिमाण माना गया है ।

व्याख्या साहित्य :- इस सूत्र के प्राचीन व्याख्याकार आचार्य अभयदेव सूरिजी हैं । उनकी स स्कृत टीका उपलब्ध है । इसके अतिरिक्त इस सूत्र पर स स्कृत, हिंदी, गुजराती में व्याख्याएँ उपलब्ध है । लुधियाना, अहमदाबाद, सैलाना, ब्यावर और राजकोट से इस सूत्र पर विस्तृत व्याख्या साहित्य प्रकाशन हुआ है । आगम भाषा दृष्टि से यह कठिन शास्त्र है तथापि वर्तमान में आचार शास्त्र होने से प्रकाशन युग में इसका प्रचार एव पठन-पाठन विशेष हुआ है । आगम मनीषी श्री तिलोक मुनिजी म॰सा॰ द्वारा स पादित स क्षिप्त सारा श योजना में यह आगम ५५ पृष्ठों में और परिशिष्ट सहित कुल ८० पृष्ठों में हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषा में लघु पुस्तक रूप में प्रकाशित उपलब्ध है । ३२ आगम के प्रश्नोत्तर प्रावधान में भी यह आगम हिंदी गुजराती दोनों भाषा में प्रकाशित हुआ है ।

नाम विचारणा :- इस सूत्र का मौलिक नाम **पण्णा वागरण** है । जिसके दो प्रकार से अर्थ हो सकते है- (१) प्रश्न और व्याकरण अर्थात् प्रश्नोत्तरमय यह शास्त्र है अथवा जिसमें आये अनेक प्रश्नोत्तर प्रसिद्ध है अथवा विद्या प्रयोग के माध्यम से इसमें पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर प्राप्त होता है ।(२) पण्णा=प्रज्ञा और व्याकरण=विकास, विस्तार । जिसके अध्ययन से विशिष्ट प्रकार की बुद्धि का विकास होता है, वह शास्त्र प्रश्नव्याकरण है अर्थात् इस शास्त्र में धर्ममय बुद्धि के विकास योग्य भाँति-भाँति के बहुत सारे विषय भरे हुए होने से भी **पण्णावागरण** नामकरण उपयुक्त रहा है । कालान्तर से प्रश्न विद्याओं के कारण **पण्णा** से **पण्हावागरण** बना दिया गया लगता है ।

रचनाकार :– स्थाना ग सूत्र समवाया ग सूत्र और न दी सूत्र में इस शास्त्र का जो परिचय मिलता है, वह गणधर रचित शास्त्र का है । कि तु तदनुसार इसमें कुछ भी नहीं है । इस शास्त्र में आज जो विषय उपलब्ध है वह ऊपरोक्त तीनों सूत्रों से सम्मत नहीं है । वर्तमान में जो विषय प्राप्त है वह सारा विषय गणधर रचित नहीं कि तु आचार्य रचित है, ऐसा आभास होता है । फिर भी इस स ब ध में कोई भी इतिहास स केत नहीं होने से और यह विषय गणधर रचित दसवें अ ग आगम के नाम से रचा गया होने के कारण श्रुतिपर परा से इसे अ गआगम कहा जाता है, जो अपेक्षा विशेष से रूढ़ सत्य(व्यवहार सत्य)में समाविष्ट होता है । अतः हम व्यवहार–भाषा से इसे गणधर रचित कहते हक्त ।

ऐतिहासिक विचारणा :– अनुमान या परिशेष आदि नयों की विचारणा से यह उपलब्ध स्वरूप वाला सूत्र देवर्धिगणी आचार्य के लेखन समय में निर्धारित किया गया या करवाया हुआ है जो सर्व बहुश्रुत सम्मत शास्त्र है और इसका वर्णित विषय तथा प्रत्येक वाक्य समस्त जिनवाणी रूप गणधर रचित अन्य आगमों से सम्मत एव पूर्ण अनुमत है । अतः इस उपलब्ध आगम को इसके विषय स्वरूप से और बहुश्रुत आचार्यों की प्रकृष्ट श्रद्धा से दसवें अ ग आगम के रूप में आज के बुद्धिवादी युग में भी एक मत से स्वीकारा जा रहा है । तात्पर्य यह है कि श्वे॰ जैन के सभी फिरके अपने मान्य आगमों की स ख्या में इस आगम को इसी रूप में आज भी अ ग आगम में बिना किसी तर्क या हिचकिचाट के मान्य कर रहे हक्त । अन्य चिंतन-विचारणा से यह शास्त्र गणधर रचित ही है, ऐसा भी कहा जा सकता है ।

गणधर रचित द्वादशा गी के विषय का परिचय व्यवस्थित रूप से **समवाया ग** सूत्र एव **न दी** सूत्र में है । वहाँ क्रम प्राप्त इस सूत्र का भी दसवें अ ग शास्त्र के रूप में विषय परिचय स्पष्ट दिया गया है। **स्थाना ग** सूत्र के दसवें स्थान में इस सूत्र के दस अध्ययन कहे गये है और वहाँ उन अध्ययनों के नाम भी दिये है । उन नामों के आधार मात्र से इस सूत्र के कितने ही विषयों का परिज्ञान होता है ।

इन तीन श्वेता बर जैन सूत्रों के सिवाय दिग बर जैनों के भी

दो ग्र थों में इस सूत्र के विषय का निर्देश मिलता है । (१) जयधवला में (२) तत्त्वार्थवार्तिक में ।

इस प्रकार गणधर रचित प्राचीन प्रश्नव्याकरण सूत्र के विषय में ऊपरोक्त ५ आगमों में जो परिचय मिलता है, वह इस प्रकार है–

(१) न दी सूत्र में– प्रश्नव्याकरण सूत्र में एक सौ आठ प्रश्न है । एक सौ आठ अप्रश्न(प्रश्न बिना के उत्तर) हक्त और १०८ प्रश्नाप्रश्न अर्थात् विविध प्रश्न और तत्स ब धी उत्तर है । जैसे कि– अ गुष्ट प्रश्न, बाहु प्रश्न अद्दाग(दर्पण)प्रश्न । अर्थात् १०८+१०८+१०८=३२४प्रकार की प्रश्न विद्याएँ हैं । अन्य भी विचित्र सैकड़ों विद्याएँ है । इसके सिवाय नागकुमार और सुवर्णकुमार देवों के साथ हुए मुनियों के दिव्य स वाद भी है । यह विषय निर्देश है । फिर आगे के वर्णन में इस अ ग का आकार बताते हुए कहा है कि यह एक श्रुत स्क ध है अर्थात् इसमें मुख्य बड़े विभाग नहीं है । इसमें ४५ अध्ययन हक्त, ४५ उद्देशनकाल हक्त ४५ समुद्देशन काल हक्त ।

(२) समवाया ग सूत्र में– प्रश्नव्याकरण **दशा** सूत्र में स्वसमय परसमय प्रज्ञापक प्रत्येक बुद्धों के विविधार्थक(अनेकार्थ वाली) भाषा द्वारा कहे गये वचन है । आचार्य भाषित अनेक अतिशय, विद्या, लब्धि वगैरह, ज्ञानादि गुण, उपशम आदि भावों का अनेक प्रकार से विस्तृत वर्णन है । जगत का हित करने वाले वीर महर्षियों के द्वारा कहे गये विविध प्रकार के विस्तृत सुभाषित वचन है । दर्पण, अ गूठा, भुजा, असि, मणि, वस्त्र और सूर्य; इनको आश्रय करके अनेक महाप्रश्न विद्याओं के कथन है । मन से पूछे गये प्रश्न का उत्तर देने वाली विद्या, अधिष्ठायक देव सहाय की मुख्यता से अनेक गुणों को(उत्तरों को) प्रगट करने वाली विद्या, जो खुद के वास्तविक और द्विगुण प्रभावक उत्तरों से जनता को विस्मित करे । इन विद्याओं के चमत्कारों से और सत्य वचन से लोगों के हृदय में दृढ़ विश्वास उत्पन्न होता है कि भूतकाल में जिनशासन में स यमतप के धारक उत्तमज्ञानी तीर्थंकर भगव त हुए हक्त; जिन्होंने दुरधिगम दुरवगाह सर्वज्ञ सम्मत, अबुधजन प्रबोधकारक, प्रत्यक्ष प्रतीति कारक प्रश्नों के अनेक गुण वाले और

महान अर्थवाले(जिनप्रणीत) उत्तर इस सूत्र में कहे हक्त । यह शास्त्र एक श्रुतस्क ध है(इसमें ४५ अध्ययन हक्त ।) ४५ इसके उद्देशनकाल और ४५ समुद्देशन काल हक्त ।

(३) स्थाना ग सूत्र में– प्रश्नव्याकरण दशा सूत्र के दश अध्ययन है यथा– (१) उपमा (२) स ख्या (३) ऋषिभाषित (४) आचार्य भाषित (५) महावीर भाषित (६) क्षोमकप्रश्न (७) कोमलप्रश्न (९) आदर्शप्रश्न (९) अ गुष्ठ प्रश्न (१०) बाहुप्रश्न ।

(४) तत्त्वार्थवार्तिक दिग बर ग्र थ में–प्रश्नव्याकरण सूत्र में अनेक आक्षेप और विक्षेप के द्वारा, हेतु और नय के आश्रित प्रश्नों के उत्तर दिये गयेत्ह। लौकिक, वेदिक आदि शब्दों के अर्थ का निर्णय किया गया है । ***(आक्षेप-विक्षेपेर्हेतुनयाश्रिताना प्रश्नाना व्याकरण प्रश्नव्याकरण । तस्मि ल्लौकिक वेदिकानामर्थाना निर्णयः)***

(५) जयधवला दिगम्बर ग्र थ में– प्रश्नव्याकरण सूत्र में आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, स वेगिनी और निर्वेदनी, इन चार कथाओं का तथा प्रश्नों के आधार से, नष्ट, मुष्टि, चि ता, लाभ, अलाभ, सुख-दुःख और जीवन-मरण का वर्णन किया गया है । ***(पण्हावागरणं णाम अ ग अक्खेवणी, विक्खेवणी, स वेगणी, णिवेदणी णामाओ चउव्विह कहाओ । पण्हादो णट्ठ-मुट्ठि-चिंता-लाहालाह-सुहदुक्ख-जीविय-मरणाणि च वण्णेति ।)***

विचारणा–निष्कर्ष– इन सभी परिचयों के आधार से यह स्पष्ट हो जाता है कि गणधर रचित प्रश्नव्यारण सूत्र में आकर्षक प्रश्न-उत्तर या प्रश्न विद्या स ब धी निरूपण अवश्य थे । उसी की प्रधानता से इस शास्त्र का नाम प्रश्नव्याकरण रखा गया है । तथापि मात्र प्रश्न-उत्तर ही थे ऐसा नहीं माना जा सकता । क्यों कि उसमें अन्य अनेक विषय भी बहुत थे । जैसे कि–(१) उपमा स ब धी वर्णन भी था (२) स ख्या स ब धी निरूपण भी था (३) आचार्यभाषित नामक विषय स कलन भी था (४) प्रत्येक बुद्ध ऋषि-महर्षि भाषित प्रकरण भी था एव (५) महावीर भाषित नामक प्रकरण भी था । यह बात स्थाना ग और समवाया ग दोनों सूत्रों से सम्मत और पुष्ट होती है । न दी सूत्र अनुसार प्रायः प्रश्न उत्तर वाला विषय

ही था, अन्य विषयों का यहाँ कुछ कथन नहीं है । तथापि न दी में ४५ अध्ययन और ४५ उद्देशन- समुद्देशन काल का कथन हुआ है । अतः ऐसा समझ सकते है कि परिचय के शब्दों में मुख्य रूप से मात्र प्रश्न निरूपक शब्द ही दिये है । अन्य विषयों को गौण किया है और ४५ अध्ययन कहने से ऋषिभाषित आदि अन्य विषयों का स कलन भी हो जाता है ।

दिग बर ग्र थ **जयधवला** के अनुसार इस शास्त्र में चार प्रकार की धर्मकथाओं का स कलन था और अ त में कुछ प्रश्न और उत्तर निमित्त ज्ञान स ब धी तथा मुष्ठि आदि रूप प्रश्नविद्या स ब धी ज्ञान भी था । **जयधवला** का यह कथन कुछ तर्क स गत भी इसलिये है कि छट्ठा सातवाँ आठवाँ नौवाँ अ गसूत्र कथाप्रधान है और ग्यारहवाँ अ ग सूत्र भी कथा प्रधान है तो बीच में यह दसवाँ अ ग भी कथा–उपदेशप्रधान ही रहा होगा । तथापि प्रश्न विद्याओं एव चमत्कार के विषय की आकर्षकता के कारण वह विषय ज्यादा प्रसिद्धि में और चर्चा में रह गया और कथा उपदेश विषय चर्चा में अधिक नहीं आया । तथापि स्थाना ग सूत्र और समवाया ग सूत्र अनुसार इसमें आचार्यों, प्रत्येक बुद्धों, ऋषियों-महर्षियों के और महावीर के उपदेश वचन भी बहुत है और उपदेश विषय विविध कथाओं से परिपूर्ण भी हो सकते हक्त ।जयधवला बहुत प्राचीन है, उसके कथन में प्राचीन एव प्रार भिक अवस्था अ तर्निहित हो ऐसा ज्यादा स भव लगता है ।

इस प्रकार यह शास्त्र छट्ठे से ग्यारहवें अ गशास्त्र के समान कथा उपदेश प्रधान भी था और अति विशाल भी था । कि तु प्रश्न विद्याओं के चमत्कार, दुरुपयोग आदि स भावनाओं के कारण इसमें आवश्यक समझकर पूर्वाचार्यों ने यथासमय परिवर्तन किया होगा ।

स भावना :– स भवतः शास्त्र लेखन समय में देवर्धिगणी की प्रमुखता में इस सूत्र के **प्रथम अध्ययन** में रहे पाँच आश्रव पाँच स वर के विषय को ज्यों का त्यों रख दिया होगा । प्रश्न विद्याओं स ब धी विषय को लेखित नहीं किया होगा । **प्रत्येक बुद्ध ऋषिभाषित** प्रकरण को ऋषिभाषित शास्त्र के रूप में अलग रख दिया होगा और

उसका नाम भी न दीसूत्र में दे दिया गया है । **महावीर भाषित** प्रकरण को उत्तराध्ययन सूत्र रूप में रख दिया गया और पीछे से पर परा में कल्पना द्वारा उसे महावीर स्वामी की अ तिम देशना रूप में किसी ने प्रसिद्ध कर दिया। वास्तव में वह प्रश्नव्यारण का ही विभाग है और उससे मुक्त किया गया है । प्रश्नव्याकरण में **महावीर भासियाइं** अध्ययन के ३६ उद्देशक रूप विभाग होंगे । स्वत त्र शास्त्र हो जाने से वे ३६ अध्ययन रूप में निखरित हुए हैं । जैसे कि **निशीथ अध्ययन** आचारा ग सूत्र का एक अध्ययन था । जब उसे अलग शास्त्र रूप में रख दिया गया या लिख दिया गया तो वह २० अध्ययन या उद्देशक युक्त शास्त्र हो गया है । पूर्व में वह एक अध्ययन ही था । इसी तरह ऋषिभाषित प्रकरण में ४५ विषय विभाग थे जो आज ऋषिभाषित उपलब्धशास्त्र में ४५ अध्ययन के रूप में है ।

वर्तमान में– ऊपरोक्त स कलन के अनुसार एव इतिहास वेत्ता पूज्य पुण्यविजयजी म॰सा॰, आचार्य तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञ आदि चि तकों के अनुसार आज यह प्रश्नव्याकरण सूत्र विभिन्न रूप में उपलब्ध है, यथा– **(१)** ऋषिभाषित कालिक आगम, न दी में जिसका नाम है । **(२)** उत्तराध्ययन सूत्र कालिक आगम । ये दोनों सूत्र कालिक सूत्रों की सूचि में न दीसूत्र में है और इन दोनों के कर्ता का नाम आजतक भी नहीं मिला है । इसी से भी ये प्रश्नव्याकरण कालिक सूत्र के ही विभाग है यह मानना दोष रहित होता है । **(३)** वर्तमान का ५ आश्रव ५ स वर विषय भी इसी प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम अध्ययन में अथवा आचार्यभाषित प्रकरण रूप चौथे अध्ययन में था, वही रख दिया गया होने से वह प्रश्नव्याकरण सूत्र छोटे रूप में हो गया है, ऐसा स्वीकारना उपयुक्त होता है । इसी बात को **आचार्य तुलसी** ने भी लाडनूँ से प्रकाशित प्रश्नव्याकरण सूत्र मूलपाठ की **भूमिका** में स भावना रूप से स्वीकार किया है ।**(४)** अवशेष प्रश्नविद्या आदि का विषय मौखिक रूप में कुछ समय शिष्य प्रशिष्यों में चलते रहे होंगे ।कालान्तर से किसी ने जयपाहुड़ नामक व्याख्या ग्र थ की रचना करके उसमें उन विद्याओं के अ श का समावेश किया । वह ग्र थ भी हस्तलिखित रूप में अहमदाबाद की एल.ड़ी. इन्स्टीटयूट में सुरक्षित है एव प्रकाशित भी हुआ है ।

इस प्रकार प्राचीन गणधर रचित इस प्रश्नव्याकरण आगम के आज चार प्रारूप उपलब्ध है– (१) प्रश्नव्यारण सूत्र आश्रव स वरमय वर्णन वाला । (२) ऋषिभाषित सूत्र । यह भी प्रकाशित अर्थ सहित उपलब्ध है (३) उत्तराध्ययन सूत्र ।(४) जयपाहुड़-प्रश्नव्याकरण ।

जयपाहुड प्रश्नव्याकरण :–देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के समय शास्त्र लेखन में प्रश्नविद्याओं को लिपिबद्ध नहीं किया गया था । तो भी क ठस्थ ज्ञान रूप में जिन्हें भी स्मृति में था, वह पर परा में कुछ कुछ चलता ही रहा है उसे भुलाया तो नहीं जा सकता । तथा कोई कोई गुरु अपने किसी न किसी शिष्य को स क्षिप्त विस्तृत किसी न किसी रूप में देते रहे हो यह भी अस भव नहीं, स भव है । अतः कालान्तर से किसी ने अवशेष उस विषय को लिपिबद्ध भी अपने पास किया होगा । जो स्वत त्र ग्र थ रूप में लिपिबद्ध होते होते पर परा से श्रमणों के पास और फिर भ ड़ारों में सुरक्षित रहा होगा ।

इसी के फल स्वरूप ग्र थ भ ड़ारों में उसकी प्रतियाँ उपलब्ध होती है । जैसलमेर के खरतर गच्छ के आचार्य शाखा के भ ड़ार में **जयपाहुड़ प्रश्नव्याकरण** नामक ग्र थ की एक ताड़पत्रीय प्रति थी जो स वत् १३३६ की चेत्र वदी एकम की लिखी हुई थी । मुनि श्री जिनविजयजी ने उसे स पादित कर स वत २०१५ में सि घी जैन ग्र थमाला अहमदाबाद के ग्र था क ४३ के रूप में प्रकाशित करवाया । उसकी प्रस्तावना में उन्होंने यह भावा श लिखे हक– "प्रस्तुत ग्र थ अज्ञात तत्त्व और भावि का ज्ञान प्राप्त करने कराने का विशेष रहस्यमय शास्त्र हक्त । यह शास्त्र जिस मनीषी या विद्वान को अच्छी तरह से अवगत हो, तो वह उसके आधार से किसी भी प्रश्नकर्ता के लाभ- अलाभ, शुभ-अशुभ, सुख-दुःख एव जीवन-मरण आदि की बातों के स ब ध में बहुत निश्चित एव तथ्यपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।"

मूल ग्र थकार ने प्रार भ में तो इस ग्र थ का नाम **जय पाहुड़** दिया है और अ त में उन्होंने **प्रश्नव्याकरणं समाप्तम्** लिखा है । उसके व्याख्याकार ने प्रार भ में इस तरह लिखा है–***महावीराख्य सिरसा प्रणम्य प्रश्नव्याकरण शास्त्र व्याख्यामि*** । तथा व्याख्या के अ त में

लिखा है– ***इति जिनेन्द्र कथित प्रश्न चूड़ामणि सार शास्त्र समाप्तम् ॥***

जिनरत्न कोश के पृष्ठ १३३ में भी इस नाम वाली प्रति का उल्लेख है । तथा वहाँ यह भी सूचित किया है कि ख भात के शा तिनाथ भ ड़ार में इस (जयपाहुड़ प्रश्नव्याकरण) शास्त्र की कई प्रतिया है। ***(जिनरत्न कोश=प्राचीन ग्र थ भ ड़ारों के पुस्तकों की सूची का प्रकाशित ग्र थ है ।)***

इन सब उल्लेखों एव विचारणाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन प्रश्नव्याकरण शास्त्र भिन्न-भिन्न विभागों में ब ट गया और पृथक-पृथक नाम वाले चार ग्र थ(शास्त्र)बन गये । आज का उपलब्ध प्रश्नव्याकरण सूत्र भी उसी में का ही एक विभाग है । न दीसूत्र आगम सूची में कथित **समुत्थान सूत्र** नामक शास्त्र में प्राचीन प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम अध्ययन में ५ आश्रव ५ स वर के १० अध्ययन सूचित किये है वह शास्त्र **समुत्थान सूत्र** भी आज प्रकाशित उपलब्ध है ।

एक विचारणा के अनुसार प्रार भ में यह शास्त्र सभी स त सतियों के अध्ययन वाला होने से ज्ञातासूत्र से लेकर विपाकसूत्र तक सभी कथा शास्त्र ही होने से यह शास्त्र भी धर्म बुद्धि-प्रज्ञा का विकास-विस्तार करने वाली विविध कथाओं का भ ड़ार ही रहा होगा । वीर निर्वाण के कुछ शताब्दि बाद जब विद्या चमत्कार का युग या बोलबाला आया होगा तब पूर्वज्ञानी किसी बहुश्रुत ने **पण्णावागरण** नाम साम्यता रूप में कुछ प्रश्न विद्याओं के विषय को अ त में रखा होगा । जो कभी महत्त्वशील लगने से पीछे से आगे आया होगा और फिर लिपिबद्ध करने के समय अनावश्यक लगने से सर्व सम्मति से उसको लेखन में नहीं रखा होगा तथा दस अध्ययनों वाले शास्त्रों के बीच होने से इसे भी **प्रश्नव्याकरणदशा** नामकरण करने हेतु मात्र दस अध्ययन रूप दस विभाग वाला **आश्रव-स वर** का विषय रखकर उपदेशी विषय वाले उत्तराध्ययन और ऋषिभाषित को अलग करके न दीसूत्र में उनका स्वत त्र नाम भी दे दिया गया । लेखन युग होते हुए भी प्रार भिक होने से इन सब निर्णयों का इतिहास लेखन वातावरण नहीं होने से इस परिवर्तन का कुछ भी लिखित स केत नहीं किया गया । इतिहास स ब धी प्राप्त सभी स भावनाएँ बहुत बाद के इतिहास युग की कल्पनाएँ है, जो प्राप्त

सामग्री के आधार पर बुद्धि से की गई है । उसकी सत्यता समझ में आना वह तो पाठकों की अपनी-अपनी बुद्धि और अनुभव तथा ग्रहणशक्ति के ऊपर आधारित है ।

महावीरभाषित उत्तराध्ययन :– भगवान ने अ तिम आराधना रूप स थारे के समय सुखविपाक और दु:खविपाक के ५५–५५ अध्ययन फरमाये थे ऐसा उल्लेख समवाया ग सूत्र के ५५वें समवाय में उपलब्ध है कि तु ३६वें समवाय में उत्तराध्ययन सूत्र के ३६ अध्ययन भगवान ने मोक्ष जाते हुए अ तिम स थारे के समय फरमाने का कथन वाला पाठ वहाँ नहीं है, मात्र ३६ अध्ययन कहे हैं तथा आचारा ग-सूयगड़ा ग सूत्र में जहाँ भगवान की साधना स ब धी वर्णन है वहाँ भी यह उत्तराध्ययन फरमाने की बात नहीं है और हमारे ३२ आगम के मूलपाठ में कहीं भी वैसी बात नहीं है । कि तु प्रश्नव्याकरण सूत्र के अध्ययनों के दस नामों में स्थाना ग सूत्र में **महावीर भासियाइ** नामक अध्ययन का स्पष्ट कथन है ।

यदि महावीर स्वामी ने अ तिम देशना में अर्थ रूप में फरमाया हो तो उसका सूत्र रूप में गु थन तो गणधर ही करेंगे । क्यों कि उस समय दो गणधर मौजूद थे । गणधरों की मौजूदगी में अन्य किसी को सूत्र गु थन का प्रस ग उपस्थित कैसे होगा ? और उत्तराध्ययन के लिये आज तक किसी ने गणधर रचित कहा लिखा भी नहीं है और अन्य किस साधु ने सूत्र रूप में रचा है यह भी नाम नहीं मिलता है ।

जब कि प्रश्नव्याकरण में **महावीर भासियाइ** के नाम से अध्याय होना स्थाना ग सूत्र से स्पष्ट है । आज वह अध्याय है नहीं तो परिशेष न्याय से वह अध्याय उत्तराध्ययन रूप ही है, ऐसा मानने में कोई बाधा क्यों होती है ? जब कि न दी सूत्र में उसे कालिक सूत्र कहा गया है । देवर्द्धिगणि के लेखन समय में उसे अ गसूत्र से उद्धृत करके अलग रख दिया गया है । अत: उसे अ ग आगम रूप में नहीं बताकर अ ग बाह्य **कालिक आगम** में बताया है क्यों कि अ ग आगम से उसका निर्यूहण कर दिया गया है ।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी के व्यवहार सूत्र में अनेक सूत्रों के वाचना-अध्ययन स ब धी कथन है, यदि उत्तराध्ययन सूत्र भगवान के निर्वाण समय में बन गया होता तो उसका नाम, आचार्य भद्रबाहु स्वामी शास्त्र के अध्ययन में क्यों छोड़ते अर्थात् सबसे पहले उसे ही देना चाहिये था पर तु ऐसा है नहीं । यह उत्तराध्ययन सूत्र का रूप भद्रबाहु स्वामी के पहले होने का कोई आधार उपलब्ध होता भी नहीं है । इतिहास पर परा में तो बिना आधार के कल्पना मात्र से किसी ने अ तिम देशना रूप चला दिया । कि तु उसका मौलिक अता-पता कुछ भी नहीं कि किसने सूत्र रूप में गू था । कल्प सूत्र में इस विषय का कथन हो तो वह शास्त्र रूप में १३वीं १४वीं शताब्दि के पहले अस्तित्व में था नहीं, यह बात अनेक प्रमाणों से स्पष्ट की जा चुकी है क्यों कि तब तक उस पर किसी भी व्याख्याकार ने कलम नहीं चलाई है और उसमें कई बिना सुमेल की बातें भी है । इसीलिये ३२ या ४५ आगम में उसे अपने पूर्वाचार्यों ने गिना भी नहीं है ।

इसलिये प्रश्नव्याकरण के अवशिष्ट ४ रूपों में से ही एक रूप उत्तराध्ययन सूत्र है जो गणधर रचित आगम से आचार्यों द्वारा उद्धृत होने से कालिक भी है । ऐसा मानने में उत्तराध्ययन सूत्र का कुछ भी सम्मान नहीं घटता है और इसे महावीर भाषित कहा जाने में कोई बाधा भी नहीं है । क्यों कि वह उसी नाम के अध्ययन रूप में था जैसे कि निशीथ अध्ययन से निशीथ सूत्र कहलाया, वैसे यह भी महावीर भाषित सूत्र कहा जा सकता है कि तु पूर्वाचार्यों ने उचित समझकर इसका नया नामकरण उत्तराध्ययन सूत्र रूप कर दिया है तो वह नाम भी श्रेष्ठ अध्ययनों का स कलन रूप होने से सार्थक ही है।

ऋषिभाषित सूत्र :– आज के उपलब्ध ऋषिभाषित में ४५ अध्ययन है जो कभी प्रश्नव्याकरण का प्रथम विभाग रहा होगा उसी कारण से न दी आदि सूत्रों में प्रश्नव्याकरण के ४५ अध्ययन ४५ उद्देशन-समुद्देशन काल कहे गये हक्त । वे प्रमुख और प्रार भ के विभाग की अपेक्षा हो सकते हक्त। अक्तः ऋषिमहर्षि या प्रत्येकबुद्ध भाषित नामक ४५ अध्ययनों का स ग्रह रूप यह ऋषिभाषित सूत्र है । उसमें त्याग-वैराग्य, तत्त्वज्ञान,

सदुपदेश के सिवाय अन्य कोई भी विषय नहीं है । कि तु जब प्रश्न–व्याकरण सूत्र ४ विभागों में विभक्त हो गया तब एक तो प्रश्नव्याकरण रूप में आश्रव-स वरमय शास्त्र प्रचलित रहा । दूसरा उपदेशी श्रेष्ठ अध्ययन रूप में उत्तराध्ययन सूत्र भी क ठस्थ पर परा में प्रचलित रहा । तीसरा यह ऋषिभाषित विभाग क ठस्थ पर परा से छूट कर लेखन मात्र में रह गया । जिससे लेखन काल में यह **त ध** अर्थात् तकार धकारमय रूप क्लिष्ट उच्चारण वाला बनता गया और उसका उच्चारण उत्तराध्ययन जैसा मृदु-लघु रहा नहीं । जिससे वह न दीसूत्र की आगम सूचि रूप और हस्तप्रत रूपों में ही विशेष रूप से भ ड़ारों में रहा । क ठस्थ पर परा से प्रायः छूट गया होने से प्रसिद्धि में परिचय में नहीं रहा । इस कारण स्थानकवासी श्रमण पर परा में क ठस्थ न होने से और लोकाशाह के समय वह अप्रसिद्ध आगमप्रत प्राप्त न होने से ३२ की उपलब्ध स ख्या में नहीं स्वीकारा गया ।

श्वेता बर मूर्तिपूजक समुदाय में जब ४५ आगम की स ख्या कायम की गई । तब कितने ही समय तक ऋषिभाषित आगम को ४५ की स ख्या में कालिक सूत्र होने से और उपलब्ध होने से स्वीकारा जाता रहा है । कि तु बाद के आचार्यों द्वारा १० प्रकीर्णकों के गिनने के आग्रह में और छोटे-छोटे आगम को गिनने की रूचि से इस बड़े आगम को ४५ में गिनना छोड़ा जाने लगा है । जिससे वर्तमान में उनकी ४५ की गिनती में यह आगम भले नहीं गिनते पर तु मुनिश्री पुण्य विजयजी ने पुराने आचार्य के ग्र थ में जो ४५ आगम की गिनती उन आचार्य के नाम से दर्शाई है, उसमें ऋषिभाषित सूत्र का ४५ में स्पष्ट उल्लेख है । उस गिनती में के १–२ और भी आगमों को वर्तमान के मूर्तिपूजक लोगों ने गिनना छोड़ दिया है । उन्हें छोड़कर दूसरे गिन लेने का कोई कारण नहीं दिखता है ।

इस प्रकार अपनी ही पूर्व पर परा में गिने जाने वाले आगम को मूर्तिपूजकों ने मनमाने छोड़ना और दूसरे गिन लेने का रवैया रखा है । इसलिये कई उनके विद्वान स त लिखते हक्त कि ४५ आगम का एक सही निश्चित रूप कह पाने के लिये कोई ठोस आधार नहीं मिल

पाता है । इस तरह स ख्या में ४५ कहने में अनेक मतमता तर मिलते आ रहे हक्त, ऐसा मूर्तिपूजक स्वय स्वीकारते हक्त । सार यह है कि यह ऋषिभाषित सूत्र एक समय ४५ आगमों में गिना जाता रहा है और न दी की कालिक सूत्र सूची में इसका नाम है और इसके अन्य कोई रचनाकार का नाम नहीं मिलता है । इससे भी प्रश्नव्याकरण के ४ रूपों से एक विभाग रूप में इसे मान्य करने में कोई भी अयोग्य होने जैसा या विरोधजनक कुछ भी नहीं होता है । बल्कि वह स्वय आगम पाठ से आधारित होता है । आचार्य उमास्वाति के तत्त्वार्थ सूत्र में तथा जयधवला दिगम्बर ग्र थ में भी उत्तराध्ययन और ऋषि- भाषित दोनों का नाम एक साथ मिलता है । जिससे जयधवला के कर्त्ता वीरसेन आचार्य और उमास्वाति आचार्य के समक्ष ये दोनों शास्त्र होना स भव है ।

तेराप थी आचार्यश्री तुलसी के उद्धृत वाक्य- "उक्त आगम ग्रथों में प्रस्तुत(प्रश्नव्याकरण) सूत्र का जो विषय वर्णित है वह आज उपलब्ध नहीं है । आज जो उपलब्ध है उसमें पाँच आश्रव और पाँच स वर का वर्णन है, जिसका **न दी में** कोई उल्लेख नहीं है । स्थाना ग-समवाया ग में आचार्य भाषित आदि अध्ययनों का उल्लेख है तथा जयधवला में आक्षेपिणी आदि धर्मकथाओं का उल्लेख है । **इससे अनुमान किया जा सकता है कि प्रस्तुत आगम में उपलब्ध(आश्रव-स वर रूप)** विषय भी प्रश्नों के साथ प्राचीन समय में रहा हो और प्रश्न आदि को लिपिबद्ध नहीं किया हो तब आश्रव-स वर का यह विषय **प्रस्तुत आगम रूप में बचा हो ।** न दी चूर्णिकार ने भी आश्रव- स वर के उपलब्ध विषय का उल्लेख किया है ।"

आगम प्रभाकर पूज्यश्री पुण्यविजयजी म॰सा॰ के स पादित न दीसूत्र की प्रस्तावना के वाक्य(प्रकीर्णक स ब ध):- "अहीं पहेला जणाव्या मुजब दश प्रकीर्णक सूत्रोना निश्चित नामनी कोई पर परा नथी मलती," "बाकी ऊपर जणाव्या प्रमाणे दस प्रकीर्णकोना नामनो कोई निश्चित आधार आज सुधी मल्यो नथी, आ एक हकीकत छे" **"विक्रमना चौदमा शतकमा थयेला आचार्य श्री प्रद्युम्न-सुरीश्वरजीए रचेला-** विचार सार प्रकरणमा आगमोना पिस्तालीस नाम जणाव्या छे, तेमा

पण दस प्रकीर्णकोनो स्पष्ट **उल्लेख नथी"**। प्रकाशित **विचार सार प्रकरण ग्र थ** में ४५ आगमों का उल्लेख इस प्रकार है- (१) आचारा ग से लेकर (११) विपाक सूत्र (१२) उववाई से लेकर (२३) वण्हिदशा (११ अ ग+१२ उपाँग=२३) तक (२४) द्वीप सागर प्रज्ञप्ति (२५) बृहत्कल्प (२६) निशीथ (२७) दशाश्रुतस्क ध (२८) व्यवहार सूत्र (२९) उत्तराध्ययन (३०) ऋषिभाषित (३१) दशवैकालिक (३२) आवश्यक सूत्र ।

(३३) त दुलवैतालिक (३४) च द्रावेद्यक (३५) गणिविद्या (३६) नरक विभक्ति (३७) आतुर प्रत्याख्यान (३८) गणधरावली (३९) समुत्थानसूत्र - ***देवेन्द नरेन्द्रा*** (४०) मरणविभक्ति (४१) ध्यानविभक्ति (४२) पाक्षिक सूत्र (४३) न दीसूत्र (४४) अनुयोगद्वारसूत्र (४५) देवेन्द्र स स्तव । ये ४५ सूत्रक्त ह ।

ये ४५ आगम के नाम उक्त ग्र थ की स स्कृत गाथा-३४४ से ३५१ तक में दिये हक्त । जिसे आगम प्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजयजी स पादित श्री महावीर जैन विद्यालय मु बई से ईस्वीसन् १९८४ में प्रकाशित **प्रकीर्णक सूत्र मूल पाठ** की पुस्तक की प्रस्तावना पृष्ठ-२१ में देखा जा सकता है ।

इस उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि ऋषिभाषित सूत्र विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में(अर्थात् लोकाशाह के पूर्व भी) ४५ आगम में गिना जाता रहा है । वर्तमान में ४५ आगमों के नाम स कलन भी भिन्न हो गये है और प्रकीर्णक के नामों की निश्चित पर परा तो कभी हुई ही नहीं है, ऐसा उक्त उद्धरण में स्वीकारा गया है ।

स क्षेप में ऋषिभाषित सूत्र का आगमिक महत्त्व स्पष्ट करने के लिये उपरोक्त विषय विश्लेषण किया गया है ।

विपाक सूत्र ११

यह विपाक सूत्र कथाप्रधान ग्यारहवाँ अ ग शास्त्र है । पूर्वकाल में वीर निर्माण से करीब एक हजार वर्ष तक १२ अ ग शास्त्र प्राप्त होते थे । आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के लेखनकाल के समय ग्यारह अग-शास्त्र ही पुस्तकारूढ़ किये गये थे । तब से यह विपाक सूत्र अ तिम अ गशास्त्र है ।

रचनाकार :- समवाया ग सूत्र के अनुसार प्रभु महावीर स्वामी ने मोक्ष पधारने की अ तिम वेला में भी भवी जीवों के उदबोधन के लिये ५५+ ५५=११० अध्ययन दु:ख और सुख विपाक के फरमाये थे । प्रस्तुत १०-१० अध्ययन उसी के परिशेष हक्त या उससे पूर्व रचे हुए हक्त, इस विषय में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है । गणधर भगव त शासन के प्रार भ में ही द्वादशा गी की रचना में इस अ ग सूत्र की रचना कर देते हक्त । जिसमें कथा प्रस ग उपयुक्त हो तो बाद में अन्य भी स पादित किये जा सकते हक्त । वीरनिर्वाण के समय गौतम और सुधर्मा दो गणधर मौजुद थे । आज जो भी अध्ययन उपलब्ध है वे गणधर रचित है ।

विभाग एव परिमाण :- इस शास्त्र के मुख्य दो विभाग रूप दो श्रुतस्क ध है । प्रथम विभाग दु:ख विपाक सूत्र और दूसरा विभाग सुखविपाक सूत्र कहा जाता है । इन दोनों में दस-दस अध्ययन है । वर्तमान में यह शास्त्र १२१६ श्लोक प्रमाण स्वीकारा गया है जिसमें दु:ख विपाक सूत्र विशाल है और सुखविपाक सूत्र लघु है।

व्याख्या साहित्य :- इस सूत्र पर भी प्राचीन टीका आचार्य अभयदेव सूरि की स स्कृत भाषा में उपलब्ध है। अर्वाचीन व्याख्या साहित्य स स्कृत हिंदी गुजराती आदि भाषाओं में उपलब्ध है ।स क्षिप्तिकरण पद्धति में इस शास्त्र का सारा श, हिंदी गुजराती दोनों भाषा में तथा प्रश्नोत्तर शैली में हिंदी-गुजराती दोनों भाषा में अलग अलग प्रकाशित उपलब्ध हैं ।

नामकरण :- प्रस्तुत सूत्र में दो तरह की आत्माओं के जीवन वृत्ता तों का वर्णन किया गया है । शुभ कर्मों के स योग से जीव सा सारिक सुखमय अवस्था को प्राप्त करता है और अशुभ पापमय कर्मों से महान् दु:खमय

अवस्थाओं में भ्रमण करता रहता है । कर्म विपाक के वर्णन होने के कारण इस सूत्र का सार्थक नाम **विपाक सूत्र** है ।

विषय वर्णन :- इस सूत्र के प्रत्येक अध्ययन में पुनर्जन्म की चर्चा है । जो व्यक्ति दु:ख से कराह रहा है और जो सुख के सागर पर तैर रहा है, उन सभी के सम्बन्ध में गौतमस्वामी द्वारा यह जिज्ञासा व्यक्त की गई है कि यह इस प्रकार कैसे है ? भगवान उसका पूर्व भव सुनाकर ऐसा समाधान देते हक्त जिससे उसका रहस्य समझ में आ जाता है । दु:खविपाक सूत्र में अन्याय, अत्याचार, वेश्यागमन, प्रजापीड़न, रिश्वत, हिंसा, नरमेघ यज्ञ, मा सभक्षण आदि दुष्कृत्यों के कारण विविध प्रकार की यातनाएँ एव महान दु:ख भोगने का उल्लेख है । सुखविपाक सूत्र में सुपात्रदान आदि का प्रतिफल अपार सुखमय बताया गया है ।

प्रथम विभाग के प्रस गों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि कुछ दुराचारी व्यक्ति प्रत्येक युग में होते हक्त, जो अपनी क्रूर व हिंसक मनोवृत्ति के कारण भय कर से भय कर अपराध करते हक्त और अपने दुष्कर्म के कारण उन्हें अनेक यातनाएँ सहन करनी पड़ती है । द्वितीय विभाग में सुकृत्य करने वाले व्यक्तिओं के जीवन-प्रस ग है । जिस प्रकार क्रूर कृत्य करने वाले व्यक्ति प्रत्येक युग में मिलते हक्त, वैसे ही सुकृत करने वाले व्यक्ति भी हर युग में मिलते हक्त । अच्छाई और बुराई एका त रूप से किसी युग की देन नहीं है । अच्छे और बुरे व्यक्ति और व्यक्तित्व हर युग में मिलते हक्त ।

अध्ययन नाम विचारणा :- विपाक सूत्र का परिचय न दी सूत्र, समवाया ग सूत्र और स्थाना ग सूत्र में प्राप्त होता है । समवाया ग सूत्र और न दी सूत्र में अध्ययनों की स ख्या १०+१०=२० कही है कि तु अध्ययनों के नाम वहाँ नहीं दिये हक्त।

स्थाना ग में इसे "कर्मविपाकदशा शास्त्र" नाम से कहकर उसमें दु:ख विपाक के दस अध्ययनों के नाम कहे हक्त । सुखविपाक के अध्ययनों के नाम वहाँ नहीं कहे हक्त ।

इसमें कुछ नाम घटना परक है, कुछ व्यक्ति परक है और कुछ पूर्वभव स ब धी है । सातवें आठवें अध्ययन में क्रम भेद मात्र है ।

स्थाना ग में जो सातवें आठवें के नाम है प्रस्तुत में वे क्रमशः आठवें सातवें के हक्त। अध्ययनों के इन नामों में समानता नहीं होने का कारण, लिपिदोष हो सकता है अथवा नामकरण के समय की भिन्नता का कारण भी हो सकता है । नाम भेद होते हुए भी दोनों प्रकार के नामों का परस्पर सुमेल, अपेक्षा से हो जाता है । अर्थात् कोई पूर्वभव की अपेक्षा है, कोई वर्तमान भव की अपेक्षा है, कोई व्यक्ति की अपेक्षा है, कोई वस्तु या घटना की अपेक्षा है । वास्तव में इनमें सैद्धा तिक मतभेद जैसा या अघटित जैसा नाम नहीं है । दसवें अध्ययन के नाम का समन्वय कठिन है । लच्छीकुमारों का सम्बन्ध पूर्वभव में वेश्या के साथ अधिक रहा हो, ऐसा अन्य वाचना के कथा में हो सकता है । अन्य कोई समाधान नहीं मिलने से ऐसी स भावना की जा सकती है ।

विशेष :- मौलिक रचना में अध्ययनों के नाम प्रायः नहीं होते है । आगे के युग में कभी नाम कायम करने का मानस साधकों की अपनी अमुक सुविधा(स्मृति रखने या परिचय जानने)हेतु अध्ययन नाम रखने का दौर कम ज्यादा चलता रहता है और उन नामों के रखने में भी अपने-अपने दृष्टिकोण की भिन्नता भी होती है, अतः वर्तमान में हमे नामों की भिन्नता दृष्टिगोचर होती है । इसे ज्यादा महत्त्व देकर आगम की मौलिकता स ब धी ऊहापोह में नहीं पडना चाहिये । प्रस्तुत सूत्र और स्थाना ग सूत्र में प्राप्त दुःखविपाक सूत्र के अध्ययनों के नाम इस प्रकार है-

स्थाना ग सूत्रोक्त नाम	प्रस्तुत सूत्रोक्त नाम
१.मृगापुत्र	१.मृगापुत्र
२.गोत्रासक	२.उज्झितक
३.अ ड़	३.अभग्नसेन
४.सकट	४.शकट
५.ब्राह्मण	५.बृहस्पतिदत्त
६.न दीषेण	६.न दीवर्धन
७.शौरिक	७.उ बरदत्त
८.उदु बर	८.शौरिकदत्त
९.सहस्रोद्दाह	९.देवदत्ता
१०.कुमारलेच्छई	१०. अंजु

०००००

औपपातिक सूत्र १२

स्थानकवासी जैनों द्वारा मान्य आगमों का विभाजन चार भागों में विभक्त किया गया है-अ गशास्त्र, उपा गशास्त्र, छेदशास्त्र एव मूल शास्त्र । जिसमें यह प्रस्तुत आगम उपा गशास्त्र विभाग के १२ सूत्रों में से प्रथम सूत्र है । १२ शास्त्रों के उपा ग सूत्र होने में अनेक प्रकार से स्पष्टीकरण किया जाता है । तथापि इस द्वितीय विभाजन के शास्त्रों में अ तिम शास्त्र का नाम उपा गसूत्र है। ऐसा उपा ग सूत्र जिस विभाजित आगमों के अ त में है, उस कारण से उस विभाग के सभी आगम उपा ग सूत्र स ज्ञक कहलाये गये हक्त । प्रसिद्ध में जो निरयावलिकादि पाँच सूत्र है उसके प्रार भ के मूलपाठ में ही उस शास्त्र का नाम उपा गसूत्र कहा गया है और निरयावलिकादि पाँच विभाग उस शास्त्र के अ तर्गत के पाँच वर्ग हक्त । पर तु किसी समय किसी के मतिभ्रम से या अन्य उद्देश्य से पाँच वर्ग ही पाँच सूत्र रूप में प्रचलित हो गये हक्त । जिन्हें अनुगामी-गतानुगतिक श्रद्धा से समस्त श्वेताम्बर जैन लोग पाँच आगम बिना तर्क के मान्य करते आये हक्त । ३२ या ४५ स ख्या की आगम गिनती में भी उस एक शास्त्र को पाँच शास्त्र गिनते आये हक्त । हकीकत में आगम प्रमाण से वह एक ही शास्त्र है, आगम प्रमाण को मान्य करने वाले विद्वान जिसे किसी भी शर्त से नकार नहीं सकते ।

रचनाकार :- इस प्रकार प्रस्तुत आगम, प्रचलित पर परा के बारह उपा ग सूत्रों में अपनी विशिष्टता से प्रथम स्थान पाया हुआ है । इस सूत्र के रचनाकाल की एव रचनाकार की जानकारी प्राप्त नहीं होती है । अतः इसे आगम लेखन के समय देवर्द्धिगणि आदि स्थविर भगव तों की रचना स्वीकार करना ही श्रेष्ठ मार्ग है। क्यों कि देववाचक श्री देवर्द्धिगणि द्वारा रचित श्री न दीसूत्र की आगम सूचि में अ ग बाह्य, उत्कालिक सूत्रों में इस आगम का निर्देश प्राप्त होता है, अतः समस्त श्वेताम्बर जैनों को यह स्वीकार्य शास्त्र है ।

व्याख्या साहित्य :- इस सूत्र पर प्राचीन स स्कृत टीका व्याख्या नवा गी टीकाकार आचार्य श्री अभयदेव सूरि की है । अर्वाचीन स स्कृत टीका

आचार्य श्री घासीलालजी म॰सा॰ की है। हिंदी गुजराती आदि जनभाषा में अर्थ एव विवेचन अनेक स्थानों से प्रकाशित हुए हक्त। आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰सा॰द्वारा स पादित आगमों के सारा श प्रावधान के ३२ भागों में इस शास्त्र का सारा श तेवीसवें पुष्प में हिंदी–गुजराती दोनों भाषा में अलग अलग दिया गया है । जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर के प्रावधान में यह आगम छट्ठे भाग के अ तर्गत हिंदी–गुजराती दोनों भाषा में अलग अलग प्रकाशित उपलब्ध है ।

परिमाण एव विभाग :– यह शास्त्र मौलिक रूप से १२०० श्लोक प्रमाण स्वीकारा गया है । जो मुख्य दो विभागों में विभक्त है– (१) समवसरण (२) उपपात । दूसरे **उपपात** विभाग की मुख्यता से ही इस शास्त्र का नामकरण **'औपपातिक सूत्र'** किया गया है ।

प्रसिद्ध १२ उपा ग सूत्र इस प्रकार है– (१) औपपातिक सूत्र (२) राजप्रश्नीय सूत्र (३) जीवाभिगम सूत्र (४) प्रज्ञापना सूत्र (५) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र (६) चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र (७) सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र (८ से १२) निरयावलिका आदि पाँच सूत्र अर्थात् उपा ग सूत्र ।

ऐतिहासिक विचारणा :– न दीसूत्र की आगम सूचि के अ गबाह्य **कालिक** आगम सूत्रों में ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र तथा च द्रप्रज्ञप्ति सूत्र का नाम है। शेष १० उपा ग सूत्रों का निर्देश वहाँ उत्कालिक सूत्रों की सूचि में प्राप्त होता है ।अतः स्पष्ट होता है कि वे सभी उपा ग आगम प्राचीन काल से हैक्त। इन १२ में से केवल प्रज्ञापना सूत्र के रचनाकार का नाम श्यामाचार्य प्राप्त होता है । इस सूत्र की रचना आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमा–श्रमण के समय के कालकाचार्य के द्वारा हुई थी या करवाई गई थी, यह हकीकत है । किन्तु कुछ भी लिखित इतिहास नहीं मिलने से देवर्द्धिगणि के पूर्व हुए श्यामाचार्य से इस सूत्र की रचना का स ब ध स्थापित कर कल्पित महाविदेह क्षेत्र की घटना भी जोड दी गई है । वास्तव में शास्त्र लेखन के पहले एव दृष्टिवाद अ ग की मौजूदगी में ऐसे तत्त्व शास्त्र की रचना का कोई कारण नहीं था। शेष उपा गसूत्र के रचनाकार का नाम अप्राप्त है। अतः यह स्वीकारना सहज योग्य होता है कि दृष्टिवाद को लेखन नहीं करने के निर्णय में ऐसे अनेक शास्त्रों का स कलन लेखन

देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण आदि की देखरेख में हुआ है और वह सामुहिक आगम लेखन स कलन मात्र होने से उसमें किसी के नामकरण की आवश्यकता नहीं रही। इसलिये न दीसूत्र आदि अनेक आगमों के रचनाकार आज तक अज्ञात है। प्रज्ञापना सूत्र के रचनाकार का नाम भी बाद की प्रक्षिप्त गाथाओं में है किंतु मूल रचना की गाथाओं में नहीं है। अतः ये बिना नामकरण वाले सभी शास्त्र जो न दी सूत्र की सूचि में है वे एक पूर्वधरों की(देवर्द्धिगणि आदि की) उपस्थिति, स रक्षण में स कलित, स पादित, लिखित है। ऐसा श्रद्धा के साथ स्वीकारना उचित होता है।

विषयवस्तु :– इस औपपातिक सूत्र का विषय दो अध्याय के रूप में माना जाता है । प्रथम का नाम समवसरण है, दूसरे का नाम उपपात है। प्रथम अध्याय में नगरी, उद्यान, चैत्य, वृक्ष, राजा, भगवान महावीर का शरीर, उनकी शिष्य स पदा, परिषद में देव, मनुष्य एव नरेन्द्र का आगमन, मौलिक उपदेश, व्रत धारण, शिष्य सम्पदा, परिषद विसर्जन आदि वर्णन है । दूसरे अध्याय रूप विभाग में अस यत जीवों का, परिव्राजकों का एव कुश्रमणों का देवों में उत्पन्न होने का वर्णन है। सुश्रमणों एव सुश्रावकों का आचार, गुण एव आराधना का वर्णन है। अ त में आराधक सुव्रती जीवों की देवगति एव सिद्धगति, केवलि समुद्घात, सिद्ध स्वरूप एव उनके सुखों का वर्णन है ।

विशेषताएँ :– इसमें एक ओर जहाँ सामाजिक, राजनैतिक, नागरिक चर्चा है तो दूसरी ओर धार्मिक, दार्शनिक, सा स्कृतिक तथ्यों का सु दर प्रतिपादन है। इस सूत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भगवती आदि अ ग आगमों में भी इस सूत्र को देखने का स केत किया है। इसका कारण यह है कि यहाँ अनेक विषयों का विस्तार से वर्णन है जिनका कि अन्य सूत्रों में स क्षिप्त कथन है । इसमें श्रमण भगवान महावीर के समस्त अ गोपा गों का उपमायुक्त वर्णन है। समवसरण का भी सजीव चित्रण हुआ है। भगवान की उपदेश विधि भी यहाँ सुरक्षित है। तप का सु दर विश्लेषण भेद-प्रभेदों द्वारा किया गया है। इसमें वैदिक और श्रमण पर परा के परिव्राजकों, तापसों एव श्रमणों की आचारस हिता भी दी गई है। उसी बीच अ बड़ स न्यासी का रोचक वर्णन है। अ त में सिद्धावस्था का सा गोपा ग स्वरूप समझाया गया है।

राजप्रश्नीय सूत्र १३

प्रस्तुत आगम एक कथा प्रधान शास्त्र है। अन्य कथाशास्त्रों की अपेक्षा इसमें एक विलक्षणता है कि इसमें मुख्यतः केवल एक ही आत्मा का कथानक है ।

नामकरण :- इसमें राजा प्रदेशी द्वारा की गई, आत्मा के अस्तित्व नास्तित्व स ब धी प्रश्नचर्चा का विषद् वर्णन है। जिसमें केशीस्वामी द्वारा दिये गये उत्तर अनेक भव्यात्माओं के स शयों का उन्मूलन करने में बड़े ही सक्षम है। आध्यात्म की अपेक्षा उन प्रश्नोत्तरों की प्रधानता वाले इस शास्त्र का **सार्थक नाम** राजप्रश्नीय सूत्र रखा गया है ।

रचनाकार :- औपपातिक सूत्र के समान यह भी १२ उपा गसूत्रों में से **दूसरा उपा गसूत्र** है। न दीसूत्र की सूत्र सूचि में उत्कालिक अ ग बाह्य आगमों में इसका नाम स्पष्ट उपलब्ध होता है। इस सूत्र के रचनाकार या रचना समय औपपातिक सूत्र के समान ही अज्ञात है। तथापि न दी सूत्र में इसका नाम होने से यह शास्त्र समस्त श्वेता बर जैन समाज में आगम स ख्या ३२ या ४५ में स्वीकारा गया है। रचनाकार के अज्ञात होने से परिशेष न्याय से देवर्धिगणि के आगम लेखन के समय में ही स पादित करवाया गया यह शास्त्र है, ऐसा समझना ही समुचित रहता है ।

विभाग :- यह एक श्रुतस्क ध रूप शास्त्र है, इसमें अध्ययन उद्देशक कोई विभाग नहीं है। विषय की अपेक्षा मात्र दो विभागों की कल्पना की जाती है। यथा- (१) सूर्याभदेव वर्णन (२) प्रदेशी राजा का वर्णन।

व्याख्या साहित्य :- इस सूत्र पर प्राचीन व्याख्या स स्कृत भाषा में मलयगिरि आचार्य की टीका रूप में है। अर्वाचीन स स्कृत हिन्दी गुजराती में अनेक आचार्यों की व्याख्याएँ उपलब्ध है। यह शास्त्र श्वेताम्बर स्थानकवासी पर परा में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी का, आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. का, युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा. का, गुजरात से गुरु प्राण फाउन्डेशन राजकोट का एव राजस्थान से सुधर्म प्रचार म डल वगैरह का स पादित एव प्रकाशित मुख्य रूप से

प्रसिद्धि प्राप्त है। आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित आगम सारा श एव आगम प्रश्नोत्तर भी हिंदी तथा गुजराती सरल-सुगम भाषा में प्रकाशित हैं। इस शास्त्र के मूलपाठ का परिमाण २०७८ श्लोक प्रमाण माना गया है ।

विषय वर्णन :- इस सूत्र के प्रथम विभाग में सूर्याभदेव का, उसकी स पूर्ण ऋद्धि स पदा का, देव विमान का, भगवान के दर्शन करने आने का, नाटक दिखाने का एव ऋद्धिवान देव के जन्म समय में किये जाने वाले महोत्सव का विस्तार से वर्णन है। साथ ही सूर्याभ विमान का सा गोपा ग वर्णन है। द्वितीय विभाग में सूर्याभदेव के पूर्वभव रूप प्रदेशी राजा के सा सारिक एव अधार्मिक जीवन का तथा चित्तसारथी के प्रयत्नों से केशी श्रमण के सत्स ग से उद्भूत धार्मिक जीवन का और अ तिम आराधना का सु दर वर्णन है। इस प्रकार कथा शास्त्र होते हुए भी आत्म विकास के लिये परिपूर्ण एव सचोट प्रेरणा वाला यह शास्त्र आबाल वृद्ध सभी के लिये रुचिकर शास्त्र है।

प्रस्तुत शास्त्र के कथानक से कई शिक्षा-प्रेरणा एव ज्ञातव्य तत्त्व प्राप्त होते हैं, यथा- (१) चित्त सारथी एव केशी श्रमण के अनुपम आदर्श ने एक दुराग्रही पापिष्ट मानव को, जिसके कि हाथ खून से सने रहने की उपमा इस सूत्र में लगाई गई है उसे, एक बार की स गति एव स वाद रूप विशद चर्चा ने महान् दृढ़धर्मी प्रियधर्मी बना दिया ।

(२) केशी श्रमण का उपदेश सूर्यका ता महारानी ने भी सुना था और वह राजा जितनी पापिष्ठ भी नहीं थी, राजा को भी अत्य त प्रिय ईष्ट थी। इसी कारण पुत्र का नाम भी राणी के नाम पर सूर्यका त कुमार रखा था । फिर भी राजा के किसी भव के निकाचित घोर कर्मों का उदय आ पहुँचने से रानी को ऐसी कुमति हुई। जीव अज्ञानदशा में उतावलपन में ऐसे कई अकार्य कर जाते हक्त जिससे उनको लाभ कुछ भी नहीं होता है। फिर भी वे केवल अपने उठे हुए स कल्पों को पूर्ण करने में दत्तचित्त बन जाते हक्त। यह भी जीव की एक अज्ञानदशा का पागलपन है। ऐसे कर्तव्य करने वाले यहाँ भी अपयश पाकर हानि में रहते हक्त और आगे के भवों को बिगाड़

कर के दुःख की पर परा बढ़ातेहक्त । जैसे कि **नागश्री** ब्राह्मणी ।

(३) धर्म की सही समझ हृदय में उतर जाने के बाद राजा हो या प्रधान, श्रावक के बारह व्रत धारण करने में कहीं भी बाधा नहीं आती है। अतः धर्मप्रेमी जो भी आत्माएँ स यम स्वीकार नहीं कर सकती है उन्हें श्रावक व्रत धारण करने में किंचित् भी आलस्य, प्रमाद, लापरवाही, उपेक्षावृत्ति नहीं करनी चाहिए। हमारे सामने चित्तसारथी और राजा प्रदेशी का महान आदर्श उपस्थित है। एक (चित्त) तो अन्य राज्य में राज्य व्यवस्था के लिये गया था, वहीं बारह व्रतधारी बना और दूसरा(राजा) अश्व परीक्षार्थ निकला हुआ भी मुनि सत्स ग से उसी दिन बारह व्रतधारी श्रावक बना। आज के हमारे वर्षों के धर्मिष्ठ लोग जो बारह व्रतधारी नहीं बन रहे हक्त, उन्हें इस सूत्र की स्वाध्याय से प्रेरणा पाकर अवश्य बारह व्रत धारण करने चाहिये। श्रावकव्रत धारण करने में बाधा ड़ालने वाली मानसिक जिज्ञासाओं के समाधान के लिये उपासक दशा सूत्र के परिचय में सूचित स पादनों के उपासक दशा सूत्र विवेचन, सारा श, प्रश्नोत्तर एव परिशिष्टों का अध्ययन मनन करना चाहिये ।

(४) आध्यात्म धर्म के साथ साथ गृहस्थ जीवन में अनुकम्पादान एव मानवसेवा का अनुपम स्थान है, यह भी इस सूत्र के अ तिम शिक्षावचन प्रकरण में देखने को मिलता है। प्रदेशी श्रमणोपासक ने अपने धर्मगुरू धर्माचार्य श्री केशीश्रमण के रमणिक रहने की प्रेरणा के फल स्वरूप जो स कल्प प्रकट किया था, कथनी और करणी को एक साकार रूप दिया था, वह था आध्यात्मजीवन के साथ श्रमणोपासक की अनुकम्पा और मानव सेवा या जन सेवा भावना ।

अनेका तवादमय यह निर्ग्रंथ प्रवचन एक चक्षु से नहीं चलता है, किन्तु यह उभय चक्षु प्रवर्तक है। कई लोग धर्म का रूप केवल मानव सेवा ही लेते हक्त, व्रत नियम, बारह व्रत, पौषध आदि की उपेक्षा करते हक्त,वे भी एक चक्षु की कोटि में आकर निर्ग्रंथ धर्म से दूर होते हक्त एव कई श्रावक आध्यात्म धर्म में अग्रसर होकर स पन्न होते हुए भी स कीर्ण दिल या स कीर्ण दायरे के बने रहते हक्त, श्रमण या श्रमणभूत नहीं होते हुए भी एव गृहस्थ धर्म में या स सार व्यवहार में रहते हुए भी दया, दान, मानव सेवा, जन

सेवा, उदारता के भावों से उपेक्षित रहते हक्त, उनकी गृहस्थ जीवन की साधना एक चक्षु भूत रहती है। इस कारण से कि वे छती शक्ति(प्राप्त स पत्ति से) धर्म की प्रभावना में सहायभूत नहीं बन सकते हक्त । एव दीन दुःखी प्राणियों के उपयोगी-सहयोगी नहीं बन पाते । क्यों कि वह भी मानव का एक कर्तव्य है कि अपने से पामर प्राणियों के दुःख में कुछ सहयोगी और सहानुभूति वाला बने । जिससे आत्मा का या समकित का अनुक पा धर्म पुष्ट होता है ।

इस प्रकार इस सूत्र के अ तिम प्रकरण से श्रावकों को उभय चक्षु बनने की प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये अर्थात् आध्यात्म धर्म की साधना के साथ छती शक्ति अनुकम्पादान आदि की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। अपितु अपनी स्टेज के अनुसार दानधर्म में प्रवृत्त होना चाहिये । जैसे कि- प्रदेशीराजा ने राज्य की आवक का चौथा भाग दया, दान, धर्म में सुनियोजित किया था ।

(५) श्रमण वर्ग को केशी श्रमण के इस चर्चा व्यवहार और दक्षता से अनुपम प्रेरणा लेनी चाहिए कि किस तरह दुराग्रही प्रश्नकर्ताओं को भी स तुष्ट किया जा सकता है। हृदय की एव भावों की पवित्रता रखना ही इसमें अमोघ शक्ति रूप है। ऐसे प्रकरणों के बार बार स्वाध्याय मनन करने से बुद्धि कौशल एव तर्क शक्ति का विकास होता है ।

(६) केवलज्ञानी भगव त भी अ तिम समय में बहुत दिनों का स थारा **पचक्खाण सहित** करते हक्त यह भी प्रदेशी के भावी भव दृढ़प्रतिज्ञ के वर्णन से स्पष्ट होता है ।

(७) कथाग्रथों एव व्याख्याग्र थों में प्रदेशी श्रमणोपासक के बेले-बेले पारणा करके ४० दिन की श्रमणोपासक पर्याय में आराधक होने का वर्णन मिलता है। यह स्पष्टीकरण सूत्र में उपलब्ध नहीं है ।

(८) पापकर्म का उदय आने पर अपना गिना जाने वाला व्यक्ति भी वैरी बन जाता है। अतः स सार में किसी के साथ मोह प्रतिब ध करना योग्य नहीं है। बिना अपराध के प्राणघात कर देने वाले के प्रति भी द्वेष भाव लाने से स्वय के तो कर्मो का ब ध ही होता है और समभाव रख लेने पर

अपना कुछ भी अहित नहीं होता है। इसी आभ्य तर प्रेरणा वाक्यों से प्रदेशी ने अपना धर्म आराधन कर देव भव पाया एव साथ ही सदा के लिए स सार भ्रमण से मुक्त होने का सर्टीफीकेट प्राप्त कर लिया। एक कवि के शब्दों में–

जहर दिया महाराणी, राजा परदेशी पी गया ।
विघटन पाप का किया, रोष को निवारा है ॥
विपदाओं के माध्यम से, कर्मों का किनारा है ।
ड़रना भी क्या कष्टों से, महापुरुषों का नारा है ॥

(९) आत्मा जैसे अरूपी तत्त्वों को श्रद्धा से समझना एव स्वीकार करना चाहिए। प्रत्यक्ष का आग्रह सूक्ष्मतम तत्त्वों के लिए नहीं करना चाहिए। वैसे ही तर्क अगोचर अर्थात् तर्क के अविषय भूत कई अन्य तत्त्वों को भी श्रद्धा से ही स्वीकार करने का प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही पर परा से प्राप्त कोई भी सिद्धा त या रूढ़िया हो, उसके विषय में वास्तविकता का बोध होने के बाद पूर्वजों की दुहाई देकर अपनी हेय वृत्तियों का पोषण नहीं करना चाहिये। चाहे वह कोई भी पर परा हो, सिद्धा त का रूप ले चुका हो, आचार का विषय हो या किसी भी प्रकार का इतिहास का विषय हो, तो भी यदि असत्य, कल्पित, अनागमिक, अस गत है; तो वैसी किसी भ्रम से चली बातों, तत्त्वों, आचारों या पर पराओं का दुराग्रह नहीं रखना चाहिए और उस दुराग्रह को रखने के लिए स बल रूप में पूर्वजों की दुहाई नहीं देकर सत्य बुद्धि से निर्णय एव परिवर्तन करने में नहीं हिचकना चाहिये। यह प्रेरणा केशीस्वामी ने प्रदेशीराजा को लोहवणिक का दृष्य त देकर दी थी और प्रदेशी ने स्वीकार किया कि अब मक्त ऐसा करूँगा जिससे मुझे लोहवणिक के समान पश्चाताप नहीं करना पड़ेगा ।

(१०) प्रदेशीराजा और चित्त सारथी के धार्मिक श्रमणोपासक जीवन के वर्णन में मुनि दर्शन, सेवाभक्ति, व्याख्यान श्रवण, पाँच अभिगम, व दन विधि (तिक्खुत्तो के पाठमय), क्षेत्र स्पर्शने की आग्रह युक्त विन ती, साधु भाषा में स्वीकृति, श्रावक के बारह व्रत धारण, पौषध स्वीकार, श्रमण निर्ग्रंथों के साथ व्यवहार, दूर क्षेत्रवर्ती श्रमणों को व दन विधि, बगीचे में पधारने पर भी चित्त के द्वारा पहले तत्काल घर में व दन विधि,

प्रदेशी का स थारा ग्रहण एव उस समय भी **सिद्धों को एव गुरु को व दन,** स्वय ही स थारा ग्रहण करना आदि धार्मिक कृत्यों का वर्णन किया गया है। यह श्रावक जीवन के श्रेष्ठ आचारों का स कलन है। साथ ही जन सेवा की भावनामय राज्य आवक का चौथा भाग दानशाला के लिए लगाने रूप आचार विधि का वर्णन भी धार्मिक जीवन के अ ग रूप में किया गया है ।

(११) ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस श्रावक जीवन के त्याग तपोमय वर्णन में कहीं भी म दिर मूर्ति बनाने या पूजा विधि करने अथवा अनेक म गल मनाने स ब धी किंचित् भी वर्णन नहीं है। ऐसे विषयों को श्रावक जीवन से नहीं जोड़कर सूत्र के पूर्व विभाग में देव भव से जोड़ा गया है। मनुष्य लोक एव राजधानी या नगरी में ऐसे श्रावकों के परिग्रह उपकरण एव आधिपत्य की सामग्री में एव जीवन चर्या में म दिर आदि के विस्तृत विषयों को नहीं जोड़ कर देवलोक के विमानों से जोड़ा गया है। इससे स्पष्ट होता है कि मूर्ति पूजा श्रावकाचार एव श्रमणाचार नहीं है ।

देवलोक के सभी स्थान शाश्वत है उसे किसी ने कभी बनाया नहीं है अतः वहाँ किसी की भी व्यक्तिगत मूर्ति होना स भव नहीं है । क्योंकि अनादि वस्तु में किसी वर्तमान व्यक्ति के नाम की कल्पना करना अस गत होता है। इसलिए कि व्यक्ति कोई अनादि नहीं होता है। अतः अनादि स्थानों में देव अपने जन्म समय में लोक व्यवहार आचार के पालन करने हेतु ये पूजा आदि कृत्य करते हक्त। क्यों कि एक ही सूत्र के दो प्रकरणों में श्रावकाचार युक्त वर्णन में म दिर मूर्ति एव मूर्ति पूजा को निर्ग्रंथ धर्म के आचार में किंचित् भी स्थान नहीं दिया जाकर, जीताचार से ***देवलोक के सभी छोटे बड़े स्थानों को एव यक्ष भूत आदि सभी अपने से निम्नस्तरीय सामान्य देवों के बिम्बों की अर्चा-पूजा पानी, फूल आदि से की है, च दन के छापे आदि लगाये हक्त।*** मूर्तियों के अतिरिक्त भी सूर्याभ देव के द्वारा उपरोक्त स पूर्ण पूजा विधि के द्वारा पूजा किये एव पूजा कराये गये उन स्थानों के नाम इस प्रकार है–

फिर व दन नमस्कार करके मोरपिच्छी से अनेक स्थानों का

प्रमार्जन, पानी से प्रक्षालन एव च दन के हाथ से छापे लगाता है तथा धूप करता है, फूल चढ़ाता है। वे स्थान इस प्रकार है– सिद्धायतन का मध्य भाग, दक्षिण द्वार, द्वारशाखा, पुतलियाँ, व्यालरूप मुख म ड़प का मध्य भाग, मुख म ड़प का पश्चिमी द्वार, द्वारशाखा, पुतलियाँ आदि, यों मुख म ड़प के चारों दिशाओं में, फिर इसी प्रकार के प्रेक्षागृह म ड़प के सभी उक्त स्थान, चैत्य स्तूप के सभी स्थान, चैत्यवृक्ष के सभी स्थान ।

फिर इसी प्रकार उत्तरी द्वार के सभी स्थान एव पूर्वी द्वार के सभी स्थान की पूजा विधि करता है । उसके बाद सुधर्मा सभा में प्रवेश करता है। वहाँ भी जिन दाढ़ाओं, सि हासन, देवशय्या, महेन्द्रध्वज, आयुध शाला, उपपात सभा, अभिषेक सभा, अल कार सभा, व्यवसाय सभा, पुस्तक रत्न, चबूतरा, सि हासन, न दापुष्करणी, सरोवर आदि इन सभी स्थानों का जगह जगह मोरपिच्छी से प्रमार्जन, पानी से सि चन एव फूल धूप आदि क्रियाएँ करता है। अ त में बलि पीठ के पास आकर बलि विसर्जन करता है। फिर नौकर देवों से सूर्याभ विमान के सभी मार्ग, द्वार, वन, उपवन में, इसी प्रकार सर्वत्र अर्चापूजा विधि करवाता है। फिर न दा पुष्करिणी में पाँव प्रक्षालन कर सुधर्मा सभा में पूर्वी दरवाजे से प्रवेश करता है और पूर्व दिशा में मुख करके सि हासन पर बैठ जाता है ।

इन सब स्थानों की पूजा अर्चा करने से यह स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि देव अपने म गल एव जीताचार से ही वे सब कृत्य जन्म समय में करते हक्त। मनुष्यलोक में वे देव, धर्म दृष्टि से तीर्थंकरों श्रमणों के दर्शन सेवा आदि के लिये आते है किन्तु किसी म दिर या तीर्थस्थान का दर्शन करने सेवा भक्ति पूजा करने नहीं आते हक्त और धर्मदृष्टि से आते वक्त कभी वहाँ देवलोक में रही उन मूर्तियों के दर्शन पूजा करके नहीं आते। केवल जन्म समय में ही यह सब उनके जीताचार की, म गल कर्तव्यों की विधि होती है, इसीलिये वे इस सूत्र में वर्णित सभी कुछ कृत्य करते हक्त। अतः देव के इन मात्र जन्म समय के जीताचारमय कृत्यों को श्रावकाचार या साध्वाचार से जोड़ना कदापि उपयुक्त नहीं है ।

(१२) युगप्रधान, चार ज्ञान से स पन्न केशी श्रमण ने तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान की पर परा के होते हुए भी प्रदेशीराजा को किसी भी तीर्थ स्थल के पार्श्वनाथ भगवान की पूजा करने का या लाखों करोड़ों की लागत के म दिर बनवाने का स केत नहीं दिया। श खेश्वर आदि किसी भी पार्श्वनाथ भगवान के किसी भी तीर्थों पर जाने का स कल्प भी नहीं कराया, न स्वय प्रदेशी ने ही ऐसा स कल्प किया। इससे स्पष्ट है कि उस काल में स्थावर तीर्थ, म दिर एव मूर्तिपूजा का प्रचलन तथा उसकी प्रेरणा जैन साधु एव श्रावक समाज में नहीं थी। इन्हीं आगम वर्णित कथानकों के राजाओं एव श्रावकों के साथ अर्वाचीन ग्र थों में मूर्ति म दिर के ढ़ेर सारे वर्णन जोड़ दिये गयेहक्त। जो अतिरिक्त प्ररूपण के दोष से दूषित एव मनःकल्पित है ।

इस प्रकार अनेक शिक्षाओं, प्रेरणाओं से एव ज्ञातव्य तत्त्वों से परिपूर्ण यह सूत्र, साधको के अनुभव ज्ञान एव श्रद्धान को पुष्ट करने वाला है। अतः इसके अध्ययन मनन से यथोचित आत्म विकास को प्राप्त करना चाहिये ।

जीवाजीवाभिगम सूत्र १४

यह तीसरा उपा ग सूत्र है। यह भी अज्ञात बहुश्रुत रचित एव न दी सूत्र की सूचि में निर्दिष्ट सर्व श्वेताम्बर मान्य आगम है। उववाई, राजप्रश्नीय सूत्र के समान इसका भी स कलन स पादन देवर्द्धिगणि के आगम लेखन समय में ही करवाया गया है ऐसा स्वीकार करना सभी अपेक्षाओं से समुचित होता है। ४७५० श्लोक प्रमाण जितना इस शास्त्र का गद्यपद्यमय मूलपाठ स्वीकारा गया है।

विषय परिचय :– इस सूत्र में जीव-अजीव दोनों तत्त्वों का विस्तार से वर्णन है जिसमें जीव तत्त्व स ब धी वर्णन ही अधिक है। इसके सिवाय लोक, तीनों लोक एव अस ख्य दीप-समुद्र तथा ज्योतिषी विमान एव वैमानिक देवलोकों का क्षेत्रीय वर्णन भी है ।

विभाग :– इस सूत्र में मुख्य दो विभाग है– (१) स सारी जीवों के मुख्य भेद २ से १० तक एव (२) समस्त जीवों (स सारी एव सिद्ध) के मुख्य भेद २ से १० तक। अर्थात् प्रथम विभाग के भेदों में सिद्धों का समावेश नहीं है। द्वितीय विभाग के सभी भेदों में सिद्धों को अवश्य रखा गया है। दोनों विभागों के ९–९ अध्यायों का पड़िवत्ति=प्रतिपत्ति ऐसा नाम रखा गया। यों कुल मिलाकर इस शास्त्र में ९+९=१८ प्रतिपत्तियाँ(अध्यायरूप) है। प्रथम विभाग विशाल है दूसरा विभाग लघु है ।

नाम– शास्त्रगत प्रथम प्रश्न के आधार से इसका नाम जीवाजीवाभिगम रखा गया है। मुख्य विषय की अपेक्षा एव स क्षिप्त रुचि से इसका प्रचलित नाम **जीवाभिगम सूत्र** है क्योंकि इसमें प्रार भ के कुछ ही सूत्रों में अजीव का स्वरूप, उसके भेद-प्रभेद के द्वारा बताया गया है। उसके बाद जीव अभिगम परिज्ञान एव क्षेत्रीय वर्णन का सा गोपा ग परिज्ञान है ।

उपलब्ध साहित्य– इस सूत्र पर प्राचीन व्याख्या आचार्य मलयगिरिजी म.सा. की स स्कृत भाषा में है। अन्य अनेक अर्वाचीन व्याख्या, विवेचन या भावार्थ युक्त मूलपाठ का प्रकाशन अनेक स स्थाओं से समय-समय

पर हुआ है। स्थानकवासी पर पराओं में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी का, आचार्य श्री घासीलालजी म॰सा॰ का, युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म॰सा॰ का, गुजरात से श्री प्राण फाउन्डेशन राजकोट का एव राजस्थान से सुधर्म प्रचार म डल वगैरह का मुख्य रूप से प्रसिद्धि प्राप्त है । आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित आगम सारा श एव आगम प्रश्नोत्तर हिंदी तथा गुजराती सरल–सुगम भाषा में प्रकाशित हैं।

रोचक विषय :– इस सूत्र में च द्र–सूर्य आदि की स ख्या एव ढाई द्वीप के बाहर के द्वीपसमुद्रों का वर्णन अनुपम है, जो इस प्रकार है–

मनुष्य क्षेत्र में च द्रादि का ज्ञान– इस मनुष्य क्षेत्र में कुल १३२ च द्र, १३२ सूर्य प्रकाश करते हक्त, भ्रमण करते हक्त । एक-एक च द्र-सूर्य युगल के साथ २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६९७५ कोड़ाकोड़ी तारागण का परिवार होता है ।

दो च द्र दो सूर्य परिवार का एक पिटक–गोला(राउन्ड)होता हक्त, ऐसे ६६ पिटक मनुष्य लोक में है। च द्र की दो और सूर्य की दो यों च द्र–सूर्य की चार प क्तिया मनुष्य लोक में हक्त । एक प क्ति में ६६–६६ स ख्या होती है, ऐसी प क्तियाँ नक्षत्र की ५६, ग्रह की १७६ होती है। **यों मनुष्य क्षेत्र में कुल पिटक–गोला(राउन्ड) ६६ है और प क्तियाँ कुल च द्र की–२+ सूर्य की–२+ग्रह की–१७६ + नक्षत्र की–५६ = २३६ है** ।

मनुष्यक्षेत्र में च द्रसूर्य के ग्रह नक्षत्र योग बदलते रहते हक्त। अतः यहाँ अनवस्थित योग होते हक्त। नक्षत्र और ताराओं के अवस्थित म ड़ल होते हक्त, सूर्य च द्र दोनों का म ड़ल परिवर्तन होता रहता है किन्तु वे ऊपर नीचे नहीं होते हक्त। च द्र सूर्य ग्रह नक्षत्र के चाल विशेष से एव योग स योग से मनुष्यों के सुख दुख का ज्ञान होता हक्त ।

सूर्य बाहर से आभ्य तर म डलों में चलता है तब ताप क्षेत्र क्रमशः बढ़ता जाता है। जब आभ्य तर म डल से बाहर के म ड़लों की तरफ चलता है। तब क्रमशः ताप क्षेत्र घटता रहता है। च द्र के साथ चार

अ गुल नीचे कृष्ण राहु सदा चलता रहता है, जिससे च द्र की कलाओं की हानि वृद्धि होती रहती है ।

ढ़ाईद्वीप में स ख्या परिज्ञान– च द्रसूर्य ज बुद्वीप में दो–दो, लवण समुद्र में चार-चार और धातकी ख ड़ में १२–१२ हक्त । आगे कालोदधि आदि द्वीप समुद्र के च द्रसूर्य की स ख्या जानना हो तो उसके पूर्व के अन तर द्वीपसमुद्र के च द्र सूर्य की स ख्या को तिगुणा करके उसके पहले के द्वीपसमुद्रों के सभी च द्रों की स ख्या जोड़ने पर जो स ख्या आयेगी वही उस द्वीप समुद्र के च द्रों की या सूर्यों की स ख्या होगी, यथा– धातकीख ड़ के १२ च द्र है तो १२x३=३६+४+२=४२ कालोदधि की च द्र सूर्य की स ख्या है। फिर ४२x३=१२६+१२+४+२=१४४ पुष्कर द्वीप के च द्र सूर्यों की स ख्या है ।

यह गणित ढ़ाई द्वीप में और गतिमान च द्र-सूर्यों के लिये समझना। ढ़ाई द्वीप के बाहर च द्र–सूर्य स्थिर है और उनका परस्पर का अ तर भी स्थिर है वह अ तर अपने पिटक(गोलचक्र) में होता है। वहाँ प क्तिया नहीं बनती है। अपने पिटक में च द्र से सूर्य ५० हजार योजन दूर होता है और उस सूर्य से अगला च द्र ५० हजार योजन होता है। यों च द्र से च द्र और सूर्य से सूर्य १ लाख योजन दूर होते हक्त। प्रत्येक पिटक से अगला पिटक भी १ लाख योजन दूर होता है। जिससे बाह्य अर्ध पुष्कर द्वीप में आठ पिटक होते हक्त क्योंकि उसकी चौड़ाई आठ लाख योजन की है और एक-एक पिटक १ लाख योजन के अ तर से होते हक्त ।

मनुष्यक्षेत्र के बाहर द्वीप समुद्रों की ल बाई चौड़ाई आदि स ख्याता योजन रूप कही गई है। रुचक द्वीप से ल बाई, चौड़ाई, परिधि, च द्र और सूर्य आदि अस ख्य कहे गये हक्त। चार द्वार, पद्मवर वेदिका, वनख ड़ सभी द्वीप समुद्रों के हक्त। दो दो मालिक देव हक्त ।

ढाई द्वीप के बाहर द्वीप–समुद्र :– इसके बाद द्वीप के नाम के साथ "भद्र" और समुद्र के नाम के साथ "वर" लगाकर मालिकदेव कहना।

द्वीप	मालिक देव	समुद्र	मालिक देव
७ वरुण द्वीप	वरुण–वरुणप्रभ	८ वरुण समुद्र	वारुणी–वारुणीकंता
९ क्षीर द्वीप	पुंडरीक–पुष्कर दंत	१० क्षीर समुद्र	विमल–विमलप्रभ
११ घृत द्वीप	कनक–कनकप्रभ	१२ घृत समुद्र	कांत–सुकांत
१३ क्षोदवर द्वीप	सुप्रभ–महाप्रभ	१४ क्षोदवर समुद्र	पूर्णभद्र–माणिभद्र
१५ नंदीक्तर द्वीप	कैलास–हरिवाहन	१६ नंदीक्तर समुद्र	सुमन–सोमनस
१७ अरुण द्वीप	अशोक–वितशोक	१८ अरुण समुद्र	सुभद्र–सुमनभद्र
१९ अरुणवर द्वीप	अरुणवर भद्र–अरुणवर महाभद्र	२० अरुणवर समुद्र	अरुणवर–अरुणमहावर

२१.अरुणवरावभास द्वीप २२.अरुणवरावभास समुद्र २३.कु ड़लद्वीप २४.कु ड़लोद समुद्र २५.कु ड़लवरद्वीप २६. कु ड़लवर समुद्र २७. कु ड़लवराभास द्वीप २८. कु ड़लवराभास समुद्र २९. रुचक द्वीप(अस ख्य योजन का विस्तार परिधि कहना)३०.रुचक समुद्र ३१. रुचकवर द्वीप ३२. रुचकवर समुद्र ३३. रुचकवराभास द्वीप ३४. रुचकवराभास समुद्र। जितने भी लोक में शुभ नाम है एव शुभ वर्ण, शुभ ग ध, शुभ रस, शुभ स्पर्श हक्त; आभरण, वस्त्र, पृथ्वी, रत्न, निधि, द्रह, नदी, पर्वत, क्षेत्र, विजय, कल्प, आवास, कूट, नक्षत्र, च द्र, सूर्य आदि हक्त उन नाम से त्रिप्रत्यवतार नाम के द्वीप समुद्र हक्त। यथा– हारद्वीप, हारसमुद्र, हारवर द्वीप, हारवरसमुद्र, हारवरावभास द्वीप, हारवरावभास समुद्र इसी तरह कथन करना, यों अ त में सूरवरावभास समुद्र; फिर देवद्वीप–देव समुद्र, नागद्वीप–नागसमुद्र, यक्षद्वीप–यक्षसमुद्र, भूतद्वीप–भूतसमुद्र, स्वय भूरमणद्वीप–स्वय भूरण समुद्र। सभी द्वीपों में बावड़िया हक्त उसका पानी इक्षुरस स्वभाव वाला है। उत्पात पर्वत हक्त वे सभी वज्रमय हक्त ।

न दीश्वर द्वीप– इस द्वीप में चारों दिशाओं में चौड़ाई के बीचो बीच में चार अ जन पर्वत हक्त। जो ८४००० योजन के ऊँचे हक्त। १००० योजन भूमि में हक्त। ८५००० योजन सर्वाग्र हक्त। भूमि पर १०००० योजन का विस्तार है जो क्रमशः घटते घटते उपर १००० योजन का विस्तार है । वे पर्वत गोपुच्छ स स्थान स स्थित है। पद्मवरवेदिका और वनख ड़ से

घिरे हुए हक्त। ऊपरी शिखर के मध्य भाग में सिद्धायतन है *[**अथवा मालिक देव का भवन है क्योंकि गोपुच्छ स स्थान के पर्वतों के शिखर पर उनके मालिक देव के भवन का वर्णन क चन पर्वत, जमग पर्वत आदि के मूलपाठ में आया है।**]*

सिद्धायतन– १०० योजन ल बा ५० योजन चौड़ा ७२ योजन ऊँचा अनेक ख भों(स्त भों)पर बना हुआ है। उसके चार द्वार हक्त, यथा– देवद्वार, आसुरद्वार, नागद्वार, सुपर्णद्वार। ये द्वार १६ योजन ऊँचे ८ योजन चौड़े हक्त। द्वार के तोरण(मुख म ड़प)प्रेक्षाघर,स्तूप चैत्यवृक्ष आदि विजया राजधानी के द्वार वर्णन के समान है। महेन्द्रध्वज, न दा पुष्करिणी एव ४८००० भद्रासन है। १०८ जिनपड़िमा आदि सूर्याभदेव वर्णन के समान है।

बावड़िया– पूर्व दिशा के अ जन पर्वत के चारों दिशाओं में चार न दा-पुष्करिणी हक्त, यथा– न दुत्तरा, न दा, आन दा और न दीवर्द्धना। ये न दा-पुष्करिणी एक लाख योजन की ल बी चौड़ी १० योजन ऊँड़ी है। वेदिका एव वनख ड़ सहित है।

दधिमुखा– इन चार-चार बावड़ियों के बीच में एक दधिमुख पर्वत है। जो ६४००० योजन ऊँचा १०००० योजन ल बा चौड़ा है।१००० योजन भूमि में है। शिखर पर सिद्धायतन है।

पूर्व दिशा के अ जन पर्वत के समान ही चारों दिशा के अ जन पर्वतों की चार चार बावड़िया और उसमें दधिमुख पर्वत है। इन बावड़ियों के नाम **दक्षिणी** अ जन पर्वत के– भद्रा, विशाला, कुमुदा, पु ड़रिकिणी। **पश्चिमी** अ जन पर्वत के– न दीसेना, अमोघा, गोस्तुभा, सुदर्शना। **उत्तरी** अ जन पर्वत के– विजय, वैजय ती, जयन्ति, अपराजिता। यहाँ पर बहुत से भवनपति, व्य तर, ज्योतिषी, वैमानिक देव चौमासी, स वत्सरी पर्वों के दिन, प्रतिपदा के दिन तीर्थंकरों के जन्मादि के समय और अन्य भी अनेक कार्यों से यहाँ आते हक्त। अष्टान्हिका महोत्सव करते हक्त एव सुखपूर्वक यहाँ आमोद प्रमोद करते हक्त।

प्रज्ञापना सूत्र १५

श्वेता बर जैनों द्वारा मान्य उपा ग सूत्रों में यह चौथा उपा ग सूत्र है। न दीसूत्र की आगम सूचि में इसका नाम अ गबाह्य उत्कालिक आगमों में उपलब्ध है। अतः समस्त श्वेता बर जैनों में यह सर्व सम्मत शास्त्र है। इस शास्त्र के रचनाकार ने स्वय ने अपना नाम निर्देश नहीं किया है, तथापि सूत्र की प्रार भिक प्रस्ताविक गाथाओं में इस शास्त्र के रचनाकार का नाम उपलब्ध है। जिसमें इस शास्त्र के रचयिता श्यामाचार्य (कालकाचार्य) को बताया गया है।

कालकाचार्य नाम को सूचित करने वाली दोनों गाथाओं को प्रायः सभी विद्वानों ने एव टीकाकारों ने, प्रक्षिप्त स्वीकारा है अर्थात् आगम रचनाकार की खुद की रचित वे गाथाएँ नहीं है कि तु अन्य श्रद्धेय शिष्य के द्वारा रची गई है।

प्रक्षिप्त गाथाओं को एक तरफ करके विचारणा करने पर यह आगम भी अज्ञात कृतक होने से १२ उपा गसूत्र सभी अज्ञातनामा बहुश्रुत रचित आगम है, यह एकरूपता स्पष्ट हो जाती है।

शास्त्र की अति प्राचीनता दर्शाने हेतु श्रद्धा जगत में इसे ग्र थों, व्याख्याओं में आचार्य देवर्धिगणि के समय से पूर्व के कालकाचार्य से जोड़ा जाता है। वास्तव में सही इतिहास के अनुभव–अनुप्रेक्षण में इस शास्त्र के रचनाकार देवर्धिगणि के समय में मौजूद कालकाचार्य का मानना अधिक स गत होता है। क्यों कि अ गशास्त्रों के लेखन के बाद ही उपा गसूत्रों के लेखन की आवश्यकता रही है। उसके पूर्व तात्विक विषय पूर्वों के ज्ञान से जुड़ा हुआ था। पूर्वों के ज्ञान का लेखन देवर्धि गणि के समय स भव नहीं होने से आचार्यों के परस्पर विचारणा से अनेक अ गबाह्य आगमों का लेखन स कलन किया गया हो ऐसा मानना अधिक उचित होता है। अतः ऐतिहासिक चिंतन से यह शास्त्र देवर्धिगणि के समय स कलित अनेक आगमों में से ही एक आगम है, ऐसा स्पष्ट होता है। एव उन सभी सूत्रों के समान इसकी भी प्रामाणिकता सर्व सम्मत है।

प्रायः उपा गसूत्रों के ऊपर स स्कृत टीका व्याख्या उपलब्ध है

जो महान टीकाकार आचार्य श्री मलयगिरि द्वारा विक्रम की तेरहवीं चौदहवीं शताब्दि के आसपास रची गई है। उपा गसूत्रों में यह सब से विशाल आगम है जिसके मूलपाठ का परिमाण ७८८७ श्लोक तुल्य माना गया है। इस शास्त्र का पाठ प्रायः गद्यमय स कलन वाला है, क्वचित् विषय स कलन आदि रूप में श्लोक-गाथाएँ भी दी गई हैं।

विषय :- इस आगम में जीव और अजीव दोनों तत्त्वों के भेद-प्रभेद और उनकी पर्यायों का(गुणों का) तात्त्विक विवेचनात्मक वर्णन है। इसके अध्यायों को **"पद"** स ज्ञा दी गई है तदनुसार इस शास्त्र के अध्ययन रूप **पद-३६** है एव किसी पद में उद्देशक रूप प्रतिविभाग भी किये गये हैं। इस शास्त्र की विशेषता यह भी है कि इसके प्रत्येक पद में प्रायः एक एक विषय की चर्चा-विचारणा की गई है। स क्षेप में यों भी समझ सकते है कि इसमें कथा, उपदेश, आचार या खगोल-भूगोल वगैरह विषयों का सग्रह नहीं किया गया है मात्र जीव-अजीव का तात्त्विक विवेचनात्मक वर्णन है।

व्याख्या साहित्य :- प्रज्ञापना सूत्र की आचार्य मलयगिरिजी कृत्त स स्कृत्त टीका, टीकानुवाद हिंदी गुजराती में प्रकाशित है। लुधियाना, सैलाना, ब्यावर एव राजकोट से यह शास्त्र विवेचन सहित प्रकाशित हुआ है। आगम सारा श और प्रश्नोत्तर के प्रावधान में इस शास्त्र की स्वत त्र पुस्तकें हिंदी और गुजराती दोनों भाषा में अलग अलग छपी है। इस सूत्र पर आधारित थोकड़ों के तीन भाग बीकानेर से प्रकाशित हुए हैं। बाद में ब्यावर से भी उनका पुनः प्रकाशन हुआ है।

सुंदर चार्टादि के लिये नवीनतम थोकडों की नवीन शैली के रूप में जैन तत्त्व संग्रह भाग-२ के भाग से विमलकुमार नवलखा द्वारा लिखित अंबा गुरूशोध संस्थान उदयपुरसे प्रकाशित कराई गई है।

इस सूत्र के ३६ पद है उनका संक्षिप्त परिचय निम्न है-

(१) प्रज्ञापना पद- जीव और अजीव के भेद प्रभेद किये गये है।

(२) स्थान पद- जीवों के स्वस्थान का(उत्पति स्थानों का) एकेन्द्रिय से प चेन्द्रिय तक एव नारकी से देव पर्यंत तथा सिद्धों का वर्णन है।

(३) अल्पाबहुत्व पद- जीवों की अनेक द्वारों-अपेक्षाओं से तथा दिशा और क्षेत्र से अल्पाबहुत्व दर्शाई है। छ द्रव्यों की एव उनके पर्याय

की, आयुष्यादि १४ बोल की तथा उत्कृष्ट ९८ बोलों में जीव के भेदों की अल्पाबहुत्व दर्शाई गई है।

(४) स्थिति पद- द ड़क के क्रम से जीवों की उम्र-स्थिति बताई है।

(५) पर्यव पद- जीवपर्यव में अवगाहना, स्थिति, वर्णादि एव ज्ञानादि पर्यायों की छट्ठाणवड़िया से(छ प्रकार की भिन्नताओं से) तुलना की गई है।अजीव द्रव्य की प्रदेश, अगवाहना स्थिति, वर्णादि से तुलना की गई है।

(६) व्युत्क्रांति पद- जीवों की गतागत, उत्पत्ति और मरण का विरह काल एव आयुष्यब ध स ब धी वर्णन है।

(७) उश्वास पद- श्वासोश्वास कालमान स ब धी वर्णन २४ द ड़क के क्रम से है।

(८) स ज्ञा पद- १० स ज्ञा और ४ स ज्ञा स ब धी वर्णन है।

(९) योनि पद- जीवों की तीन-तीन प्रकार की योनि स ब धी वर्णन है।

(१०) चरम पद- रत्नप्रभा आदि, परमाणु आदि के चरम अचरम का वर्णन २६ भ गों के साथ दर्शाया गया है।

(११) भाषा पद- विविध प्रकार से भाषा का स्वरूप और वर्णन है।

(१२) शरीर पद- बद्धेलक, मुक्केलग शरीरों का वर्णन है। फिर २४ द ड़क के क्रम से भी निरूपण किया गया है।

(१३) परिणाम पद- जीव तथा अजीव के परिणमन का वर्णन है।

(१४) कषाय पद- चार कषायों का स्वरूप विविध प्रकार से बताया गया है।

(१५) इन्द्रिय पद- इन्द्रिय स ब धी वर्णन द्रव्य और भाव के भेदो से दो उद्देशक में किया गया है।

(१६) प्रयोग पद- १५ योग को ही "प्रयोग" कहकर २४ द ड़क में उसका वर्णन किया है।

(१७) लेश्या पद- ६ उद्देशकों द्वारा लेश्या स ब धी विविध वर्णन है।

(१८) कायस्थिति पद- २२ द्वारों से १९५ बोलों की कायस्थिति कही गई है।

(१९) सम्यक्त्व पद– २४ द ड़क में तीन दृष्टि स ब धी कथन है।

(२०) अ तक्रिया पद– एक समय में कौन कितनी स ख्या में सिद्ध होते हैं तथा तीर्थंकर, चक्रवर्तीपद, चौदह रत्न, भवीद्रव्यदेव आदि की आगत और गत कही गई है और असन्नि आयुष्य का कथन है।

(२१) अवगाहना–स स्थान पद– पा च शरीरों की द ड़क क्रम से अवगाहना आदि का वर्णन है।

(२२) क्रिया पद– कायिकी आदि ५ और आर भिकी आदि–५ क्रियाओं का अनेक प्रकार से निरूपण है।

(२३ से २७) कर्म पद– कर्मों की प्रकृति के ब ध उदय आदि की विचारणा विस्तार से की गई है।

(२८) आहार पद– २४ द ड़क में आहार स ब धी वर्णन प्रथम उद्देशक में एव दूसरे उद्देशक में आहारक अनाहारक का वर्णन अनेक द्वारों से किया गया है ।

(२९) उपयोग पद– २४ द ड़क में १२ उपयोग स ब धी वर्णन है ।

(३०) पश्यता पद– विशेष उपयोग रूप–९ पश्यता का वर्णन है ।

(३१) सन्नी पद– सन्नी-असन्नि स ब धी वर्णन द ड़क क्रम से है ।

(३२) स यत पद– सयत-अस यत जीवों का वर्णन है ।

(३३) अवधिज्ञान पद– अवधिज्ञान के भेद-प्रभेद स ब धी वर्णन है।

(३४) परिचारणा पद– पा च प्रकार की परिचारणा–मैथुन भाव स ब धी निरूपण है।

(३५) वेदना पद–वेदना के अनेक प्रकार से भेद दर्शाये गये हैं ।

(३६) समुद्घात पद– सात समुद्घातों और चार कषाय समुद्घातों स ब धी विस्तृत वर्णन है। अ त में मोक्ष तत्त्व का वर्णन करते हुए केवली, केवली समुद्घात और सिद्धों के स्वरूप का निरूपण है।

जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र १६

क्ताम्बर जैनों द्वारा मान्य १२ उपा गसूत्रों में यह पाँचवाँ उपा गसूत्र है। न दी सूत्र की श्रुतसूचि में इस शास्त्र का नाम अ गबाह्य **कालिक** सूत्रों में है। औपपातिक सूत्र से लेकर प्रज्ञापना तक के चारों उपा ग **उत्कालिक** है। जिनके मूलपाठ की स्वाध्याय चारों प्रहर में हो सकती है। पर तु जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की स्वाध्याय रात्रि या दिन के प्रथम और चतुर्थ प्रहर में हो सकती है ।

मुख्यत: इस शास्त्र में जम्बूद्वीप के स ब ध में भोगोलिक एव अन्य जानकारियाँ होने से इसका सार्थक नाम ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति रखा गया है। इसमें विभाग रूप में सात अध्याय है, जिन्हें "वक्षस्कार" स ज्ञा दी गई है। इसके अतिरिक्त इसमें कोई प्रतिविभाग आदि नहीं है । इसलिये यह स पूर्ण सूत्र एक ही श्रुतस्क ध के रूप में है। इस सूत्र का परिमाण ४१४६ श्लोक प्रमाण माना गया है।

रचनाकार–व्याख्याकार–इस सूत्र के रचनाकार का नाम सर्वथा अज्ञात है। अत: पहले के उपा ग सूत्रों के समान यह शास्त्र भी देवर्द्धिगणि के लेखन काल में स कलित करवाया गया है ऐसा स्वीकारना ही सर्वथा उचित है। क्यों कि न दी सूत्र में इसका नाम है और उसके पहले होने का कहीं कोई निर्देश प्राप्त नहीं होता है।

इस सूत्र पर आचार्य श्री मलयगिरिजी की टीका उपलब्ध नहीं है और उनसे पूर्व आचार्यों ने चूर्णि व्याख्या करी थी ऐसे स केत मिलते हैं पर तु वह व्याख्या भी आज उपलब्ध नहीं है। आचार्य मलयगिरिजी के बाद विक्रम स वत १६६० में श्री शा तिचन्द्र वाचक के द्वारा स स्कृत टीका रची गई है जो आज मुद्रित मिलती है। आचार्य पू॰श्री घासीलालजी म॰सा॰रचित स स्कृत टीका, हिंदी-गुजराती अनुवाद के साथ उपलब्ध है। अन्य अनेक जगह से अर्थ विवेचन हिंदी-गुजराती में मुद्रित उपलब्ध है । स्थानकवासी पर पराओं में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी का, युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म॰सा॰ का, गुजरात राजकोट से गुरुप्राण फाउन्ड़ेशन द्वारा गुजराती विवेचन युक्त महत्त्वपूर्ण स पादन के साथ यह शास्त्र प्रकाशित उपलब्ध है। आगम सारा श और प्रश्नोत्तर के

दोनों प्रावधानों में आगम मनीषी श्री तिलोकमुनीजी म॰सा॰ने इस शास्त्र के विषयों को दोनों प्रकार की शैली में हिंदी-गुजराती दोनों भाषा में स पादित की है, जो प्रकाशित उपलब्ध है ।

इसी क्रम में जैन आगमों में मध्यलोक नामक ग्रंथ विमलकुमार नवलखा द्वारा लिखित जैनमुनि कन्हैयालाल 'कमल' ट्रस्ट आबु पर्वत से प्रकाशित हुअी है ।

विषय परिचय :- इस शास्त्र के सात वक्ष:स्कार में विषय इस प्रकार है-

(१) प्रथम वक्षस्कार में- ज बूद्वीप के वर्णन का प्रार भ इसकी जगती-परकोटा से किया गया है। तदन तर ज बूद्वीप के वर्णन में दक्षिण दिशावर्ती **भरत क्षेत्र** का क्षेत्रीय-भोगोलिक वर्णन किया है ।

(२) दूसरे वक्षस्कार में- भरतक्षेत्र में काल परिवर्तन स ब धी वर्णन उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप कालचक्र के ६-६ आरों के स्वरूप द्वारा किया है ।तथा प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का विस्तृत वर्णन दीक्षा एव मोक्ष पर्यंत किया है ।

(३) तीसरे वक्षस्कार में-भरतक्षेत्र में उत्पन्न होने वाले प्रथम चक्रवर्ती, भरत महाराजा का वर्णन उनकी ऋद्धि एव छ ख ड़ की विजययात्रा के माध्यम से किया है ।

(४) चौथे वक्षस्कार में-भरतक्षेत्र के बाद क्रमश: उत्तर दिशा की तरफ आगे बढ़ते हुए चुल्लहिमव त पर्वत से लेकर महाविदेह क्षेत्र एव मेरु पर्वत का वर्णन है। पुन: उत्तर में नीलव त पर्वत से लेकर ऐरवत क्षेत्र तक वर्णन पूर्ण किया है ।

(५) पाँचवें वक्षस्कार में-तीर्थंकरों के जन्म समय ५६ दिशाकुमारियाँ और ६४ इन्द्रों के द्वारा किये जाने वाले जन्माभिषेक स ब धी रोचक और विस्तृत वर्णन है ।

(६) छट्ठे वक्षस्कार में-ज बूद्वीप के क्षेत्रीय वर्णन स ब धी पर्वत, नदी, क्षेत्र, द्रह, तीर्थ आदि की कुल स ख्या गिनाई गई है ।

(७) सातवें वक्षस्कार में-सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र एव तारा स ब धी अर्थात् ज बूद्वीप के ज्योतिष म ड़ल स ब धी स क्षिप्त और विविध जानकारी

दी गई है, जो चन्द्र-सूर्य प्रज्ञप्ति का अर्थात् ज्योतिष-गणराज-प्रज्ञप्ति सूत्र का स क्षिप्त सार मात्र है ।

इस प्रकार इस सूत्र में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कालचक्र सहित ज बू द्वीप क्षेत्र के भूगोल-खगोल स ब धी विविध तत्त्वों का परिबोध है ।

चौदह राजू प्रमाण यह लोक हैं। इस में जीव परिभ्रमण करता रहता है। ऊँचालोक तिर्छालोक और नीचालोक में भी जीव परिभ्रमण करता रहता है। तिर्छालोक में भी अस ख्याता द्वीप समुद्र है । उनमें भी जीव जन्म मरण करते रहते हैं, किन्तु उन द्वीपसमुद्रों के मध्य में ढ़ाई द्वीप दो समुद्र है जिनमें जीव जन्म मरण भी करते हैं और मुक्त भी हो सकते हैं। इसी ढ़ाई द्वीप के बीचो बीच में अथवा सभी द्वीपसमुद्रों के बीचो-बीच केन्द्र स्थान में ज बूद्वीप है। यह सम्पूर्ण तिर्छालोक के भी मध्य में है और इसी में हमारा निवास स्थान दक्षिण भरत का प्रथम ख ड़ है। अत: मुक्ति प्राप्त करने योग्य इस क्षेत्र रूप हमारे निवास स्थान से स ब धित भौगोलिक जानकारी भी हमें होना आवश्यक है। आगमों में आध्यात्मिक ज्ञान के साथ अन्य विषय लोक-स्वरूप, जीवादि स्वरूप आदि के ज्ञान को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसे भी अपेक्षा से आध्यात्म के सहयोगी ज्ञान माना गया है। लोक अलोक क्षेत्र एव जगत पदार्थों का सत्य ज्ञान भी आत्मा में परम स तुष्टि एव आन द देने वाला होता है। तथा सम्यक श्रद्धान को पुष्ट करने वाला भी होता है ।

इसलिये ऐसा तर्क देना कि "आध्यात्म के क्षेत्र में दुनिया के भौगोलिक वर्णन के विस्तार अनावश्यक है" व्यक्तिगत नासमझी का एव सर्वज्ञों के विशाल हेतु को नहीं समझ पाने का परिणाम है । आगम जिनवाणी के अध्ययन की उपेक्षा रखने वाले ऐसी अति होशियारी की बातें करते रहते हैं उन्हें सही श्रद्धा-दृष्टिकोण बनाकर आगम स्वाध्याय करना चाहिये; यही हमारे स्पष्टीकरण का उद्देश्य है ।

ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति सूत्र

१७
१८

[सूर्यप्रज्ञप्ति-चन्द्रप्रज्ञप्ति]

अ गबाह्य सूत्रों के रचना के क्रम में चौदह पूर्व शास्त्रों के आधार से इस "ज्योतिष गण राज प्रज्ञप्ति" सूत्र की स कलना बहुश्रुत आचार्यों द्वारा की गई है। इस सूत्र की प्रार भिक गाथाओं में नाम निर्देश पूर्वक कथन पृच्छा की गई है। इससे सुस्पष्ट है कि यह आगम **ज्योतिषगण-राज प्रज्ञप्ति सूत्र** अथवा **ज्योतिषराज प्रज्ञप्ति सूत्र के नाम** से ही बनाया गया है।

ज्योतिषम ड़ल के राजा अर्थात् इन्द्र रूप में चन्द्र और सूर्य दोनों को ही स्वीकार किया गया है। इसलिये व्यवहार एव परिचय में कभी इसके लिये सूर्यप्रज्ञप्ति या चन्द्रप्रज्ञप्ति स ज्ञक नाम भी प्रयुक्त होने लगा होगा। क्यों कि इस ज्योतिष गणराज प्रज्ञप्ति में च द्र एव सूर्य दोनों से सम्बन्धी प्रायः सभी विषयों का स कलन है। ***एक प्राप्त संकेत अनुसार देवर्धिगणि के बाद और आज से ७०० वर्ष से भी पहले १२ अंग सूत्रों के १२ उपांग सूत्र की गणना करने की धुन में किसी समय एक उपांग सूत्र (निरयावलिका) को पाँच सूत्र और इस सूत्र को दो सूत्र गिना गया है।*** **- प्रबुद्ध जीवन मासिक- मुम्बई, अगस्त-२०१२। प्रो.विन्टरनिट्ज(अंग्रेज)का अभिप्राय भी यही है।**

किसी व्यक्ति के एक या अनेक नाम होते हैं वे ही काला तर से भ्रम के कारण दो भिन्न व्यक्ति मान लिये जाते हैं और कभी दो समान नाम वाले भिन्न व्यक्तियों को भी काला तर से भ्रम के कारण एक मान लिया जाता है, ऐसा कुछ भ्रम होना भी इस सूत्र के लिये शक्य है। इसी प्रकार इस आगम सम्मत सुस्पष्ट नाम वाले **ज्योतिष-गण-राज-प्रज्ञप्ति सूत्र** के भी **सूर्यप्रज्ञप्ति** और **चन्द्र प्रज्ञप्ति** ऐसे नाम प्रचलित हुए हैं और इस प्रचलन के प्रवाह में इसी सूत्र में स्पष्ट उपलब्ध नाम को भुला दिया गया है और पर्याय रूप से प्रचलित नाम ने ही पूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। काला तर से सूर्य प्रज्ञप्ति और चन्द्र प्रज्ञप्ति दो सूत्र भी माने जाने लगे हैं यह सब पर परा, प्रवाह, लिपिकाल के दोषों का प्रभाव है। वास्तव में यह सूत्र अपनी प्रारम्भिक गाथाओं में

स्वय ही बता रहा है कि मेरा नाम **ज्योतिष गणराज प्रज्ञप्ति** है। न इसमें सूर्यप्रज्ञप्ति **लिखा है और न** चन्द्रप्रज्ञप्ति।

जब एक ही इस आगम में पूर्ण समन्वय के साथ सूर्य चन्द्र स ब धी दोनों प्रकार के विषयों का सा गोपा ग प्रस्तुतीकरण कर दिया गया है तो फिर इसे केवल सूर्यप्रज्ञप्ति मान कर, चन्द्रप्रज्ञप्ति का अलग अस्तित्व करना भी भ्रम मूलक है। जो भी आज अलग अस्तित्व १-२ पृष्ट का उपलब्ध है उसमें केवल विषय परिचायक गाथाएँ एव वैसा ही पाठ मात्र है और करीब सारा वह सूचित विषय इसी सूत्र में वर्णित ही है। अतः दो सूत्र की कल्पना एव अस्तित्व, पर्याय नाम एव उनके प्रचलन की पर परा से तथा काल व्यवधान से उत्पन्न भ्रम मात्र है। ***अथवा मध्यकाल में किये गये १२ उपांग रूप संख्या संबंधी घोटाले का कारण भी हैं।*** अतः यह ज्योतिषगणराजप्रज्ञप्ति एक ही सूत्र पूर्वाचार्य रचित है। इसे ही चाहे सूर्य प्रज्ञप्ति कहा जाय अथवा चन्द्र प्रज्ञप्ति। इस प्रकार ये तीनों नाम एक ही सूत्र के परिचायक है।

इस सूत्र के पहले ५ उपा ग सूत्रों का परिचय दिया गया है। उसी परिचय के सिलसिले में यह आगम भी अज्ञात नामा बहुश्रुत कृत है अर्थात् लेखनकाल में देवर्द्धिगणि के नेतृत्व में इसकी भी रचना की जाना स्वीकार लेना, वही सहज समाधान के योग्य है। तत्स ब धी स्पष्ट म तव्य उन ५ उपा गों के परिचय में कर दिया गया है। न दी सूत्र की आगम सूचि में इसका एक मूल भूत नाम नहीं होकर पर परा में प्रसिद्ध दो नाम उपलब्ध है जिसमें भी एक नाम कालिक सूत्रों के साथ में है और दूसरा नाम उत्कालिक शास्त्रों के साथ है। न दी सूत्र की सूचि में ऐसे २-४ नाम न दी रचना के बाद काला तर से भी १००-२०० वर्ष बाद भी स पादित हुए हैं ऐसा, तटस्थ अनुप्रेक्षा करने पर सहज समझ में आ सकता है। कुछ भी हो मूलपाठ से एक स्पष्ट नाम वाला यह शास्त्र अपना स्पष्ट एक नाम गुमाकर दो नामों से अथवा दो आगमों के रूप में प्रचलित एव प्रसिद्ध इतना हो चुका है कि आगम प्रमाण होते हुए भी इस आगम के दो नामों को छोड़कर एक नाम स्वीकार कर पर परा को परिवर्तन करना प्रायः कोई भी नहीं चाहता है। क्यों कि इस भ्रमित पर परा की नींव इतनी गहरी हो चुकी है कि स्थानक-

वासी के ३२ शास्त्र की गिनती में एव म दिरमार्गी के ४५ आगम की गिनती में इसको दो आगम रूप में गिना जा चुका है और ३२ और ४५ की गिनती अपनी अपनी प्रतिष्ठा की बात बन चुकी है । एव जहाँ प्रतिष्ठा की बात बन जाती है वहाँ आगम प्रमाण एक या अनेक भी उपस्थित कर दिये जाय तो भी उसका कोई परिणाम नहीं आ सकता ।

ऐसी आज के तमाम धर्मिष्ठों की मानस स्थिति मेरा सो सच्चा का रवैया बन चुका है । आगम प्रमाण का महत्त्व आज के धर्मिष्ठ कहे जाने वालों के मानस में पर परा के महत्त्व के आगे गौण बन गया है, पर परा का महत्त्व आगम प्रमाण के ऊपर सवार हो चुका है । चाहे साधु-साध्वी हो या श्रावक-श्राविका; प्राय: ९९ प्रतिशत लोग अपनी बुद्धि बेचकर पर परा की दुहाई देने वाले है । भेड़ चाल चलना पस द करते है और बाबा वाक्य प्रमाण की उक्ति को चरितार्थ करने वाले हैं । इस कारण आगमानुसार चलने का दम भरने वाले शुद्धाचारी श्रमण वर्ग भी "आचार्य उपाध्याय बिना गच्छ नहीं चलाने की" ध्रुव आज्ञा छेद सूत्रों में भरी है और नवकार म त्र से भी स्पष्ट है तो भी विशाल गच्छ को आचार्य पद के बिना चलाने की जिद रखते है और उसी को अच्छा समझने की हठाग्रह वृति करते हैं, तो भी साध्वी समुदाय के लिये प्रवर्तिनी उपप्रवर्तिनी स रक्षिका उप स रक्षिका आदि पदों का खोटा आग्रह करके उसको नहीं मानने वाली अपनी ही महान सती को अपनी सत्ता के मद में एक झटके में आज्ञा बाहर घोषित करते भी शर्म का अनुभव नहीं करते एव उसी में अपनी शान समझते हैं।

आकार स्वरूप– यह सूत्र एक श्रुतस्क ध रूप है, इसके अध्ययन रूप विभागों को "पाहुड़-प्राभृत" स ज्ञा से कहा गया है। इस अध्ययनों के अवान्तर विभाग भी है, उन्हें प्राभृत-प्राभृत अर्थात् प्रतिप्राभृत कहा गया है। यह शास्त्र पूर्ण रूप से प्रश्नोत्तर शैली में है। प्रश्न की एव उत्तर की भाषा शैली भी एक विलक्षण तरीके की, **तकार** प्रयोग पूर्वक है। भाषा एव शैली सदा रचनाकार के उस समय के मानस पर ही निर्भर करती है। अनेक प्रकार की भाषा, शैली एव पद्धतियों का ज्ञाता विद्धान भी अपने तात्कालिक मानस के अनुसार ही रचना तैयार करता है। अत: विद्वानों को आगम भाषा शैली से किसी प्रकार की एकांतिक कल्पना नहीं करनी चाहिये । क्यों कि पूर्वों के ज्ञाता बहुश्रुतों की रचना

के लिये ऐसी कुछ कल्पना करना निरर्थक ही अपनी बुद्धि की कसरत करना होता है । आज का बहुमुखी प्रतिभा स पन्न व्यक्ति भी स स्कृत, हिंदी, अ ग्रेजी, गद्य, पद्य, श्लोक, दोहे, कविता, धारावाहिक उपन्यास, रामायण, महाभारत के पद्यानुवाद, सरल भाषा के निब ध, वक्तव्य तथा कठिन साहित्यमय भाषा में वक्तव्य लेखन कुछ भी कर सकता है । तो फिर हमारे पूर्वज विद्वान पूर्व ज्ञान के पाठी बहुश्रुत विविध रचना कर सके ऐसा मान लेने में क्या आपत्ति है ? अर्थात् बहु आयामी शक्ति वाला कोई भी व्यक्ति कैसी भी भाषाशैली में रचना कर सकता है ऐसा मान्य करना चाहिये ।

गणित विषय स्वाभाविक ही अल्प व्यक्तियों को रुचिकर होता है। अत: इस आगम का अध्ययन प्रचलन कम ही रहा है । जिससे इस सूत्र के अर्थ परमार्थ के ज्ञान में और भी कठिनता अनुभव होती है। साथ ही इसके विषय का परिचय अल्प होने के कारण तथा भाषा भी विचित्र होने के कारण लिपिकाल में कुछ स्खलनाएँ होना स्वाभाविक है। इसी कारण वर्तमान युग के स पादक इसे व्यवस्थित प्रकाशित करने का प्रयत्न करते हुए भी इसके पाठों के सम्बन्ध में अनेक स देहों को उपस्थित करने का प्रक्रम भी करते हैं। इतना होते हुए भी वे समस्त स्खलनाएँ सुसाध्य है और वे स देह भी समाधान स भावित है। जिसका अनुभव आगम मनीषी श्री तिलोकमुनीजी म॰सा॰ द्वारा स पादित प्रश्नोत्तर पुस्तिका से बहुत कुछ प्राप्त किया जा सकता है। जिस रूप में यह ज्योतिष गणराज प्रज्ञप्ति सूत्र आज उपलब्ध है इसका परिमाण २२०० श्लोक प्रमाण माना गया है । इस सूत्र में २० प्राभृत है। कुछेक प्राभृत में प्रति प्राभृत भी है। दसवें प्राभृत में २२ प्रति प्राभृत है उसके बाद ११ से २० तक में प्रति प्राभृत नहीं है ।

सूत्र विषय– इस सूत्र का विषय सीमित है वह है ज्योतिष म ड़ल का गणित विषय एव उनका परिचय अर्थात् आचार एव धर्म कथा इसमें नहीं है। इस प्रस ग से इस सूत्र में सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा इन पाँच प्रकार के ज्योतिषी गण का वर्णन है। सूर्य-चन्द्र की गति, भ्रमण म ड़ल, दिन रात्रि मान एव उनकी वृद्धि हानि, प्रकाश क्षेत्र, नक्षत्रों के योग, योग काल, पाँच प्रकार के स वत्सर सम्बन्धी विविध

विचारणाएँ, चन्द्र की कला वृद्धि-हानि, राहु विमान, इन पाँचों ज्योतिषीगण की स ख्या एव समभूमि से दूरी आदि विषयों का सा गोपा ग वर्णन किया गया है। विशेष जानकारी विविध मुद्रित प्रकाशित अर्थ विवेचन या सारा श तथा प्रश्नोत्तर की पुस्तकों तथा ज्ञानीजनों के सानिध्य से ही हो सकेगी।

इस सूत्र में दसवें प्राभृत का सतरहवाँ प्रति प्राभृत जैन समाज में चर्चा का एव स दिग्धता का विषय बना हुआ है। जो आज से नहीं सैकड़ों वर्षों से एक प्रश्न चिन्ह लिये हुए है। जहाँ आकर प्रत्येक स पादक, विवेचक या तो सहम जाते हैं या कल्पनाओं में उत्तर जाते हैं। वास्तविकता यह है कि मा स आदि अखाद्य पदार्थों के प्रेरक वाक्य वाले पाठों को सूत्रकार या गणधर बहुश्रुत रचनाकार नहीं रच सकते हैं। ये लिपिकाल में दूषित मति के लोगों के द्वारा प्रक्षिप्त एव विकृत तत्त्व है। अन्य सूत्रों में भी ऐसे तत्त्व कई रूप से देखे जा सकते हैं। जैन शास्त्रों के निर्माण कर्ता ऐसे भ्रम कारक शब्दों के प्रयोग अथवा प्रेरणात्मक वाक्यों को किसी भी अन्य अर्थ के लक्ष्य से भी नहीं रख सकते हैं। क्यों कि वैसा करना उन बहुश्रुतों को योग्य भी नहीं है एव उनके स यमोचित भी नहीं होता है।

व्याख्या साहित्य :- इस सूत्र पर आचार्य मलयगिरि की टीका उपलब्ध है जो मुद्रित है। निर्युक्तिकार श्री द्वितीय भद्रबाहु स्वामी ने भी इस सूत्र पर निर्युक्ति व्याख्या की थी, ऐसे स केत प्राप्त होते हैं। पर तु वह आज अनुपलब्ध है। आचार्य घासीलालजी म॰सा॰ ने अपनी समस्त आगमों की टीका करने की प्रतिज्ञा के अनुसार इस सूत्र की भी टीका लिखी है। जो मुद्रित हिन्दी स स्कृत गुजराती तीनों भाषा में उपलब्ध है। इसके पूर्व आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी म॰सा॰ ने ३२ आगमों का हिन्दी अनुवाद के साथ मुद्रण करवाया था। उसमें भी अनुवाद सहित एव आवश्यक गणित विस्तार सहित यह सूत्र मुद्रित है।

वर्तमान युग की आधुनिक आकर्षक पद्धति के स स्करण आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से मुद्रित हुए हैं। जो सूत्रों के अर्थ विवेचन टिप्पणों आदि से सुसज्जित है। ३२ ही सूत्रों का ऐसा सर्वांगीण मुद्रण

पूर्ण हो चुका है जो जैन समाज के लिये असा प्रदायिक रूप की अनुपम उपलब्धि है। उस श्रृ खला में इस सूत्र का स पादन पूज्य प ॰ रत्न श्री कन्हैयालालजी म॰सा॰ "कमल" ने अर्थ, परमार्थ, टिप्पणों के साथ अथक प्रयत्न से किया, किन्तु कुछ स कुचित स स्कारों की प्रमुखता से उस समिति ने इस शास्त्र को मूलपाठ के रूप में ही मुद्रित करवाया है। फिर भी उसमें टिप्पण एव परिशिष्टों के द्वारा सूत्र का अल्पा श स्पष्ट किया गया है। इन सभी स स्करणों विचारों एव कल्पनाओं को समक्ष रखते हुए आगम मनीषी श्री तिलोकमुनीजी म॰सा॰ ने यथाप्रस ग आवश्यक समाधानों से स युक्त करके सहज सुबोध भाषा में इस शास्त्र के सारा श तथा प्रश्नोत्तर हिंदी गुजराती दोनों भाषा में अलग-अलग स पादित किये है जो छोटी पुस्तकों के रूप में प्रकाशित उपलब्ध है । जिनका उपयोग, सामान्य स्वाध्यायी एव विद्वान मनीषी दोनों ही करके सूत्राशय को समझ सकते हैं ।

इस शास्त्र का प्रथम सूत्र (मूल पाठ)समस्त विद्वानों को स देहात्मक अनुभूत होता है तथापि आगम मनीषी मुनिराज ने उसका चिंतन कर उस पाठ की सत्यता और आगम आशय, जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर की पुस्तक में(भाग-८ में) स्पष्ट किया है जो आगमों के विद्वान एव शोधार्थी स्वाध्यायियों के लिये अवश्य प्रेक्षणीय एव मननीय है ।

चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र :- [यद्यपि पूर्वोक्त ज्योतिषगणराजप्रज्ञप्ति के परिचय वर्णन से प्रचलित सूर्य-चन्द्रप्रज्ञप्ति दोनों का सामान्य परिचय पूर्ण हो जाता है। तथापि ***रूढ पर परानुसार*** उस परिचय को सूर्यप्रज्ञप्ति का गिन कर चन्द्रप्रज्ञप्ति का परिचय अलग से दिया जाता है]

इस सूत्र के नाम से एक दो पृष्ट जितना ही पाठ उपलब्ध होता है। उसमें भी विषयों का स कलन सूचन मात्र है और वे विषय प्रायः सूर्यप्रज्ञप्ति रूप ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति में अ कित है। अतः यह सूत्र लिपिकाल के दोष से एवं मध्यकाल के १२ उपांग की संख्या संबंधी घोटाले से दूषित है। इसमें सूर्य प्रज्ञप्ति के विषयों का ही स कलन मात्र है पाहुड़ प्रतिपाहुड़ भी वैसे ही कहे हैं। अतः गलत परंपरा का

संशोधन इतिहासज्ञों के खोज के लिये विचारणीय हैं ।

वास्तव में अभी यह सूत्र कुछ भी स्वत त्रता लिये हुए उपलब्ध नहीं है। अतः इसे सूत्र कहना और गिनती में गिनना आदि भी एक प्रवाह पर परा मात्र है। वस्तुतः देखा जाय तो ३२ में या ४५ में इसे आगम गिनने की भी कोई उचितता नहीं है। यदि ऐसे गिने जाय तो न दीसूत्र कथित अनेक आगम और गिने जा सकते हैं। अतः इन दोनों सूत्रों को एक सूत्र ही गिनना चाहिये, उपलब्ध दोनों सूत्र के प्रारम्भ की सूचक गाथाओं में कहीं भी ***सूर्य प्रज्ञप्ति या चन्द्र प्रज्ञप्ति का नाम ही नहीं है दोनों जगह ज्योतिष राज प्रज्ञप्ति ही नाम अ कित है,*** यथा–

णामेण इन्दभूइत्ति, गोयमो व दिउण तिविहेण ॥

पुच्छइ जिणवर–वसह , जोइस रायस्स पण्णत्ति ॥ सूर्य प्र० गा०४ ॥

एव जोइस गण राय पण्णति ॥–चन्द्रप्रज्ञप्ति गाथा–४॥

निष्कर्ष यह है कि आज न तो सूर्य प्रज्ञप्ति नामक कोई शास्त्र उपलब्ध है और न चन्द्रप्रज्ञप्ति के नाम का। इस नाम से प्रचलित इन दोनों सूत्रों में ज्योतिष राज प्रज्ञप्ति यही नाम मूलपाठ की तीसरी चौथी गाथाओं में अ कित है। इसलिये यह सूत्र ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति स ज्ञक है और एक ही है। प्राचीन काल में कभी उक्त दोनों नाम के सूत्र रहे होंगे तभी न दी में भी इन दोनों के नाम है। अथवा तो इस एक सूत्र के ही ये भिन्न-भिन्न नाम प्रचलित हुए होंगे और न दीसूत्र में भी नाम अ कन ऐसे प्रचलन से ही परिवर्तित हुआ होगा। क्यों कि न दीसूत्र की नामावली में ऐसे प्रचलित परिवर्तनों का समय समय पर असर हुआ ही है। तभी निरियावलिका–उपा ग सूत्र के ५ वर्गों के ५ सूत्र रूप में नाम अ कित हुए हैं।

उपा ग सूत्र

११
२३

[निरयावलिकादि पाँच शास्त्र]

श्वे० स्थानकवासी जैनों द्वारा ३२ आगमों में १२ उपा गसूत्र प्रचलित है उसमें यह अ तिम उपा गसूत्र है। खास बात तो यह है कि इस शास्त्र का नाम भी उपा गसूत्र है। इसी के नाम से अ गसूत्रों के बाद का दूसरा आगम विभाजन उपा ग शास्त्र कहलाया ।

इस सूत्र का प्रसिद्ध नाम निरयावलिकादि पाँच शास्त्र है। इस शास्त्र के विभागों, अध्यायों का नाम वर्ग है । वे वर्ग–५ कहे गये हैं। वर्ग के प्रतिविभागों को यहाँ अध्ययन कहा गया है वे अध्ययन–५२ है। आठवें अ गशास्त्र अ तगड सूत्र में भी ऐसा ही विभाजन है अर्थात् वहाँ भी आठ वर्ग और ९० अध्ययन है। ३२ आगमों में इन दो आगमों का विभाजन एक सरीखा है। प्रस्तुत शास्त्र को ११०९ श्लोक प्रमाण माना गया है। श्लोक ३२ अक्षर का होता है।

रचनाकार :– पूर्व वर्णित औपपातिक सूत्र से लेकर सूर्यप्रज्ञप्ति तक के शास्त्रों के समान यह शास्त्र भी अज्ञात रचनाकार वाला शास्त्र है। वास्तव में यह शास्त्र भी देवर्द्धिगणि के शास्त्रलेखन समय ही स कलित लेखित शास्त्र है, ऐसा मानना स्वीकारना ही श्रेष्ठ एव निर्विवाद होता है अर्थात् देवर्द्धिगणि ने अ गशास्त्रों का लेखन करवाया तब १२ उपा गसूत्र मूलसूत्र आदि भी **अंगबाह्य रूप में** लिखवाये है। अर्थात् अंग आगम लेखन के साथ नये शास्त्र की रचना या स पादन भी करवाया । उस समय १ पूर्वधर श्रुतज्ञानी बहुश्रुत आचार्य आदि श्रमण सभी सम्मिलित थे।

व्याख्या साहित्य :– इस शास्त्र पर प्राचीन टीका नामक स स्कृत व्याख्या आचार्य च द्रसूरि की उपलब्ध है। कथाशास्त्र एव सरल आगम होने से इसकी व्याख्या भी स क्षेप में की गई है।

वर्तमान में यह कथाप्रधान शास्त्र अनेक जगह से प्रकाशित प्राप्त होता है ।स्थानकवासी पर पराओं में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी

का, आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. का, युवाचार्य श्री मधुकरमुनिजी म.सा. का, गुजरात से गुरुप्राण फाउन्डेशन राजकोट का एव राजस्थान से सुधर्म प्रचार म डल वगैरह का मुख्य रूप से प्रसिद्धि प्राप्त है।आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित आगम सारा श एव आगम प्रश्नोत्तर हिंदी तथा गुजराती सरल-सुगम भाषा में प्रकाशित हैं।

इसमें कथाओं के माध्यम से इहलोक परलोक, स्वर्ग नरक, कर्म आदि सिद्धा तों का, सा सारिक मोहदशा और दुर्गति, वैराग्य और मुक्ति, राजनीति एव तत्कालीन ऐतिहासिक तत्त्वों का निरूपण है।

ऐतिहासिक विचारणा :- इस शास्त्र के ५ वर्गों के नाम इस प्रकार है- (१) निरयावलिका (२) कप्पवड़ सिया (३) पुप्फिया (४) पुप्फचूलिया (५) वण्हिदशा । प्रथमवर्ग की मुख्यता से इसका नाम निरयावलिका प्रसिद्ध हुआ है । तदुपरा त इस शास्त्र के ५ वर्ग विभाग ही पाँच शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध है । जब कि यह एक ही शास्त्र है और इसकी मूलपाठ की प्रस्तावना में शास्त्र का नाम उपा गसूत्र कहा गया है और पाँच इस शास्त्र के वर्ग कहे हैं ऐसा मूलपाठ स्पष्ट होते हुए भी ५ वर्गों को ५ शास्त्र कहने की पर परा कब से और क्यों चल गई है उसका कारण अज्ञात है। कुछ इतिहासवेताओं का कहना है कि १२ अ गसूत्रों के १२ उपा ग शास्त्रों का मेल मिलाने के लिये इस शास्त्र के ५ वर्ग रूप बड़े विभाजन को शास्त्र की कल्पना में रखकर १२ अ ग से १२ उपा ग की तुकब धी जोड़ दी गई और ऐसा कहा जाने लगा कि अमुक अ ग का अमुक उपा ग है । उस तुकब धी में दृष्टिवाद अ ग का उपा ग वृष्णिदशा को माना गया । इस तरह की खोटी तुकब दीयाँ भी कोई चला देते है और सारा समाज उसे चला भी लेता है । एव ऐसी तुकब दी की बात चल जाने से न दी सूत्र जैसे प्रमाणिक आगम में १ शास्त्र के ५ वर्ग को ५ शास्त्र भी प्राचीन हस्तप्रतों में लिख दिया जाने लगा। आज जिसे स पूर्ण मूर्तिपूजक समाज और स्थानकवासी समाज एक मत से, आँख मीचकर मानता जा रहा है। बुद्धिमानों के इस जैन समाज में ऐसे कोई विषयों में बुद्धि को गिरवी रखकर या ताक में

रखकर अ धानुकरण से चला जाता है । यह अफसोस की बात है। इस पर विचारको को ध्यान देना चाहिये ।

तथापि पाँच आगम कहने की पर परा शुद्ध तो नहीं है। इस विषय में कोई भी विद्वान पाठक इस शास्त्र के मूलपाठ की प्रार भिक उत्थानिका पढ़कर समझ सकता है। पर परा के कारण न दीसूत्र की आगमसूचि में इसके पाँच नाम भी अज्ञात समय से लिखे जाने लगे हैं। जिससे इस अशुद्ध पर परा को ज्यादा बल मिला है और समस्त क्तेा बर जैन समाज इन्हें पाँच शास्त्र श्रद्धा से मान रहे हैं। उसी हिसाब से ३२ आगम और ४५ आगम की स ख्या भी मान्यता प्राप्त है। क्यों कि अशुद्ध मान्यताएँ भी कभी दृढ़ पर परा बन जाती है यह लोकप्रवाह स्वाभाविक है ।

सार- यह **उपा ग सूत्र** नाम वाला एक ही शास्त्र है, यह बात आगम प्रमाण से स्पष्ट सिद्ध है और पर परा में इसे पाँच शास्त्र मानने की प्रथा रूढ़ हो चुकी है । इसे सुधारने की क्षमता किसी क्रा तिकारी वक्ता या लेखनकर्ता के हाथ में आयेगी तभी इस प्रथा में सुधार स भव हो सकेगा । अन्यथा तब तक ३२ और ४५ की स ख्या का रटन चलता रहेगा । जब कि न दी सूत्र के मूलपाठ में ७३ आगमों के नाम स्पष्ट है और उनमें से करीब ४५ आगम आज प्रकाशित उपलब्ध भी है। इसकी(४५ की) सूचि भी इसी पुस्तक में पाठक आगे पीछे के निबंधों में ध्यान से देखेंगे ।

चार छेद सूत्र का परिचय

सामायिक आदि पाँच चारित्र है, जिसमें वर्तमान में भगवान महावीर स्वामी के शासन में छेदोपस्थापनीय चारित्र ही मुख्य होता है और इन चारों छेद शास्त्रों में छेदोपस्थापनीय चारित्र स ब धी विधि, निषेध एव प्रायश्चित्त विशेष है। अतः ये चारों शास्त्र छेद सूत्र रूप में प्रचारित हुए हैं। चार छेदसूत्रों का क्रम इस प्रकार है- (१) निशीथ सूत्र (२) दशा श्रुतस्क ध सूत्र (३) बृहत्कल्प सूत्र और (४) व्यवहार सूत्र। इस क्रम का मुख्य आधार इस प्रकार है। प्रथम निशीथ सूत्र गणधर रचित आचारा ग सूत्र का ही अध्ययन(णिसीहज्झयण)पच्चीसवाँ अध्ययन था। यह कथन समवाया ग सूत्र में है। दशाश्रुतस्क ध आदि तीन सूत्र भद्रबाहुस्वामी चौदहपूर्वीकृत है। जिसका कथन अनेक ग्र थों में एव व्याख्याओं में है एवं जो सर्व मान्य है ।

अतः गणधर रचित आचारा ग सूत्र का अध्ययन होने से निशीथ सूत्र का क्रम सर्व प्रथम रखा है। शेष तीनों का क्रम यथावत् निशीथ के बाद रखा गया है। तीनों का नाम शास्त्र पाठ में **दसा-कप्प-व्यवहारो** इस तरह आता है। अतः चारों का एक निश्चित आगम सम्मत क्रम इस प्रकार सिद्ध होता है- (१) निशीथ सूत्र (२) दशाश्रुत स्क ध सूत्र (३) बृहत्कल्प(कप्प) सूत्र (४) व्यवहार सूत्र।

व्यवहार सूत्र के दसवें अध्ययन में साधु-साध्वी के लिये शास्त्रों के अध्ययन का क्रम भी दर्शाया है जिसके २३वें सूत्र में सर्व प्रथम आचारा ग और निशीथसूत्र का अध्ययन(आचार प्रकल्प अध्ययन) करना कहा गया है, उसके बाद सूत्रकृता ग सूत्र के अध्ययन के बाद **दसा-कप्प-व्यवहार** के अध्ययन करने का कथन है। इस अपेक्षा को ध्यान में रखते हुए भी चार छेद सूत्रों का उपरोक्त क्रम निर्धारित किया गया है, वह आगमाधार युक्त एव सहज स्वीकार करने योग्य है तथा स देह रहित है। तथापि समाज में अन्यान्य क्रम से भी इन छेदसूत्रों को अनाग्रह भाव से विचारणा बिना स्वीकारा जाता है। परन्तु विचार करने पर उपरोक्त आशय समझ में आवे जैसा है।

०००

निशीथ सूत्र २४

रचनाकार :- इतिहास की विविध भ्रामकता से निशीथसूत्र के रचनाकार के रूप में तीन नाम आते हैं- (१) आचार्य भद्रबाहु स्वामी (२) विशाखागणि (३) आर्यरक्षित। कि तु आगम प्रमाण से यह सूत्र आचारा ग का २५वाँ अध्ययन होना एव अध्ययन(पठन-पाठन) क्रम में सर्व प्रथम होने से **विशाखागणि** और **आर्यरक्षित** की स गति नहीं हो सकती। क्यों कि व्यवहार सूत्र में भद्रबाहु स्वामी ने इसे अध्ययन में प्राथमिकता दी है और और ये दोनों आचार्य भद्रबाहुस्वामी के बाद में हुए है । भद्रबाहु स्वामी ने तीन छेद सूत्र **दशा कप्प व्यवहार** की रचना की थी यह बात भी प्रमाण युक्त है। अतः निशीथ सूत्र गणधर रचित आचारा ग का २५वाँ अध्ययन था जिसे किसी भी समय स्वतत्र करके निशीथ सूत्र नाम करण कर दिया गया है।

व्याख्या साहित्य :- देवर्द्धिगणि के आगम लेखन काल के बाद ही व्याख्याओं की रचना-लेखनकाल प्रार भ होता है। सर्व प्रथम वराहमिहिर के भाई द्वितीय भद्रबाहुस्वामी ने चारों छेद सूत्र पर **निर्युक्ति नामक व्याख्या** प्राकृत पद्य में लिखी। फिर निशीथ सूत्र पर आचार्य सिद्धसेन-गणि ने भाष्य रूप व्याख्या पद्य में लिखी। मता तर से आचार्य स घदास गणि ने भी भाष्य व्याख्या करी, ऐसा उल्लेख मिलता है पर वह ज्यादा महत्त्वशील नहीं है। निर्युक्ति-भाष्य के आधार पर चूर्णि नामक व्याख्या आचार्य जिनदासगणि महत्तर ने निशीथसूत्र पर विस्तार से लिखी । जिसे पूर्णतः आगरा से उपाध्याय श्री अमरमुनिजी ने सर्व प्रथम प्रकाशित करवाई। जिसमें प.र.श्री कन्हैयालालजी **कमल** म॰सा॰भी पूर्ण सहयोगी थे।

इस प्रकार निशीथ सूत्र का नाम निर्देश देवर्द्धिगणि के द्वारा न दी सूत्र में हुआ। विक्रम की छट्ठी शताब्दि में निर्युक्ति, सातवीं सदी में भाष्य और आठवी सदी में चूर्णि की रचना हुई। प्राचीन व्याख्या सभी प्राकृत स स्कृत में आज प्रकाशित उपलब्ध है । सर्व प्रथम हिंदी में इनका विवेचन आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से एव गुजराती में राजकोट से गुरुप्राण फाउन्ड़ेशन से हुआ है। अनेक परिशिष्ट निब धों

सहित सारा श एव प्रश्नोत्तर शैली में यह शास्त्र आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰सा॰ द्वारा स पादित हिंदी और गुजराती दोनों भाषा में उपलब्ध है ।ब्यावर एव राजकोट से जो विवेचन प्रकाशित हुआ है उसका भी क्रमशः मूलतः लेखन एव स पादन आगम मनीषी मुनिराजश्री ने ही किया है ।

गोपनीयता की विचारणा :– निशीथ सूत्र में साध्वाचार स ब धी दोषों का, अतिचार एवं अनाचारों का प्रायश्चित विधान है । अतः पात्र–अपात्र की अपेक्षा कुछ लेखक विचारक इसे गोपनीय सूत्र कह देते हैं । परन्तु वास्तविकता यह है कि सूत्र–शास्त्र योग्य एव तैयार शिष्यों (साधु-साध्वी) को पढ़ाये जाते एव योग्य श्रावकों के भी ११ अ ग शास्त्रों के अध्ययन का वर्णन मिलता है। यह निशीथ सूत्र आचारा ग का अध्ययन रूप होने से योग्य प्रायः सभी साधु-साध्वी को आवश्यक रूप से अध्ययन एव क ठस्थ रखने की प्रणाली प्रार भ से थी अतः गोपनीयता की एका त बात महत्त्वशील नहीं है ।

व्यवहार सूत्र उद्देशक–५ सूत्र–१५, १६ के अनुसार क ठस्थ किये **इस शास्त्र को** भूल जाना साधु-साध्वी दोनों के लिये अपराध माना गया है एव उसका यहाँ कठोर प्रायश्चित्त विधान किया है ।

निशीथसूत्र पर **चूर्णि व्याख्या** स स्कृत–प्राकृत मिश्र भाषा में आचार्य जिनदास गणि महत्तर ने लिखी। व्याख्याकार ने इस सूत्र के प्रायश्चित विधानों को हेतु कारण सहित समझाने के लिये दोष सेवन की सामान्य परिस्थिति से लेकर पराकाष्टा तक की स्थितियों को स्पष्ट करते हुए उसके प्रायश्चित्त के दर्जे किस तरह घटते बढ़ते हैं उन सभी दर्जों का स्थितियों का बहुत स्पष्ट वर्णन विस्तार से किया है । जो मात्र साधकों को अनुभव वृद्धि के लिये और प्रायश्चित्त की तारतम्यता समझाने के लिये किया है। इतना सारा विस्तार और खुले दोष सेवन के दर्जे लिखे होने से उन्होंने ही इस व्याख्या सूत्र की अतिगोपनीयता दर्शायी है। जो दोषों के सेवन की स्पष्टता होने से उपयुक्त भी है । कि तु हमारे शास्त्र स क्षिप्त और मर्यादित भाषा में होने से और योग्य गुरु शिष्य के अध्यापन की पर परा होने से इन्हें गोपनीय किसी शास्त्र में या न दी सूत्र में नहीं कहा गया है ।

व्याख्याकार का समय :– निर्युक्तिकार द्वितीय भद्रबाहु वराहमिहिर के भाई थे। वराह- मिहिर ने वराही स हिता ग्र थ की रचना की थी, जिसमें उसका रचना समय अ कित है जो विक्रम स वत् ५६२ का समय होता है। वह समय वीर निर्वाण की ग्यारहवीं शताब्दि अर्थात् देवर्धि गणी के ३०–४० वर्ष बाद का होता है। अतः १४पूर्वी भद्रबाहुस्वामी नाम साम्यता से भ्रमित चल गया है । वास्तव में आगम लेखन के बाद ही व्याख्याएँ लिखना प्रास गिक होता है और जो वराहमिहिर के वराही स हिता में लिखे शक् स वत से स्पष्ट हो जाता है ।

नामकरण एवं विभाजन :– निशीथ सूत्र यह नाम करण न दी सूत्र से प्राप्त होता है । अतः स भवतः यह नाम देवर्धिगणि के लेखन समय में कायम किया गया हो। पूर्व में यह आचार प्रकल्प, *आचारा ग सूत्र* इस तरह से प्रसिद्ध था। विभाग की अपेक्षा इसमें २० उद्देशक(अध्याय) हैं जिसमें १९ उद्देशकों में अमुक दोषो के प्रायश्चित्त कहे है । अ तिम उद्देशक(२०) में प्रायश्चित्त उतारने स ब धी अर्थात् वहन करने स ब धी वर्णन है । वर्तमान में उपलब्ध इस सूत्र का परिमाण १८१५ श्लोक प्रमाण माना गया है । प्रायश्चित्त विभाजन भी १९ उद्देशकों में ४ प्रकार से विभक्त किया गया है ।– (१) उद्देशक–१ में गुरु मासिक प्रायश्चित्त कथन है। (२) उद्देशक २ से ५ तक में लघु मासिक प्रायश्चित्त विधान के दोष स्थान कहे हैं। (३) उद्देशक–६ से ११ में गुरु चौमासिक प्रायश्चित्त स्थान कहे हैं। (४) उद्देशक–१२ से १९ तक लघु चौमासी प्रायश्चित्त स्थान कहे हैं।

प्रायश्चित्त कब कैसे कितना :– अनिवार्य कारणों से या बिना कारण स यम मर्यादा का भ ग करके यदि कोई स्वय आलोचना करे, तब ये सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आते हैं। जिसमें अतिक्रम व्यतिक्रम और अतिचार का प्रायश्चित्त ***मिच्छामि दुक्कड़*** से प्रतिक्रमण से हो जाता है । अनाचरण रूप दोष का स्पष्ट सेवन हो जाने पर इस सूत्र में कहे गये प्रायश्चित्त आते हैं । यह स्थविरकल्पी सामान्य साधु-साध्वियों की मर्यादा हैं ।इन प्रायश्चित्तों का स्वरूप इस प्रकार है–

(१) लघु मासिक में जघन्य एक एकासना उत्कृष्ट २७ उपवास ।
(२) गुरु मासिक में जघन्य एक निवी(दो एकासना)उत्कृष्ट ३० उपवास।
(३) लघु चौमासी में जघन्य एक आय बिल उत्कृष्ट १०८ उपवास ।

(४) गुरु चौमासी में जघन्य एक उपवास उत्कृष्ट १२० उपवास।

(५) इन्ही दोषों का बारम्बार सेवन करने पर अथवा ल बे समय तक दोष चलता रहने पर प्रायश्चित्त सीमा बढ़ती जाती है। तप से छेद प्रायश्चित्त तक भी बढ़ जाती है।

(६) कोई साधु बड़े दोष का गुप्त रूप से सेवन करके अपना दोष छिपाना चाहे और तब कभी कोई दूसरा व्यक्ति दोष को प्रमाणित सिद्ध करके प्रायश्चित्त दिलावे तो दीक्षा छेद का प्रायश्चित्त आता है।

(७) दूसरे के द्वारा सिद्ध करने पर खोटा बचाव करने का प्रयत्न करे, झूठ कपट विपरीत आचरण करे फिर मजबूरी से स्वीकार करे तो नई दीक्षा का प्रायश्चित्त आता है।

(८) यदि प्रमाणित होने पर भी खोटा दुराग्रह करे, दोष स्वीकार नहीं करे, प्रायश्चित्त नहीं ले तो गच्छ से मुक्त कर दिया जाता है।यह कदम साधु के लिये समझना। ***साध्वी को गच्छमुक्त करने की स्थिति जिन शासन के कोई भी पदवीधर कभी नहीं करते और ऐसा अधिकार किसी को भी किसी शास्त्र में नहीं दिया गया है और ऐसा कोई द्रष्टांत भी आगम में नहीं मिल सकता। इसके विपरीत सैकडों साध्वियों के स्वतः निकलने का वर्णन शास्त्रों में मिलता है। [तथापि आज के गच्छ प्रमुख बने श्रमण, साध्वी पर श्रावक द्वारा दोषारोपणों की झूठी शिकायत से साध्वी से पूछताछ किये बिना सैकडों कि.मी.का विहार करवा कर अपने पास बुला कर पाँच दिन चर्चा कर आलोचना उत्तर सुनकर एक भी प्रायश्चित्त नहीं देते, निर्दोष कह कर फेंसला देते हैं। फिर श्रावकों के चक्कर में आकर दूसरी तरह से उस साध्वी की श्रावकों के मारफत हुकमबाजी करवा कर १३५ साध्वियों की गुरुणी को निरर्थक गच्छ से मुक्त करने का दुस्साहस करे जो उत्कृष्टाचारियों के लिये महा कल क रूप में अन त इतिहास में अमिट रहने जैसी जगजाहिर बात है। ऐसा अपनी जिद से करने में वे महा श्रमण अपने समवयस्क गुरु भाईयों की सलाह लेने या मानने की गु जाइश भी नहीं रखे। जिसके फल स्वरूप अपने ही स तों को गुमाकर स घभेद करने का महापाप अपने पल्ले लेते हैं और जिसका कभी कोई पश्चात्ताप नहीं, कोई प्रायश्चित्त नहीं, क्षमापना भाव भी नहीं। श्रावकों को क्षमाभाव का क्षमापना का लंबा-चौडा***

उपदेश देने वाले इन श्रमणों के खुद के लिये वर्षों के वर्षों बीत जाय तो कभी सच्ची स वत्सरी आती ही नहीं है। मनमुटाव दिन-दिन बढता ही जाता है, अर्थात् अपने ही गच्छ के उन साधु-साध्वी के छोटे से गांव में खोले गये चातुर्मास के उपरा-उपरी चातुर्मास करने की बदनीति अनेक जगह प्रतिवर्ष की जाने लगी है। ऐसे दुर्मानस में संयम भावों की, धार्मिकता की कितनी दुर्दशा होती है उसे कोई कभी समझेगा ? इस प्रकार चतुर्विध संघ में विध-विध रूप से आये दिन नित नये टकराव एवं कर्म बंध बढते रहते हैं। समभावों का विनाश बढता रहता है, तिरस्कार हीन भाव भी बढते रहते हक्क, कुल मिलाकर विषमभावों के कारण समकित की भी सुरक्षा नहीं रहती है। वैमनस्य वृद्धि से धर्म का प्राण नष्ट होता है। इन सब के सब नुकसान का दोष-पाप, जिद्द से संघभेद करने वालों पर तथा उसमें सहयोग देने वालों पर जाता है।]

प्रायश्चित की न्यूनाधिकता :- परिस्थितिवश कारण से लगने वाले दोषस्थानों का और शिथिलता से लगने वाले उन्हीं दोषस्थानों का प्रायश्चित्त भिन्न भिन्न होता है जिसे तालिका से समझें-

परिस्थिति, कारणवश का प्रायश्चित्त :-

क्रम	प्रायश्चित्त नाम	जघन्य तप	उत्कृष्ट तप
१.	लघुमासी	एक एकासना	सत्तावीस एकासना
२.	गुरुमासी	एक निवी	तीस निवी
३.	लघु चौमासी	एक आय बिल	१०८ उपवास
४.	गुरु चौमासी	एक उपवास	१२० उपवास(पाँच वर्ष में)

शिथिलाचार, आसक्ति आदि के दोष का प्रायश्चित :-

क्रम	प्रायश्चित्त नाम	जघन्य तप	उत्कृष्ट तप
१.	लघुमासी	एक आय बिल	सत्तावीस आय बिल या उपवास
२.	गुरुमासी	एक उपवास	तीस आय बिल या उपवास
३.	लघु चौमासी	चार आय बिल	१०८ उपवास
४.	गुरु चौमासी	चार उपवास	१२० उपवास पाँच वर्ष में या ४ मास का दीक्षा छेद

निशीथसूत्र में चार विभाजन की गूढता :- दोषों के चार विभाजन अपेक्षा विशेष से स्थूल दृष्टि से किये गये हैं। यथा- (१) मूलगुण के दोष, मौलिक स्थूल विराधना दोष एव गृहस्थ की सेवा युक्त दोष ये **गुरु में** समाविष्ट होते हैं। (२) उत्तरगुण के दोष; सामान्य विराधना के दोष और अल्प विराधना वाली गृहस्थ सेवा के दोष **लघु में** समाविष्ट होते हैं। (३) इन दोनों में भी तुलनात्मक दृष्टि से अल्प और छोटे दोष मासिक में लिये हैं और (४) बड़े और विशेष दोष को **चौमासी में** लिये हैं।

निशीथ सूत्र का यह चार प्रकार का विभाजन बहुत ही गूढ एव अनेका तिक दृष्टि से है। इसके लिये एका त और निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता है। १ से १९ उद्देशकों के विषयों को देखने से चि तन करने से ऐसा आभास होता है।

चारों विभागों को एक निश्चित एव एका त स्थिर परिभाषा में बाँधना दुविधाजनक है। मोटे रूप में एव अनाग्रह भाव से समझना ही सर्वोचित होगा। फिर भी पाठक मोटे रूप में यह समझें कि-

(१) मूलगुण, भारी एव बड़े दोष- गुरु चौमासी में

(२) मूलगुण एव छोटे दोष- गुरु मासिक में

(३) उत्तरगुण के विशाल एव अधिक विराधना दोष- लघु चौमासी में

(४) उत्तरगुण के अल्प, मूलगुण के अत्यल्प दोष- लघु मासिक में

इसके सिवाय समाचारी, विनय, अप्रमाद, सेवा स ब धी सामान्य उपेक्षा में भी लघु मासी या लघु चौमासी प्रायश्चित्त आता है। विशेष प्रमाद, विशेष समाचारी भ ग, विशेष अविनय आशातना आदि का गुरु मासी या गुरु चौमासी प्रायश्चित्त होता है। यह स्थूल अनुभव अनाग्रह भाव से ध्यान में रखना चाहिये। विशेष तो १९ उद्देशकों में शास्त्रकार ने जो स कलन दिया है उसे उसी अपेक्षा से समझने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

देवसिक प्रायश्चित्त :- (१) देवसिय प्रतिक्रमण में अतिचारों का

जो ***मिच्छामि दुक्कड़*** दिया जाता है उसमें भूल से कोई दोष प्रवृत्ति रूप के रह गये हो उसका एक उपवास। (२) कोई भी वस्तु रखते-उठाते, काया से प्रवृत्ति करते दिवसभर में जो अयतना हुई हो उसका एक उपवास। (३) प्रतिलेखन प्रमार्जन में विवेक नहीं रहा या नहीं हुआ उसका एक उपवास। (४) बादर पाँच स्थावर की अचानक विराधना हुई हो तो एक-एक उपवास। (५) अन तकाय या स मूर्च्छिम मनुष्य स ब धी विराधना हुई हो तो एक बेला।

वर्षा के ग दे पानी में चलना पड़ा हो तो एक उपवास। स्वच्छ पानी में चलना पड़ा तो ४ उपवास। लीलन फूलन युक्त पानी में चलना पड़े तो बेला प्रायश्चित्त लेना। यह दो चार दस कदम का प्रायश्चित्त समझना। ४०-५० कदम आदि चलना पड़े तो उपवास की जगह ४ उपवास और ४ उपवास की जगह बेला एव बेले की जगह तेला प्रायश्चित्त लेना।

अधिक ल बे समय तक दोष लगते रहने पर या विराधना की मात्रा बढ़ने पर चौला प चोला तप अथवा ३०-४०-५० उपवास की वृद्धि होती है।

विराधना के साथ गृहस्थ सेवा ड़ॉक्टर सेवा, आवागमन, ओपरेशन आदि शामिल हो जाने पर और अधिक समय दोष चलने पर १२० उपवास का प्रायश्चित्त आता है।

इन दोषों की सीमा व्यवहार से कुछ आगे बढ़ जाने पर या वाहन प्रयोग आदि दोष शामिल हो जाने पर उत्कृष्ट छः मासी(१८० उपवास) प्रायश्चित्त भी आता है।

योग्य प्रायश्चित्त दाता :- जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक बीच के प्रायश्चित्त में तप स ख्या बढ़ाने का समाचारी से अथवा बहुश्रुत की आज्ञा अनुभव से होता है। प्रायश्चित्त दाता का अनुभव प्रायश्चित्त देते, सुनते और औत्पातिकी बुद्धि आदि से चिंतन करने से बढ़ता जाता है। फिर वह प्रायश्चित्त विषय, व्यक्ति की परिस्थिति या क्षमता तथा द्रव्य क्षेत्र काल भाव के प्रस ग से प्रायश्चित्त तप का सही

निर्णय करने वाला होता है। बहुश्रुत योग्यता स पन्न निष्पक्ष दिल वालों के जिम्मे से सारे मध्यम तप प्रायश्चित्त विधान नियत होते हैं। यह अधिकार, योग्यता स्वतः अभ्यास चि तन अनुभव से प्राप्त होते हैंए गुरुगम से श्रवण, धारण, प्रश्न वार्ता से प्राप्त होते हैं। प्रायश्चित्त निर्णायक स्वय की योग्यता बढाने का एक सुगम मार्ग है- छेदसूत्रों की व्याख्याएँ, भाष्य चूर्णि, टीकाओं का बारम्बार अध्ययन मनन चिंतन करना ।

दीक्षा छेद प्रायश्चित्त का विधान :- तप प्रायश्चित्त उत्कृष्ट १८० उपवास तक होता है उसके आगे **दीक्षा छेद** का प्रायश्चित्त आता है इसमें दीक्षा पर्याय कम हो जाती है। (१) दोषों की स्थिति में अत्यधिक लोकापवाद लोक निंदा हो, दोष सेवन करने वाले के परिणाम स यम शिथिलता के एव स्वच्छ दता के हो तो छेद प्रायश्चित्त आता है। (२) मूलगुण के दोषों का बार बार सेवन करने से या अत्यधिक ल बे समय तक दोष सेवन करने से। (३) अकारण अपवाद सेवन करने से। (४) मूल गुण के दोष सेवन से अधिक लोक निंदा होने से। (५) अनुशासन के अत्यधिक भ ग करने से । (६) स्वच्छ दता या स्वच्छ द प्ररूपणा करने से। (७) आचार्य आदि की अत्यधिक अवगणना करने से; इत्यादि सभी परिस्थितियों में प्रायश्चित्त दाता को उचित लगे तो **छेद प्रायश्चित्त** दिया जा सकता है ।

दशा श्रुतस्क ध २५

'दशा कप्प ववहार' इन तीन छेद सूत्रों की रचना चौदहपूर्वी भद्रबाहु स्वामी ने की थी । उसमें यह दशा श्रुतस्क ध प्रथम सूत्र है। बाद में अज्ञात काल में अथवा तो देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय में निशीथ का आचारा ग से अलग स पादन होना मानना उचित होता है। तब से निशीथ सूत्र को तीन छेद सूत्रों के साथ गिनने से उसका प्रथम न बर होता है क्यों कि वह गणधर रचित का मात्र विभाजीकरण है। अतः चार छेद सूत्र की मान्यता हो जाने पर दशाश्रुत स्क ध सूत्र का दूसरा नम्बर हो जाता है। तीसरा 'कप्प' सूत्र आगे जाकर बृहत्कल्प सूत्र कहलाने लगा है । तब तीसरा छेद सूत्र बृहत्कल्प और चौथा छेद सूत्र व्यवहार सूत्र होता है। यह क्रम आगम पद्धति के चि तन से दिया गया है फिर भी कोई गहरे उतरे बिना प्रवाह मात्र से किसी को पहले या पीछे बोल या लिख दे तो कोई दोष पात्र का आक्षेप नहीं लगाया जा सकता। क्यों कि क्रम का आक्षेप महत्त्वपूर्ण नहीं है वह विषय तो गहरे अनुभव का प्रतीक मात्र है।

नाम विचारणा :- इस सूत्र के विविध नाम उपलब्ध है- (१) दशा (व्यवहार सूत्र में) (२) आयारदशा(स्थाना ग समवाया ग में) (३) दशाश्रुतस्क ध यह तीसरा नाम न दी सूत्र की आगम अध्ययन सूची के बाद कभी अज्ञात समय से प्रचलित हुआ है। न दी सूत्र की आगम सूची में 'दशाओ' इतना ही नाम है। न दी की रचना के बाद निर्युक्तिकार के समय तक भी 'दशा' नाम प्रचलित रहा है। अर्थात् उन्होंने भी निर्युक्ति की प्रथम गाथा में 'दसासु कप्पे य ववहारे' प्रयोग किया है।

दशा श्रुतस्क ध का अर्थ है- 'दश अध्ययनों का स्क ध-समूह रूप शास्त्र ।' यह शास्त्र एक श्रुतस्क ध रूप मुख्य विभाग है और दस इसके अध्ययन रूप विभाग है इन्हें 'दशा' स ज्ञा दी गई है । 'आचार दशा' भी स्थाना ग सूत्र में कहा गया है तो इसमें आचार स ब धी दशाओं का, अवस्थाओं का, जिसमें दोष युक्त और विशिष्ट गुण युक्त दोनों प्रकार की अवस्थाओं का अर्थात् आचार की मुख्यता

वाला स देश है। अतः इसका 'आचारदशा' यह नाम भी स्थाना ग प्रयुक्त उपयुक्त ही है। इतना सब होते हुए भी वर्तमान में हमारे ३२ आगमों में पूर्वाचार्यो ने इसका नाम दशा श्रुतस्क ध स्थिर किया है और वैसा बोलने की ही हमारी स्पष्ट पर परा चल रही है।

विभाग और विषय :– इस शास्त्र के दस अध्याय है उनका नाम पहली दशा, दूसरी दशा, तीसरी दशा यों यावत् दसवी दशा ऐसा नाम प्रचलित है।

इन दस दशाओं में- (१) २० असमाधि स्थान (२) २१ सबल दोष (३) ३३ आशातना (४) आचार्य की आठ स पदा, चार कर्तव्य तथा शिष्य के चार कर्तव्य (५) चित्तसमाधि के १० बोल (६) श्रावक की ११ पड़िमा (७) साधु की १२ पड़िमा (८) चातुर्मास के विशिष्ट कल्प(इस दशा का सही स्वरूप विकृत या विछिन्न सा हो गया है) (९) महामोह कर्मब ध के ३० बोल। (१०) श्रेणिक-चेलना के प्रास गिक कथन के साथ नव नियाणा वर्णन एव दसवा अनिदान स्वरूप।

रचना–व्याख्या :– यह सूत्र चौदहपूर्वी आचार्य भद्रबाहु द्वारा रचित है, ऐसा निर्विवाद माना जाता रहा है। इसकी व्याख्या पद्यमय देवर्धि गणि के बाद हुए द्वितीय भद्रबाहु स्वामी ने की है जिसका नाम **निर्युक्ति व्याख्या** रखा गया है। उसके बाद अगली शताब्दि में **भाष्यों** की रचना पद्यमय प्राकृत भाषामें निर्युक्ति के ऊपर की गई है। उसकी अगली शताब्दि में इस सूत्र के निर्युक्ति भाष्य के आधार पर चूर्णि व्याख्या की गई जो प्राकृत गद्यमय शैली मैं है। वही प्राचीनतम व्याख्या चूर्णि आज भाष्य, निर्युक्ति गाथाओं के साथ प्रकाशित मिलती है।

भाष्यकार और निर्युक्तिकार दोनों ने एक सरीखी पद्यमय व्याख्या पद्धति अपनाई थी वह सेकड़ों वर्षों के लेखन काल के व्यतीत होने पर आज पूर्ण स्वत त्र नहीं रह सकी अर्थात् भाष्य निर्युक्ति की अनेक गाथाऐं एक दूसरे में मिल चुकी है। उनका स्पष्ट अलगाव निश्चित करना आज अशक्य सा हो गया है। अतः हम दोनों व्याख्याओं को समान रूप से प्रमाणिक माने तो भी कोई एतराज नहीं हो सकता।

वर्तमान में यह शास्त्र हिंदी गुजराती विवेचन के साथ उपलब्ध होता है। कहीं से केवल मूलपाठ रूप में भी प्रकाशित मिलता है। टीका, टब्बा, विशिष्ट पद व्याख्या रूप में भी अलग-अलग छपा है। स्थानकवासी समाज में छेद सूत्र क ठस्थ करने की विशेष प्रणाली होने से मूल पाठ पॉकेट बुक के रूप में भी प्रकाशित हुए हैं। अ त में ब्यावर से मधुकर मुनि का या सुधर्म प्रचार म ड़ल का एव राजकोट से गुरुप्राण फाउन्ड़ेशन का हिंदी या गुजराती विवेचन स्पष्टीकरण सहित प्रकाशित उपलब्ध है। आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. ने इसकी व्याख्या संस्कृत टीका रूप में बनाई है, अनुवाद नहीं किया है। ३२ आगमों के सारा श और प्रश्नोत्तर अभियान में भी आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰सा॰ने हिंदी, गुजराती दोनों एडिशन तैयार कर इस शास्त्र को यथाशक्य प्रचारित प्रसारित किया गया है।

वर्तमान में यह शास्त्र छोटी-छोटी एक-एक विषय वाली दश दशाओं(अध्ययनों) वाला है। बड़ी दशाएँ उपासक, ज्ञाता आदि में है, ऐसा निर्युक्तिकार ने पाँचवी निर्युक्ति गाथा में ही निर्देश किया। अतः वर्तमान में इस शास्त्र का परिमाण ७५० श्लोक प्रमाण माना गया है। यह स्थानकवासी पर परा है जो शुद्ध एव तर्कस गत है। म दिरमार्गी समाज ने गलत इतिहास के चक्कर में श्लोक प्रमाण स ख्या को विकृत बना कर अधिक मानने की(२१०० श्लोक मानने की) प्रथा बना ली है। जिसका स्पष्टीकरण अन्य आगम परिचय में किया जा चुका है। इस सूत्र पर मणिविजयजी गणी ग्रंथमाला भावनगर से चूर्णि व्याख्या वि.सं. २०११ में प्रकाशित हुई है।

बृहत्कल्प सूत्र २६

यह सूत्र आगम में 'कप्पो' कप्प' शब्द से प्रचलित है जिसका अर्थ है कल्प सूत्र। यह भद्रबाहु स्वामी चौदह पूर्वी का बनाया हुआ द्वितीय छेद शास्त्र है। न दी सूत्र में भी इसका परिचय 'कप्पो' शब्द से ही आगम सूची में कालिक सूत्रों में दिया गया है। कि तु न दी में उत्कालिक सूत्र की सूचि में चुल्लकल्प सूत्र और महाकल्प सूत्र नामक दो सूत्र और हैं। इस तरह न दी के कालिक उत्कालिक के मिलकर 'कल्प' साम्यता वाले तीन सूत्र हो जाते हैं- कप्पो, चूल्लकप्पसुय , महाकप्पसुय , एक सूत्र ऐसा ही सदृश और भी उत्कालिक सूत्र में है यथा- कप्पाकप्पिये(कल्प्या कल्प्य सूत्र) यों उत्कालिक में ३ और कालिक में एक कुल चार सूत्र कल्प नाम की सदृशता वाले है फिर भी कालिक का 'कप्पो' अपने आप में पूर्ण स्वत त्र है। क्यों कि उत्कालिक तीनों के साथ **महा, चुल्ल** आदि अधिक शब्द लगे हैं।

इस तरह न दी में चार नाम सदृशता के निकट होते हुए भी न दी कर्ता ने प्रस्तुत छेद सूत्र को 'कप्पो' नाम से ही कालिक सूत्र सूचि में कहा है जिससे इसकी स्वत त्रता में असम जस पैदा नहीं होती है क्यों कि शेष तीन सदृश होते हुए भी उत्कालिक है और उच्चारण में भिन्नता भी है।

अतः न दी रचना तक प्रस्तुत सूत्र का नाम **कल्प सूत्र** ही रहा है इसमें कोई स देह नहीं है। आगे भाष्य चूर्णि टीका व्याख्या काल में भी इस शास्त्र के लिये कप्पो शब्द सूचित किया जाता रहा है । अत: विक्रम की १२वीं, १३वीं शताब्दि तक भी इसका नाम कल्पसूत्र रहा है यह टीका व्याख्याओं से स्पष्ट होता है।

१२-१३ वीं शताब्दि के बाद जब देरावासी लोगों ने चुल्ल कल्प सूत्र और महाकल्प सूत्र और दशाश्रुतस्क ध का आठवाँ अध्ययन 'कप्पो' जिसका नाम है उसके साथ जोड़ जोड़ाकर एक नया पर्यूषणा-कल्प सूत्र जो पर्युषण में आम जनता को सुनाने के उद्देश्य से बनाया और उसे कल्पसूत्र, पर्युषणा कल्पसूत्र आदि कहा जाने लगा, तब अज्ञात बहुश्रुतों ने इस प्राचीन आगम सम्मत कप्पो(कल्प सूत्र) नाम

वाले शास्त्र को नया नाम बृहत्कल्प सूत्र प्रसिद्ध-प्रचलित कर दिया है । जो आज करीब ७०० वर्ष प्राचीन तो है ही) । इस प्रकार कुल पाँच सूत्र ऐसे है जिसके नाम में कल्प शब्द है। देरावासी का बनाया पर्युषणा कल्प सूत्र का नाम न दी सूची में भी नहीं है और ३२ तथा ४५ आगम की स ख्या में भी उसका नाम नहीं है। फिर भी झूठा महत्त्व देने के लिये वे लोग उसे भद्रबाहु १४ पूर्वी का बनाया और दशाश्रुतस्क ध का अध्ययन कह कर स तोष करते है । कि तु न दी के ७३, ग्र थों के प्राचीन ८४, और पर परा मान्य ४५-३२ आगम की किसी भी सूची में उसका नाम नहीं बता सकते। अभी अभी ८४ आगम की गिनती में ४६वाँ आगम नाम पर्युषण कल्पसूत्र लिखने में आने लगा है ।

निर्युक्तिकार भद्रबाहु स्वामी अपनी निर्युक्तिगाथा-५ में लिखते है कि दशाश्रुतस्क ध में १० छोटी छोटी दशाएँ है जिनमें प्राय: एक-एक विषय है। देरावासियों का बनाया कल्प सूत्र(जिसे आठवीं दशा कहा जाता है ।) तो अनेक विषय चर्चाओं का भ ड़ार है एव १२०० श्लोक प्रमाण अकेला ही है। तो जिसे निर्युक्तिकार छोटी छोटी दशाएँ कहे उसमें ये लोग झूठमूठ की १२०० श्लोक प्रमाण का पर्युषणा कल्पसूत्र को घुसाकर स तोष मानते है। और खोटी प्ररूपणा करते है कि पर्युषणा कल्प सूत्र १२०० श्लोक प्रमाण स पूर्ण १४ पूर्वी भद्रबाहु की रचना है इसलिये यह प्रामाणिक शास्त्र है। जब कि उसमें अनेक बेतुकी और तर्क हीन बाते है जो भद्रबाहुस्वामी को और उनकी रचना तथा योग्यता को भी बदनाम करे जैसी है फिर भी अ धभक्ति से संपूर्ण देरावासी समाज एकमत से ऐसी खोटी मान्यता एव प्ररूपणा में फँसा रहता है जिसके देखा-देखी कुछ भोले स्थानकवासी भी उसकी श्रद्धा में लग जाते है।

स क्षेप में हमारे प्रस्तुत कल्प सूत्र को बृहत्कल्प सूत्र नाम देने में प्राचीनतम तथ्य का स्पष्टीकरण किया गया है आशा है पाठक सही बात समझ पायेंगे।

विषय विभाग :- बृहत्कल्प सूत्र के ६ उद्देशक है प्रत्येक उद्देशक में अलग-अलग स ख्या में सूत्र हैं। यह छेद सूत्र है। इसमें छेदोपस्थानीय

चारित्र वालों के ज्ञान दर्शन चारित्र स ब धी कल्पाकल्प का उत्सर्ग तथा अपवाद परिस्थिति के नियमोपनियम मर्यादाओं का निरूपण है।

बृहत्कल्प-व्यवहार सूत्र का ऐतिहासिक परिचय :– इस सूत्र द्वय के रचनाकार(निर्यूहण करने वाले) आर्य भद्रबाहु स्वामी है जो चौदह पूर्वधारी हुए हैं। इन सूत्रों के निर्युक्तिकार द्वितीय भद्रबाहु स्वामी वराहमिहिर के भाई वीर निर्वाण ग्यारहवीं सदी में अर्थात् विक्रम की छट्ठी सदी(५६२) में हुए है। भाष्यकार आचार्य सिद्धसेन गणि हुए हैं जो भाष्यकार जिन भद्रगणि के निकट के ही सम्बन्धी अर्थात् शिष्य आदि थे। इन सूत्रों पर आचार्य मलयगिरि द्वारा की गई 'टीका' नामक व्याख्या है। बृहत्कल्प सूत्र पर श्री मलयगिरी की टीका अपूर्ण है जिसे आचार्य श्री क्षेमकीर्ति ने बड़ी योग्यता के साथ पूर्ण की है।

इसके निर्युक्ति एव भाष्यकार का समय निशीथ सूत्र के समान जानना। दोनों टीकाकारों का समय विक्रम की बारहवीं शताब्दी का है। बृहत्कल्प सूत्र का प्राचीन नाम सूत्रों में एव ग्र थों में 'कप्पसुत्त' ही रहा है। बृहत्कल्प भाष्य टीका का प्रकाशन भावनगर से हुआ है। जिसका स पादन कार्य मुनि श्री चतुर्विजय जी एव श्री पुण्यविजयजी गुरुशिष्य ने किया है। व्यवहार भाष्य टीका का प्रकाशन अहमदाबाद से हुआ है जिसका स पादन मुनि श्री माणेक मुनि ने किया है। इन चारों छेद सूत्रों का हिन्दी विवेचन युक्त प्रकाशन 'आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर' से हुआ है। उसके पूर्व आज तक इन छेद सूत्रों के हिन्दी विवेचन का प्रकाशन कहीं से भी नहीं किया गया है।

परिचय तालिका :–

सूत्र	सूत्र कर्ता	निर्युक्ति कर्ता	निर्युक्ति कर्ता का समय
निशीथ सूत्र	गणधर सुधर्मा (आचारा ग का अध्ययन होने से)	द्वितीय भद्रबाहु वराहमिहिर के भाई	देवर्धिगणि के बाद वीर निर्वाण ग्यारहवीं शताब्दि विक्रम की छट्ठी शताब्दि (५६२)
तीन छेद सूत्र	चौदह पूर्वी भद्र बाहुस्वामी	द्वितीय भद्रबाहु वराहमिहिर के भाई	देवर्धिगणी के बाद वीर निर्वाण ग्यारहवीं शताब्दि विक्रम की छट्ठी शताब्दि (५६२)

	भाष्यकर्ता	भाष्यकर्ता का काल
निशीथ सूत्र	आचार्य सिद्धसेन गणि	जिनभद्र गणि के शिष्य अथवा श्रद्धावान स्तुति कर्ता, विक्रम की सातवीं शताब्दि के, वीर निर्माण १२ वीं शताब्दि ।
बृहत्कल्प सूत्र	आचार्य सिद्धसेन गणि	
व्यवहार सूत्र	आचार्य सिद्धसेन गणि	

	चूर्णिकर्ता	चूर्णिकर्ता का काल
निशीथ सूत्र	जिनदास गणि महत्तर	विक्रम की आठवी शताब्दि
दशाश्रुतस्क ध सूत्र	जिनदास गणि महत्तर	वीर निर्माण की १३ वीं शताब्दि

	टीका कर्ता	टीका कर्ता का समय
बृहत्कल्प सूत्र	आचार्य मलयगिरी एव आचार्य क्षेमकीर्ति	विक्रम की तेरहवीं शताब्दि
व्यवहार सूत्र	मलयगिरि आचार्य	विक्रम की तेरहवीं शताब्दि

इस सूत्र का परिमाण ४७३ श्लोक प्रमाण है अर्थात् यह कद में बहुत छोटा सूत्र है तथा भाव और विवेचन में अत्य त विशाल शास्त्र है। जिसकी प्रकाशित टीका के ६ भाग करीब ३००० पृष्ठ में है। जो आगम दिवाकर प. पू. श्री पुण्य विजयजी म. सा. द्वारा स पादित एव उनकी प्रेरणा से सजिल्द प्रकाशित उपलब्ध है। जिसकी प्रस्तावना भूमिका आदि में उन्होंने बहुत ही महत्त्व पूर्ण चि तन प्रस्तुत किया गया है जो इतिहास के शोधार्थी विद्यार्थियों के लिये अत्य त उपयोगी सिद्ध होता है। वास्तव में वे छहों भाग बहुत ही मननीय एव अध्ययनीय है।

यद्यपि छेद सूत्र और उनका अनुवाद गोपनीय माना जाता रहा है, फिर भी प्रकाशन युग में धूलिया से अमोलखऋषिजी म. सा. ने हिंदी में, गुजरात से जीवराज घेलाभाई शाह ने गुजराती में छेदसूत्र ५० से भी अधिक वर्ष पूर्व छपवा दिये थे। आज तो छेद सूत्र ब्यावर और राजकोट से प्रकाशित विवेचन युक्त मिलते हैं। आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰सा॰द्वारा स पादित हिंदी गुजराती दोनों भाषाओं में सारा श अनेक चर्चाओं, निब धों के साथ छपे हैं। तथा ३२ आगम प्रश्नोत्तर शैली में हिंदी गुजराती दोनों भाषाओं में प्रकाशन १०-१० भागों में हुआ है। जिसमें नौवें भाग में चारों छेद सूत्रों के प्रश्नोत्तर तथा अनेकों अनुभव पूर्ण निब ध भी है।

****

व्यवहार सूत्र २७

चार छेद सूत्र के क्रम में यह अ तिम चौथा सूत्र है। प्रार भ में इसमें प्रायश्चित्त के कुछ सूत्र निशीथ उद्देशक २० में से यहाँ पुनरावर्तन है। आगे सभी व्यवहार स ब धी अर्थात् स घ व्यवस्था स ब धी साधु-साध्वी की स भाल, सेवा, स्वाध्याय आदि स ब धी, उत्सर्ग अपवाद स ब धी, प्रायश्चित्त स ब धी विषयों का निरूपण है। रचनाकार एवं व्याख्याकार बृहत्कल्प के समान ही है। इसका टीका युक्त प्रकाशन अहमदाबाद से हुआ है। जब कि बृहत्कल्प का प्रकाशन भावनगर से हुआ है।

हिन्दी विवेचन में ब्यावर मधुकर मुनि के स पादन का त्रीणि छेद सूत्राणि श्रेष्ठ हैं और गुजराती में गुरुप्राण फाउन्ड़ेशन, राजकोट से भी न अति स क्षिप्त, न अति विस्तृत विवेचन प्रकाशित हुआ है। सारा श प्रावधान में इन चारों छेद सूत्रों की अलग-अलग छोटी पुस्तकें भी हिंदी में छपी है और ये चारों भाग तथा परिशिष्ट के २ भाग सहित ६ पुस्तकें एक जिल्द में भी छपी है। गुजराती में भी सारा श छपा है। प्रश्नोत्तर प्रावधान में भी ये चारों छेद सूत्र हिन्दी, गुजराती में भाग-९ के रूप में प्रकाशित हुए हैं ।

यह व्यवहार सूत्र परिमाण की अपेक्षा ८३५ श्लोक का माना गया है। इसके १० अध्ययन है उन्हें **उद्देशक** कहा गया है। सुधर्मप्रचार म ड़ल आदि अन्य भी अनेक जगहों से यह छेदसूत्र अर्थ, विवेचन एवं मूलगुटकों के रूप में प्रकाशित हुआ है ।

चार मूलसूत्र का परिचय

न दी सूत्र की आगम सूची में अ गबाह्य सूत्रों में इन सूत्रों की गणना है जिसमें एक सूत्र कालिक में और शेष तीन सूत्र उत्कालिक में लिये गये हैं। वे चार सूत्र इस प्रकार है- (१) उत्तराध्ययन सूत्र (२) दशवैकालिक सूत्र (३) न दी सूत्र (४) अनुयोगद्वार सूत्र। जिसमें उत्तराध्ययन सूत्र कालिक सूत्र है। दशवैकालिक, न दी, अनुयोग उत्कालिक सूत्र है ।

आवश्यक सूत्र की विशेषता :- आवश्यक सूत्र नो कालिक नो उत्कालिक अ गबाह्य शास्त्र कहा गया है अर्थात् जिसके पढ़ने, बोलने में कोई काल का(समय का) प्रतिब ध नहीं होता है। सज्झाय-असज्झाय का नियम उसमें नहीं लगता है । जो गणधर रचित होते हुए भी २४ घ टों में कभी भी बोला जा सकता है, साधु-साध्वी के लिये यह यथासमय अवश्य करणीय होता है। इसलिये इसे आवश्यक सूत्र नाम दिया गया है।

मूलसूत्र नाम :- जिन शासन का वीतराग धर्म विनय मूल धर्म है ऐसा भगवती सूत्र में कहा गया है। प्रस्तुत इन चारों सूत्रों में विनय मूल धर्म को प्रधानता दी गई है। उत्तराध्ययन में प्रथम अध्ययन ही विनय का है। दशवैकालिक में प्रार भ में धर्मी व्यक्ति नमस्करणीय कहे हैं और न दी सूत्र में विनय मूलक स्तुति प्रार भ में है। अनुयोगद्वार सूत्र में विनय के मूलक ज्ञान का प्रथम कथन है।

इस प्रकार चारों सूत्रों में धर्म के मौलिक गुण विनय-ज्ञान की मुख्यता से वर्णन प्रार भ होता है। आगमों में इन सूत्रों को कहीं भी मूलसूत्र नहीं कहा गया है पर तु अपने गुण एव महत्ता से ये शास्त्र अज्ञातकाल से **मूल सूत्र** के नाम से प्रसिद्ध है और यह बात सर्व मान्य है।

उत्तराध्ययन सूत्र २८

इसमें श्रेष्ठ श्रेष्ठतम उपदेशी, आचारप्रधान, स यमप्रधान, वैराग्य प्रधान एव तत्त्वप्रधान अध्ययन होने से इसका नाम बहुश्रुत आचार्यों ने उत्तराध्ययन सूत्र रखा है। इस शास्त्र को जैन जगत में भगवान महावीर स्वामी की अ तिमवाणी माना जाता है। जिसका मौलिक आधार यह है कि इन अध्ययनों का प्राचीन नाम **महावीर भासियाइ** था। उसी के साथ **अ तिम देशना** श्रद्धा से जुड़ जाने से भगवान की अ तिम वाणी अर्थात् मोक्ष जाते समय फरमाये अध्ययन कहलाये जाने लगे।

मौलिक इतिहास :- वास्तव में प्रश्नव्याकरण सूत्र गणधर रचित है। उसी में एक अध्याय ऋषिभाषित, एक महावीरभाषित और एक आचार्यभाषित भी था तथा अनेक विद्याएँ भी प्रश्नव्याकरण सूत्र में थी। देवर्धिगणि आचार्य के शास्त्रलेखन समय में अनेक विद्याओं को भविष्य में हानिकारक समझ कर निकालना उपयुक्त समझा गया और अवशेष प्रश्नव्याकरण सूत्र का विभाजीकरण हो गया।

ठाणा ग, समवाया ग, न दी तीनों सूत्रों में पुराने प्रश्नव्याकरण सूत्र का परिचय मिलता है। तदनुसार **महावीर भाषित** और **ऋषि भाषित** अध्ययन उसमें थे। उन्हें स्वत त्र सूत्र रूप देकर न दी में नाम भी रखा गया है। **ऋषिभाषित के ४५ अध्याय थे** वह भी आज उपलब्ध है और महावीर भाषित के ३६ अध्याय थे वे आज उत्तराध्ययन के नाम से उपलब्ध है। अतः आज का हमारा उत्तराध्ययन सूत्र गणधर रचित आगम में से उद्धृत सूत्र है, इसीलिये न दी में कालिक सूत्र की सूचि में कहा गया है।

अ तिम देशना का खुलाशा :- समवाया ग सूत्र में ऐसा पाठ उपलब्ध है कि भगवान ने अ तिम रात्रि में ५५ सुखविपाक के और ५५ दुःखविपाक के अध्ययनों का निरूपण करके सिद्ध बुद्ध मुक्त हुए। छत्तीसवें समवाय में उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययनों के नाम गिनाये गये है पर तु मोक्ष जाते समय फरमाने का वहाँ कुछ भी कथन नहीं है। ग्र थों, व्याख्याओं में ऐसा वर्णन आता है कि भगवान ने मोक्ष जाते

समय ३६ अध्ययन फरमाये और सेंतीसवें अध्ययन की शरूआत करते हुए मोक्ष पधारे। उक्त आगम प्रमाण देखते हुए यह ग्र थकारों की कल्पना या भ्रम मात्र है ।

व्याख्या साहित्य :- सर्व प्रथम इस सूत्र पर आचार्य भद्रबाहु स्वामी (द्वितीय)ने **निर्युक्ति** व्याख्या की है। उसके बाद निर्युक्ति पर **भाष्य व्याख्या** की रचना भी हुई पर तु दोनों व्याख्या प्राकृत पद्यमय होने से आज वह व्याख्या निर्युक्ति के नाम से ही उपलब्ध है। प्राकृत चूर्णि, स स्कृत टीका, अवचूरी आदि अनेक व्याख्याएँ इस सूत्र पर बनाई गई है पर तु प्राचीन टीका में शा त्याचार्य वृत्ति प्रसिद्ध रूप में उपलब्ध है। उसके बाद भी अनेक आचार्यों, विद्वानों ने इस सूत्र पर भिन्न भिन्न तरह से स स्कृत हिंदी गुजराती व्याख्याएँ अनुवाद विवेचन स पादित किये हैं जो आज अनेक रूप में मुद्रित उपलब्ध है।

स्थानकवासी पर परा में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी का, आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. का, युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा. का, गुजरात से श्री प्राण फाउन्डेशन राजकोट का एव राजस्थान से सुधर्म प्रचार म डल वगैरह का उत्तराध्ययन मुख्य रूप से प्रसिद्धि प्राप्त है।आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित आगम सारा श एव आगम प्रश्नोत्तर हिंदी तथा गुजराती सरल-सुगम भाषा में प्रकाशित हैं।यह बहु प्रचलित शास्त्र है। अनेक साधु-साध्वीजी इसे क ठस्थ करके सदा स्वाध्याय करते है। यह रसप्रद, रोचक एव भावभरा शास्त्र है। अतः इसकी अनगिनत प्रतियें एव मुद्रण समाज में मिलते हैं। प्रवचन में भी साधु-साध्वी इस शास्त्र का बहुत उपयोग करते हैं और यों भी यह शास्त्र विविध प्रकार के उपदेशों से भरा सूत्र है। ३६ इसके अध्ययन है और कुल २१०० श्लोक प्रमाण यह शास्त्र माना जाता है, स्थूल रूप में २००० श्लोक प्रमाण भी कह दिया जाता है । इसकी स्वाध्याय से एक उपवास का प्रायश्चित्त उतरता है ऐसा माना जाता है।

विषय परिचय :- इसके ३६ अध्ययनों में से १३ अध्ययन धर्म

कथात्मक है, यथा- ७,८,९,१२,१३, १४,१८,१९,२०,२१,२२,२५,२७। आठ अध्ययन उपदेशात्मक है, यथा- १,३,४,५,६,१०,२३,३२ । आठ आचारात्मक है, यथा- २,११,१५,१६,१७,२४,२६,३५ । सात सैद्धा तिक-तात्विक है, यथा- २८,२९,३०, ३१,३३,३४,३६ । इन अध्ययनों का स क्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

(१) प्रथम अध्ययन- इस अध्ययन का नाम **विनयश्रुत** है । १२ प्रकार के तप में विनय आभ्य तर तप है। औपपातिक सूत्र में विनय के ज्ञान, दर्शन आदि ७ प्रकार कहे हैं। दशवैकालिक सूत्र में विनय समाधि चार प्रकार की कही है। इस प्रस्तुत अध्ययन में विनय के अनेक रूपों को लक्ष्य में रखकर ही विषय का स कलन, स पादन किया गया है।

(२) परीषह- तप स यम का पालन करते हुए जो मन वचन एव काया के प्रतिकूल प्रस ग उत्पन्न होते हैं या स यम के प्रतिकूल प्रस ग उपस्थित होते हैं उन्हें परीषह कहा गया है। परीषह की उन परिस्थितियों को धैर्य से एव उत्साह से पार कर लेना तथा स यम तप की मर्यादा से विचलित नहीं होना "परीषह को जीतना" कहा गया है। इस अध्ययन में भिक्षु के २२ परीषहों को बताकर उन्हें जीतने की शिक्षा दी गई है।

(३) चाउर गीय- स सार की विविध योनियों में भवभ्रमण करते हुए प्राणियों के मोक्ष प्राप्त करने के चार अ गो की दुर्लभता समझाई है- (१) मानवभव (२) धर्मश्रवण (३) धर्मश्रद्धा (४) स यम में पुरुषार्थ।

(४) अस स्कृत- इस अध्ययन में मानव जीवन की क्षणभ गुरता बताकर त्याग, वैराग्य एव स यम आराधना का उपदेश दिया गया है।

(५) सकाम अकाम मरण- इस अध्ययन में बालमरण और प ड़ितमरण के विषय में समझाते हुए बताया गया है कि विषयासक्त जीवों का बालमरण होता है एव धर्माचरण करने वाले श्रमण, श्रमणोपासकों में कईयों का प ड़ितमरण होता है।

(६) क्षुल्लक निर्ग्रंथीय- इस अध्ययन के प्रार भ में अज्ञान को दु:ख का कारण बताकर ज्ञान का महात्म्य दर्शाया है। साथ ही कोरा ज्ञान अर्थात् क्रिया बिना का ज्ञान भी त्राण भूत नहीं होता है, यह कह कर स यम-निर्ग्रंथ अवस्था का महत्त्व सिद्ध किया है।

(७) एलक(उरभ्रीय)- बकरे के दृष्टा त द्वारा स सारासक्त जीवों की दुर्दशा का चित्रण करके धर्माचरण करने वाले अनासक्त जीवों की शुभ अवस्था दर्शाई है।

(८) कापिलीय- स यम स ब धी विविध उपदेश देते हुए अ त में कपिल मुनि के उपदेश का स केत है। जिसमें स्त्रियों के प्रति विशेष विरक्ति के भाव सूचित किये हैं।

(९) नमिप्रव्रज्या- नमि राजर्षि की दीक्षा तथा तत्स ब धी शक्रेन्द्र और दीक्षार्थी नमिराज का स वाद प्रस्तुत किया है।

(१०) द्रुम पत्रक- वृक्ष के पीले पत्ते के दृष्टा त से मनुष्य भव की अस्थिरता बताकर उपदेश दिया गया है । तथा ***समय गोयम मा पमायए*** इस वाक्य को प्रत्येक गाथाओं के अ त में दुहराया गया है।

(११) बहुश्रुत माहात्म्य- ज्ञान, ज्ञानी और विनयवान का स्वरूप बताकर बहुश्रुत श्रमण का अनेक महत्त्वशील उपमाओं द्वारा वर्णन किया है।

(१२) हरिकेशीय- चा ड़ाल कुल में जन्मे हरिकेशी मुनि के तप स यम का प्रभाव दर्शाकर सच्चे ब्राह्मण का स्वरूप एव यज्ञ का स्वरूप स्पष्ट किया गया है।

(१३) चित्त स भूतीय- इस अध्ययन में चित्त मुनि और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का इस भव तथा पूर्व भव का स वाद उपस्थित किया है, दोनों का अनेक भवों का स ब ध था। पूर्व भव में निदान नियाणा करने से ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती इस भव में दीक्षा नहीं ले सका और मर कर नरक में गया और चित्तमुनि मोक्षाधिकारी बन गये ।

(१४) इषुकारीय- इस अध्ययन में इक्षुकार नगर के ६ जीवों के वैराग्यप्रद जीवन का उल्लेख किया गया है। राजा-रानी, पुरोहित उसकी पत्नि तथा दोनों पुत्र। एक दूसरे के निमित्त से प्रतिबोध पाकर छहों जीवों ने स यम ग्रहण कर आत्मकल्याण कर लिया ।

(१५) सभिक्षु-इसमें "वह भिक्षु कहलाता है" इस वाक्य के प्रयोग से भिक्षु के अनेकानेक सद्गुणों का गाथाओं में स ग्रह किया है ।

(१६) ब्रह्मचर्य समाधि स्थान- ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिये अनेक

स्थान बताये है, उसमें नव वाड़ प्रसिद्ध है। प्रस्तुत में उन नव स्थानों में एक बोल अधिक मिलाकर १० समाधिस्थान रूप में समझाये हैं। पहले गद्य रूप में समझाकर फिर पुनः वही भाव पद्य में भी दर्शाया गया है।

(१७) पापश्रमणीय– स यम की विधियों का यथावत् पालन नहीं करने वाले श्रमण को यहाँ प्रत्येक गाथा में **पापी श्रमण** बताया है और सुश्रमण बनने की प्रेरणा दी गई है।

(१८) स जय– इस अध्ययन में शिकार के निमित्त से स यति राजा की गर्दभाली अणगार के पास बोध पाकर दीक्षा लेने का वर्णन है। फिर क्षत्रिय राजर्षि से वार्तालाप में अनेक मोक्षगामी राजाओं का उल्लेख है।

(१९) मृगापुत्रीय– मृगापुत्र को अचानक मुनिदर्शन से जातिस्मरण ज्ञान हो जाने से नरक आदि भवों को देखकर दीक्षा के लिये माता-पिता के साथ ल बा स वाद है। जो अत्य त वैराग्यप्रद एव मार्मिक है, साथ ही एकाकीचर्या का मृगचर्या की उपमायुक्त वर्णन है।

(२०) महानिर्ग्रंथीय– इसमें अनाथीमुनि और श्रेणिक राजा का स वाद है, जिसमें मुनि के दीक्षा लेने का कारण स्पष्ट किया है। साथ ही स यम लेने के बाद जिनाज्ञा विपरीत आचरण करने वाले को भी अनाथ कहा गया है अर्थात् वह भी आत्मा की दुर्गति से रक्षा नहीं कर सकता है।

(२१) समुद्रपाल– वणिकपुत्र समुद्रपाल को एक चोर को वधस्थान पर ले जाते देखकर वैराग्य उत्पन्न हुआ। दीक्षा लेकर आत्मकल्याण किया। कथानक के साथ आगे की गाथाओं में स यम आचारों का वर्णन भी किया गया है।

(२२) रथनेमि– इसमें अरिष्टनेमिनाथ भगवान का, राजीमति का एव रथनेमि का स क्षिप्त में जीवन चरित्र अ कित किया गया है। जिसमें बारात का वापिस लौटना, रथनेमि का स यम से विचलित होना और राजीमती के उपदेश से पुनः शीघ्र स भल जाने का वर्णन है। तीनों की मुक्ति तक का वर्णन है।

(२३) केशी गौतमीय– इसमें केशीस्वामी और गौतमस्वामी का

श्रावस्तीनगरी में सम्मिलन एव प्रश्नचर्चा का विस्तृत वर्णन है। अत में केशीस्वामी अपने शिष्य समुदाय सहित भगवान महावीर के शासन में समर्पित हो जाते हैं। इस अध्ययन के वर्णन से यह भी सिद्ध होता है कि गौतम स्वामी भगवान से अलग भी विचरण करते थे।

(२४) प्रवचन माता– इसमें ५ समिति एव ३ गुप्ति का अर्थात् प्रमुख साध्वाचार का वर्णन है। इन्हें **अष्ट प्रवचन माता** स ज्ञा दी गई है।

(२५) जयघोष-विजयघोष– इसमें जयघोष मुनि का अपने भाई विजयघोष ब्राह्मण के साथ आहार नहीं देने के निमित्त से सैद्धा तिक स वाद वर्णित है। फिर विजयघोष की दीक्षा तथा दोनों की मुक्ति का वर्णन है।

(२६) समाचारी– इसमें श्रमणों की दस प्रकार की समाचारी का तथा दिवस रात्रि की क्रमिक आवश्यक चर्या का वर्णन है।

(२७) खलु कीय– इसमें गर्गाचार्य एव उनके अविनीत शिष्यों का स्पष्ट चित्रण दिया गया है। ***यों इस अध्ययन के द्वारा अपने अशुभ कर्म, अनादेय नाम कर्म आदि कारणों से एक आचार्य का सपरिस्थितिक एकल विहारचर्या के द्वारा भगवान महावीर के शासन में स यम आराधना करने का वर्णन है। इस सूत्र की व्याख्या में उन एकलविहारी आचार्य को उसी भव में मोक्ष जाने का कथन भी है। इस प्रकार एकल विहारस ब धी एका तिक एव खोटी तथा उत्सूत्र प्ररूपणा करने वालों को करारी चोट इस अध्ययन में पहुँचाइ गई है, फिर भी दुराग्रह एव अपने को प डित मानने वालों को सही अकल, समझ आने वाली नहीं है।***

(२८) मोक्षमार्ग– इसमें ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप धर्मरूप चतुर्विध मोक्षमार्ग का स्वरूप स्पष्ट किया गया है।

(२९) सम्यक् पराक्रम– इसमें ७३ प्रश्नोत्तर के माध्यम से मोक्षमार्ग में सम्यक् पुरुषार्थ का बोध दिया गया है।

(३०) तपोमार्ग– इसमें तप का स्वरूप बताकर, उसके भेद-प्रभेदों का वर्णन कर तपाचरण की प्रेरणा दी गई है।

(३१) चरणविधि– इसमें स यम स ब धी १ से ३३ बोलों का स क्षिप्त

कथन किया है । जिसमें कई ज्ञेय है कई हेय है और कई उपादेय हैं।

(३२) प्रमाद स्थानीय– इस अध्ययन में ब्रह्मचर्य के प्रमाद स्थानों का निरूपण करके साधक को उनसे सुरक्षित रहने के लिये सावधान किया है। उसके बाद पाँच इन्द्रिय विषय और मनोविकारों का सा गोपांग निरूपण करके उनसे मुक्त रहने की प्रेरणा की गई है।

(३३) कर्मप्रकृति– इसमें आठ कर्म प्रकृति स ब धी निरूपण भेद-प्रभेद के साथ किया गया है तथा आठों कर्म की ब धस्थिति दर्शाई गई है।

(३४) लेश्या– इसमें छ लेश्या स ब धी विविध वर्णन है। जिसमें उनके वर्ण, ग ध, रस, स्पर्श, परिणाम, स्थान, स्थिति, गति एव आयुब ध आदि का वर्णन है जो प्रज्ञापना सूत्र के १७वें पद में भी विस्तार से है । विशेष में यहाँ ६ भाव लेश्याओं के लक्षण स्पष्ट किये हैं जिसमें उन उन लेश्या वाले की प्रकृति, स्वभाव एव गुण अवगुणों का यथार्थ स्पष्टीकरण किया गया है।

(३५) अणगार– इसमें मुनि धर्म के यथार्थ पालन की प्रेरणा करते हुए कुछ विशेष सावधानियाँ दर्शाई है।

(३६) जीवाजीव विभक्ति– इसमें प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद के अनुरूप जीव और अजीव के भेद-प्रभेद विस्तार से कहे हैं। अत में प ड़ितमरण रूप स लेखना (स थारा) की विधि तपस्या के क्रम के साथ दर्शाई है।

इस प्रकार इन ३६ अध्ययनों में धर्मकथा, उपदेश, तत्त्व, सिद्धा त, वाद-विवाद, दीक्षा स ब धी स वाद, विनय, स यम, तप एव मोक्षमार्ग आदि विविध विषयों का समावेश किया गया है।

दशवैकालिक सूत्र २९

यह सूत्र पूर्णतया साध्वाचार से स ब धित है। न दी सूत्र की आगम सूचि में इसका नाम अ गबाह्य उत्कालिक सूत्रों में है। इसमें **दस** अध्ययन है और उत्कालिक शब्द का पर्याय शब्द **वैकालिक** होता है, अत: इस शास्त्र का नाम **दशवैकालिक** रखा गया है। अत में दो चूलिका है उसे अध्ययन स ख्या में नहीं गिना गया है। यह शास्त्र पद्यमय है किन्तु चौथे और नौवें अध्ययन में कुछ गद्य पाठ भी है। पाँचवें अध्ययन में **दो** और नौवें अध्ययन में **चार** उद्देशक है। शेष किसी में भी उद्देशक नहीं है।

चूलिकाओं की मौलिकता :- चूलिका पर्वत पर भी होती है किन्तु पर्वत की ऊँचाई में उसकी गिनती नहीं कही जाती है। जैसे कि वैताढ्य पर्वत २५ योजन कहा है, मेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा कहा गया है, जिसमें कूट और चूलिका पर्वत की ऊँचाई में नहीं गिने हैं। इसी प्रकार दशवैकालिक सूत्र के १० अध्ययन गिने गये हैं। चूलिका दो अलग है, फिर भी कूट और चूलिका भी पर्वत का अ ग ही होते हैं। वैसे ही चूलिका सहित ही दशवैकालिक की रचना मौलिक ही है। महाविदेहक्षेत्र से चूलिका लाने का ऐतिहासिक कथन कल्पित मात्र है। क्यों कि दशवैकालिक के चूर्णिकार श्री अगस्त्यसि ह सूरि ने चूलिका शय्य भवाचार्य कृत स्वीकारी है। महाविदेह से लाने की बात उन्होंने नहीं कही है। अगस्त्य सिंह सूरि वीरनिर्वाण की तेरहवी शताब्दि में हुए है, चूलिका महाविदेह से लाने की कल्पना उनके बहुत बाद के विद्वानों ने ग्र थों में खोटी घटनाएँ घड़कर लिखना शुरु किया है। वास्तव में महाविदेह क्षेत्र में किसी के जाने की बातें एक जमाने में खोटी घड़ी जाने लगी है । आज की सदी में दादा भगवान के नाम से उनके भक्तों ने भी ऐसी खोटी और बेतुकी दलील चालू करी है। किन्तु ऐसी बातें भोले, अज्ञानी लोगों को भ्रमित कर अपनी ख्याति जमाने की स्वार्थ बुद्धि मात्र ही समझना चाहिये । सच्चाई उसमें एक पैसा भी नहीं है ।

उत्तराध्ययन सूत्र के समान दशवैकालिक सूत्र भी जैनस घ में बहुत प्रचलित शास्त्र है, क्यों कि साधु-साध्वी के लिये प्रार भिक एव अति उपयोगी होने से प्रायः प्रत्येक साधक इस सूत्र को क ठस्थ धारण करते हैं। इसकी गाथाएँ भी प्रायः सरल सुगम शैली में है। उत्तराध्ययन सूत्र की अपेक्षा यह बहुत छोटा शास्त्र है, इसे ७०० श्लोक परिमाण माना गया है।

व्याख्या साहित्य :- इस शास्त्र पर अगत्स्यसि ह सूरि की और जिनदासगणी आचार्य की यों दो चूर्णि प्रकाशित उपलब्ध है। हरिभद्रसूरि की प्राचीन टीका उपलब्ध है। बाद में इस सूत्र पर अनेक टीकाएँ एव व्याख्याएँ रची गई है। इस सूत्र का मुद्रण भी अनेक स्थलों से हुआ है जो आज हजारों की तादाद में उपलब्ध है। जिसमें स्थानकवासी पर परा में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी का, आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. का, युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा. का, गुजरात से श्री प्राण फाउन्डेशन राजकोट का एव राजस्थान से सुधर्म प्रचार म डल वगैरह का मुख्य रूप से प्रसिद्धि प्राप्त है ।आगम मनीषी श्री तिलोक मुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित आगम सारा श एव आगम प्रश्नोत्तर हिंदी तथा गुजराती सरल-सुगम भाषा में इस शास्त्र का प्रकाशित हैं। लाडनूँ से तेराप थी आचार्य तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञजी द्वारा स पादित यह शास्त्र प्रकाशित हुआ है ।

ऐतिहासिक विचारणा :- इतिहास में ऐसा कहा जाता है कि "शय्य भव स्वामी ने अपने आठ वर्ष के पुत्र "मनक" को दीक्षा दी थी और अपने विशेष ज्ञान से उसका ६ महीने आयुष्य जानकर उसके लिये दशवै-कालिक सूत्र की रचना की थी । फिर उसके दिव गत हो जाने पर उस सूत्र को पुनः विलीन करने का स कल्प किया। तब स घ का अत्याग्रह होने से उसे रहने दिया।" उसी के फल स्वरूप आज यह दशवैकालिक सूत्र उपलब्ध हो रहा है।

समीक्षा :- मनक गर्भ में था तब शय्य भव स्वामी ने दीक्षा ली थी। अत: मनक आठ वर्ष का दीक्षित हुआ, तब शय्य भव स्वामी की दीक्षा पर्याय आठ वर्ष हुई थी। उस समय प्रभव आचार्य मौजूद थे ।तब

आठ वर्ष की दीक्षा में शास्त्र बनाने और विलीन करने की सत्ता सब शय्य भव स्वामी के हाथ में मानना उपयुक्त नहीं लगता है । क्यों कि ऐसा मानने से शास्त्र बनाना और मिटाना यह तो एक बच्चों का खेल जैसा हो जाता है। **दूसरी बात** यह है कि आठ वर्ष के मनक मुनि के लिये बनाये जाने वाले शास्त्र में रथनेमि-राजीमति की घटना का विषय तथा मद्य सेवन करने वाले कपटी साधुओं का वर्णन(पाँचवे अध्ययन में)आदि भी अप्रास गिक सा ही लगता है। अतः मनक स ब धी कथानक निर्युक्ति भाष्यों की रचना के सैकड़ों वर्ष बाद इतिहास की कल्पनाएँ करने वाले विद्वानों की उपज ही अधिक लगती है।

निर्युक्ति भाष्यों आदि व्याख्याओं में जहाँ नवदीक्षित साधु के अध्ययन क्रम का वर्णन है वहाँ बताया गया है कि आचारा ग-निशीथ के पूर्व ही **दशवैकालिक** और **उत्तराध्ययन** सूत्र के पढ़ाने का क्रम है और उससे पहले **आवश्यक सूत्र** पढ़ाने का क्रम है। अतः यह स्पष्ट है कि ये दोनों सूत्र दीक्षार्थी और नवदीक्षित के प्रार भिक अध्ययन के उपयोगी सूत्र है और व्याख्याकारों ने इन्हें अध्ययन क्रम में नियुक्त भी किया है।

आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने व्यवहार सूत्र में साधुओं के अध्ययन का जो क्रम दिया है उसमें इन उपयोगी अति उपयोगी शास्त्रों का कथन नहीं किया गया है। इसका कारण यही हो सकता है कि ये दोनों सूत्र व्यवहार सूत्र की रचना के पूर्व नहीं बने होंगे। जिसमें उत्तराध्ययन सूत्र के नहीं बनने की बात तो स्पष्ट हो चुकी है कि वह प्रश्नव्याकरण सूत्र के एक अध्ययन(विभाग)के विभाजन से बना है परन्तु दशवैकालिक सूत्र के रचनाकार के रूप में शय्य भवाचार्य का नाम मिलता है जो कि भद्रबाहु स्वामी के दो पाट पहले हो चुके हैं।

इस उपलब्ध वर्णन धारणा के अनुसार दशवैकालिक सूत्र भद्रबाहु के समय उपलब्ध था। फिर भी इतने उपयोगी, अपने ही पूर्वज १४ पूर्वी प्रामाण्य पुरुषों द्वारा रचित और स घ के आग्रह से जो सूत्र रखा गया था, ऐसे विशिष्ट शास्त्र का उल्लेख अध्ययन क्रम

में भद्रबाहु स्वामी द्वारा नहीं रखना तथा खुद के रचे तीन छेद सूत्रों को अध्ययन क्रम में रख देना यह एक अत्य त विचारणीय प्रश्न है।

इसकी विचारणा से ही यह फलित होता है कि दशवैकालिक सूत्र भी भद्रबाहु स्वामी के बाद और न दीसूत्र की रचना के आसपास किसी के द्वारा बनाया गया होगा किन्तु कथाओं में कभी किसी ने शय्य भव स्वामी और मनकमुनि के साथ जोड़ दिया। यह भी हो सकता है कि शय्य भव नाम के अन्य आचार्य हुए हों जिन्होंने दशवैकालिक की रचना की हो और नाम साम्यता से कथानकों में उसे प्राचीन १४ पूर्वी शय्य भवाचार्य से जोड़ दिया गया हो।

ऐसा होना अस भव भी नहीं है क्यों कि ग्यारहवीं शताब्दि में हुए द्वितीय भद्रबाहु और वराहमिहिर का कथानक और निर्युक्तियों की रचना को प्रथम भद्रबाहु(दूसरी शताब्दि के)से जोड़ दिया गया। इस बात को म दिरमार्गी धुर धर विद्वान आगमोद्धारक अन्वेषक श्रमण श्री पुण्यविजयजी म॰सा॰ने अपने बृहत्कल्प भाष्य की प्रस्तावना में स्वीकार किया है कि ***"नाम साम्यता से कथानक घटनाएँ मिश्रित हुए हैं। १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी तीन छेद सूत्रों के कर्ता अलग है और निर्युक्तिओं की रचना करने वाले द्वितीय भद्रबाहु स्वामी अलग है, वे वीर निर्वाण की ग्यारहवी शताब्दि में हुए हैं।"*** प्रज्ञापना सूत्र के रचनाकार एक पूर्वी कालकाचार्य को भी ९ पूर्वी अथवा १० पूर्वी से भी जोडा गया है और उनके साथ भी महाविदेह क्षेत्र स ब ध की घटना घड़ कर जोड़ी गई है। जो किसी होशियार के बुद्धि करामात जैसी ही है, सत्यता उसमें भी नहीं है।

अतः ऐतिहासिक कथाओं वर्णनों के स ब ध में अनुप्रेक्षण को सदा स्थान रखना चाहिये किन्तु किसी घटना इतिहास के विषय में आग्रह या दुराग्रह नहीं रखना चाहिये।

सार यह है कि उत्तराध्ययन एव दशवैकालिक सूत्र १४ पूर्वी भद्रबाहु के समय और व्यवहार सूत्र की रचना के समय उपलब्ध नहीं थे, बाद में ही इनकी रचना हुई है, यही अधिक स गत लगता है तथा

शय्य भव नाम साम्यता से ऐसा कुछ इतिहास में स ब ध जुड़ गया हो या जोड़ा गया हो।

विषय परिचय :- (१) पहले अध्ययन में धर्म का स्वरूप और माहात्म्य बताकर भिक्षु की भिक्षावृत्ति को भ्रमरवृत्ति की उपमा दी गई है। (२) दूसरे अध्ययन में स्त्री परीषह में नहीं हारने की प्रेरणा रथनेमि और राजीमती के घटित द्वारा की गई है। (३) तीसरे अध्ययन में श्रमणों के अनाचरणीय स्थानों का निरूपण है। (४) चौथे अध्ययन में ६ जीवनिकाय की हिंसा त्याग की स क्षिप्त प्रतिज्ञा कथन है तथा पाँच महाव्रतारोपण छट्ठा रात्रिभोजन व्रत सहित है। (५) पाँचवें पिंड़ेषणा अध्ययन में गोचरी स ब धी विधि नियम एव दोषों के वर्जन को विस्तार से दो उद्देशक और १५० गाथाओं में समझाया है।

(६) छट्ठे अध्ययन में स यम के १८ स्थानों के, छोटे बड़े नियमों के पालन की प्रेरणा की गई है। (७) सातवें अध्ययन में भाषा के दोषों को स्पष्ट करके भाषा विवेक सिखाया गया है। (८) आठवें अध्ययन **आचार प्रणिधि** में स यम खजाने के अनेक महत्त्व पूर्ण विषयों पर प्रकाश ड़ाला है। (९) नवमें अध्ययन में चार उद्देशकों के विभाजन पूर्वक श्रमण के विनय धर्म को विस्तृत विविध प्रकार से समझाया है। (१०) दसवें अध्ययन में भिक्षु के विशिष्ट गुणों का निर्देश करते हुए आदर्श भिक्षु बनने की प्रेरणा दी गई है।

उसके बाद प्रथम चूलिका में स यम भावों की स्थिरता रखने का एव दूसरी चूलिका में परिस्थितिवश एकलविहार चर्या स्वीकार करने का और उसमें सावधानियाँ रखने का स केत किया गया है। इस प्रकार विविध स यम विषयों के विश्लेषण के साथ सूत्र पूर्ण होता है।

न दी सूत्र ३०

स्थानकवासी जैनों द्वारा मान्य ३२ आगमों में यह शास्त्र चार मूल सूत्रों में तीसरा आगम है। न दी सूत्र की आगम सूचि के अ दर भी न दी सूत्र का नाम उत्कालिक सूत्रों में गिनाया गया है। आगमकारों की यह पद्धति व्यवहार सूत्र में देखने को मिलती है। उसके रचनाकार १४ पूर्वधरश्री भद्रबाहु स्वामी है। उन्होंने व्यवहार सूत्र के दसवें अध्ययन में साधु-साध्वी के अध्ययन का क्रम दिया है उसमें व्यवहार सूत्र का नाम भी पाँच वर्ष की दीक्षा पर्याय तक के अध्ययन के कथन में दिया है । अतः यह पद्धति पूर्वाचार्यों से सम्मत है ।

विषय– न दी सूत्र में पाँच ज्ञान के विषय का अपने ढ़ ग के क्रम से वर्णन किया गया है। उसके सिवाय प्रार भ में ५० गाथाओं द्वारा तीर्थंकर, गणधर एव अन्य भी बहुश्रुत अनुयोगधर महान आचार्यो की स्तुति गुणगान पूर्वक भक्ति प्रगट की है। अ तिम गाथा ५०वीं में न दी सूत्र गत ज्ञान के विषय की प्ररूपणा करने की प्रतिज्ञा के वचन उत्थानिका रूप में है।

परिमाण– इस सूत्र में अध्ययन उद्देशक आदि कोई विभाग नहीं है, यह इसकी अपनी अलग विशेषता है। उपलब्ध इस सूत्र को ७०० श्लोक प्रमाण माना जाता है। वास्तव में गिनती करने पर २०६८६ अक्षर होते हैं जिसके ३२ अक्षर के प्रमाण से ६४६ श्लोक होते हैं, १४ अक्षर शेष रहते हैं। इससे ज्ञात होता है कि लेखन काल में अपेक्षा से, पर परा से या अनुमान से श्लोक स ख्या अ कित की जाती रही है। जो अब तक वैसी ही मान्य की जा रही है। प्रकाशन युग में कई स पादक अक्षरों की गिनती करके देने का प्रयास करने लगे हैं।

नामकरण– इस शास्त्र में मुख्यतः ज्ञान का वर्णन है। ज्ञान, आत्मा को वास्तविक आन द देने वाला होता है। अतः इस सूत्र का न दी- आन द देने वाला शास्त्र, यह नाम भी सार्थक रखा गया है।

स स्करण– न दी सूत्र पर प्राचीन चूर्णि-टीकाएँ प्रकाशित हैं। अन्य भी मूल, अर्थ, विवेचन युक्त अनेक स स्करण प्रकाशित हुए हैं। मगल रूप में समझकर भी साधु साध्वी इसका समय-समय पर स्वाध्याय

करते हैं एव व्याख्यान में वा चन भी करते है। इसलिये भी इसके स स्करणों की प्रचुरता है। ३२ आगम सारा श की पुस्तकों में भी इसकी स्वत त्र पुस्तक छपी है। जैनागम नवनीत आठ भागों के पाँचवे भाग में यह सूत्र है तथा ३२ आगम प्रश्नोत्तर की पुस्तकों के प्रावधान में भी दसवें भाग में नंदी सूत्र के प्रश्नोत्तर है ।

रचनाकार :– इस सूत्र की रचना देववाचक श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने की है, जो आचार्य श्री दुष्यगणि के शिष्य थे। जिन्होंने समस्त आगमों को वीर निर्माण ९८० में लिपि बद्ध कराया था। न दी सूत्र की रचना के समय वे उपाध्याय पद पर थे, शास्त्र लेखन के समय वे आचार्य पद पर थे। उस समय भाषा शैली में उपाध्याय पद के लिए **वाचक** शब्द का प्रयोग होता था और आचार्य पद के लिए **गणि** शब्द का प्रयोग किया जाता था एव युग प्रधान के लिये क्षमाश्रमण लगाया जाता था। अतः न दी सूत्र के रचयिता देववाचक ही सूत्र लेखन करवाने वाले देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण थे। यथा-वर्तमान में आचार्य श्री आत्मारामजी म॰ सा॰ पहले उपाध्याय पद से प्रसिद्ध थे फिर आचार्य पद से। न दी सूत्र के एक स पादन में भूमिका लेखक के रूप में उपा॰ श्री आत्मारामजी म॰ सा॰ लिखा है एव अन्य कई जगह आचार्य श्री आत्मारामजी म॰सा॰ ऐसा लेख मिलता है। काला तर में इन दो नामों से भिन्नता का भ्रम होना सहज है। फिर भी वास्तव में दोनों नाम वाले व्यक्ति एक ही है।

इसी प्रकार वर्तमान में आचार्य श्री हस्तीमलजी म॰ सा॰ पूर्व में आचार्य पद पर रहे, बीच में उपाध्याय पद पर एव पिछले वर्षो में पुनः आचार्य पद पर रहे। इसी बीच उन्होंने किसी आगम का स पादन किसी स वत् में उपाध्याय पद में किया। किसी आगम या ग्र थ का स पादन किसी स वत् में आचार्य पद में किया। इस प्रस ग को लेकर भविष्य में नाम भिन्नता या व्यक्ति भिन्नता का भ्रम हो जाना सहज स भव है फिर भी वास्तव में आचार्य हस्तीमल या उपाध्याय हस्तीमल प्रयोग से व्यक्ति भिन्न नहीं है, एक ही व्यक्ति की दो अवस्थाएँ हैं। उसी प्रकार देवर्धिगणी का भी दीर्घ स यम काल रहा है। उसमें पद विशेष की विविधता और उससे नाम विविधता स भव

है। सार यह है कि दूष्यगणी के शिष्य श्री देववाचक अपर नाम देवर्धि गणि क्षमाश्रमण ही न दी सूत्र के रचयिता है । कल्प सूत्र में देवर्धिगणि का कुछ परिचय मिलता है उससे भी भ्रम उत्पन्न होता है किन्तु उस सूत्र की प्रामाणिकता ही पूर्ण स देह युक्त है। उसके रचयिता भी देवर्धि गणि को माना जाता है और उसमें देवर्धि की स्तुति गुणग्राम युक्त व दना भी की गई है। ऐसे ही कई कारणों से कल्प सूत्र को ३२ या ४५ प्रामाणिक आगमों में नहीं गिना गया है ।

वास्तव में ग्यारह अ ग सूत्र तथा चार छेद सूत्र के सिवाय एव अनुयोगद्वार सूत्र के सिवाय सभी अ ग बाह्य शास्त्रों की स कलना देवर्धि गणि के शास्त्र लेखन काल की माननी चाहिये। उस समय ही आचार्यों या बहुश्रुतों द्वारा विभिन्न शास्त्र स कलन स पादन या रचना करवाये गये थे। इसमें प्रज्ञापना, दशवैकालिक को भी समझ लेना विवाद रहित होता है। उत्तराध्ययन, न दी, ऋषिभाषित आदि सभी समझ लेने चाहिये। रचनाकार के नाम लिखने की पर परा नहीं रखी गई थी। क्यों कि सामुहिक स घ हित में कार्य किया गया था। खुद देवर्धिगणी या देव वाचक नाम भी न दी सूत्र के मूल में नहीं है। प्रज्ञापना के मूल में या दशवैकालिक के मूल में भी किसी का नाम नहीं है। नाम तो जो भी उपलब्ध है वह १-२ पीढ़ी बाद किसी विनीत शिष्यों ने प्रार भ में स्तुति रूप में या प्रचारित रूप में मौखिक चलाया होगा। जो आगे जाकर लिखित ग्र थो में व्याख्या में मिलने लगा है ।

सूत्र का विषय :- अन्य सूत्रों में पाँच ज्ञान के नाम का क्रम इस प्रकार है- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान। प्रस्तुत सूत्र में प्रत्यक्षज्ञान और परोक्षज्ञान ऐसे दो भेद किये है।प्रत्यक्ष में आत्मप्रत्यक्षीभूत ज्ञान की अपेक्षा रखी गई है, चक्षु प्रत्यक्षीभूत ज्ञान की नहीं। अतः आत्म प्रत्यक्षीभूतज्ञान अवधि, मनःपर्यव एव केवल ज्ञान का स्वरूप क्रमशः प्रथम बताया गया है और फिर परोक्षज्ञान में मति, श्रुतज्ञान को कहकर उसके भेद-प्रभेद के क्रम से स्वरूप स्पष्ट किया है। इस तरह इस शास्त्र में ज्ञान का अन्य आगम प्रचलित क्रम से भिन्न क्रम इस प्रकार है- (१) अवधिज्ञान (२) मनः पर्यवज्ञान (३) केवलज्ञान (४) मतिज्ञान (५) श्रुतज्ञान । इस क्रम से लेने की

जो अपेक्षा है वह मूलपाठ से ही स्पष्ट हो जाती है। अतः स्वत त्र अपेक्षा होने से वर्णन क्रम भिन्न है, इसमें कोई दुविधा नहीं समझनी चाहिये। क्यों कि अपेक्षा शब्द बहुत विशालता को अपने अ दर समाविष्ट करके बना है। जीवाभिगम में इसी **अपेक्षा** शब्द प्रयोग से जीव के २ से लेकर १० भेद भी होना स्वीकार किया गया है । जिस श्रुतज्ञान से लोक का बहुत अल्पज्ञान होता है, केवलज्ञान की तुलना में यह सि धु में बिंदु जितना भी नहीं है तो भी अपेक्षा शब्द लगाकर शास्त्रकार ने इसके लिये केवलज्ञान के विषय जितने भावों का कथन कर दिया है। यथा- अपेक्षा से श्रुतज्ञानी सर्वद्रव्य, सर्व क्षेत्र, सर्व काल, सर्व भाव जानता और देखता है-**(भगवती सूत्र।)** इसलिये इस शास्त्र में प्रत्यक्ष-परोक्ष ज्ञान की अपेक्षा से ज्ञान का वर्णन क्रम भिन्न हुआ है, वह तर्क अबाधित समझना चाहिये।

इसी क्रम से पाँचों ज्ञान का भेद-प्रभेद युक्त स्पष्ट वर्णन करके अ त में द्वादशा गी के १२ ही अ गशास्त्रों का आभ्य तर विषय परिचय दिया गया है । वैसा का वैसा ही परिचय समवाया ग सूत्र के पिछले विभाग में दिया गया है । दोनों सूत्रों के इस वर्णन में प्रायः समानता है, किंचित् भिन्नता है । क्यों कि न दीसूत्र आचार्य की रचना का उत्कालिक सूत्र है । समवाया ग सूत्र गणधर रचित कालिक सूत्र है।

कालिक-उत्कालिक का रहस्यार्थ :- जिन शास्त्रों की शब्द रचना गणधर सिवाय अन्य बहुश्रुत आचार्य करते है वे **उत्कालिक** कहे जाते है। जो शास्त्र गणधर रचित शास्त्र में से उद्धृत किये जाते हैं, मौलिक रचना गणधरों की रहती है, वे **कालिक** सूत्र कहे जाते हैं। गणधर द्वादशा गी की रचना करते हैं, उनमें से ही कई शास्त्र उद्धृत किये जाते है तथा शब्द अध्ययन वे ही रखे जाते हैं, उन्हें **कालिक** कहा जाता है। गणधर रचित तीर्थंकर भाषित भावों को जो आचार्य अपनी शैली में नूतन रचना करते हैं वे **उत्कालिक** शास्त्र कहे जाते हैं। ३२ सूत्र में आठ सूत्र उत्कालिक है, यथा- (१) उववाई (२) राजप्रश्नीय (३) जीवाभिगम (४) प्रज्ञापना सूत्र (५) न दीसूत्र (६) अनुयोग (७) दशवैकालिक सूत्र (८) सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र ।

०००००

अनुयोगद्वार सूत्र ३१

सूत्र के अनुरूप अर्थ एव व्याख्या को योजित करना "अनुयोग" कहलाता है। सूत्र के उन अर्थों, व्याख्याओं एव विश्लेषणों रूप अनुयोग को कहने की, समझाने की जो पद्धति होती है, तरीके होते हैं अर्थात् जिस भ ग, भेद, क्रमों का अवल बन लेकर आगम शब्दों एव सूत्रों की व्याख्या–अनुयोग किया जाता है उसे 'अनुयोग पद्धति' कहते हैं। इस पद्धति में जिन भ ग भेदों का अवल बन लिया जाता है उसके मुख्य भ ग भेदों को 'द्वार' शब्द से कहा जाता है। द्वार का अर्थ है सूत्र व्याख्या में प्रवेश करने के मुख्य मार्ग। फिर जो भेदानुभेद किए जाते हैं वे 'उपद्वार' कहे जाते हैं। उन्हें भ ग, भेदानुभेद, विकल्प, उपद्वार किसी भी शब्द से कहा जा सकता है । प्रस्तुत सूत्र में शब्दों के अर्थ व्याख्यान की पद्धति चार मुख्य द्वारों से बताई गई है । इसलिए इसका सार्थक नाम **अनुयोग द्वार सूत्र** रखा गया है। यह सूत्र समग्र आगमों को और उनकी व्याख्याओं को समझने की कु जी के सदृश है ।

सूत्र का विषय– इस सूत्र में प्रथम पाँच ज्ञानों से म गलाचरण किया गया है। उसके पश्चात् आवश्यक, श्रुत, स्क ध, अध्ययन एव सामायिक इन पाँच शब्दों को उदाहरण रूप में लेकर व्याख्या पद्धति को क्रियान्वित किया गया है ।

व्याख्या पद्धति के भेद प्रभेदों की प्रचुरता के कारण ही इस सूत्र को समझना क्लिष्ट–कठिन है। इसलिए यह सूत्र सर्व सामान्य के लिए सुरूचिपूर्ण नहीं है। तथापि जैन दर्शन को एव प्राचीन व्याख्याओं को समझने में गति करने हेतु मेधावी शिष्यों के लिए यह अतीव उपयोगी–बड़ा ही महत्वपूर्ण सूत्र है। क्यों कि प्राचीन चूर्णि निर्युक्ति टीकाओं आदि के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उनके प्रार भ में विवेचन करने की वही पद्धति अपनाई गई है जो इस सूत्र में भेद प्रभेदों के द्वारा बताई गई है। व्याख्याओं में यह पद्धति श्वेताम्बर जैन आगमों के अतिरिक्त दिगम्बर जैन आगम 'षटख ड़ागम' आदि की टीकाओं में भी देखने को मिलती है। इससे भी इस सूत्रोक्त अनुयोग पद्धति की महत्ता एव आवश्यकता का अनुमान लगाया जा सकता है ।

अनुयोग द्वार सूत्र का विषय स कलन– (१) ज्ञान के भेद (२)श्रुत ज्ञान का उद्देश आदि (३) आवश्यक सूत्र का, श्रुत का, स्क ध का निक्षेप द्वारा प्ररूपण (४) अनुयोग के चार द्वार एव प्रथम उपक्रम द्वार का विभाग वर्णन (५) आनुपूर्वी विस्तार (६) एक से दस नाम के वर्णन से विविध भावों का निरूपण (७) चार प्रमाण स्वरूप(८) मान उन्मान के भेद एव स्वरूप (९) तीन प्रकार के अ गुल (१०) जीवों की अवगाहना (११) स्थितियाँ (१२) पाँच शरीरों के बद्ध मुक्त का वर्णन (१३) प्रत्यक्ष प्रमाण आदि भाव प्रमाण (१४) स ख वर्णन (१५) चार पल्य के माध्यम से उत्कृष्ट स ख्याता की उपमा गणना(ड़ाला–पाला वर्णन) (१६) अर्थाधिकार (१७) समवतार (१८) चार निक्षेप द्वार (१९) अनुगम द्वार निरूपण (२०) सामायिक स्वरूप (२१) नय प्ररूपण ।

ये अनुयोग द्वार सूत्र में वर्णित विषय है। (२२) जीवों की अवगहनाएँ (२३) स्थितिएँ, (२४) बद्ध मुक्त शरीरों का वर्णन, पन्नवणा सूत्र में होते हुए भी यहाँ विस्तार से किया गया है ।

इस सूत्र का स्थान आगमों में– व्याख्या पद्धति का सूचक यह अनुयोग द्वार सूत्र अ ग बाह्य उत्कालिक सूत्र है, ऐसा न दी सूत्र की सूत्र सूचि में बताया गया है। वर्तमान में श्वेताम्बर स्थानकवासी पर परा में इसे मूल सूत्रों में गिना जाता है एव श्वेताम्बर मूर्तिपूजक पर परा में **चूलिका** सूत्र कहा जाता है। इस सूत्र में मुख्य रूप से 'आवश्यकसूत्र' एव 'सामायिक आवश्यक' पर अनुयोग पद्धति से व्याख्या का कथन चार मुख्य द्वारों से किया गया है। उसके साथ साथ ही प्रस गानुसार अन्य भी ज्ञातव्य विषयों, तत्त्वों का कथन किया गया है। जिसमें सा स्कृतिक सामग्री का भी वर्णन है यथा– स गीत के सात स्वर, स्वर स्थान, गायक के लक्षण, ग्राम, मूर्च्छनाएँ, स गीत के गुण और दोष, नव रस, सामुद्रिक लक्षण, उत्तम पुरूष के लक्षण, चिन्ह आदि। निमित्त के स ब ध में भी कुछ प्रकाश ड़ाला गया है यथा– आकाशदर्शन एव नक्षत्रादि के प्रशस्त होने पर सुवृष्टि होती है एव अप्रशस्त होने पर दुर्भिक्ष आदि होते हैं।

रचनाकार एव रचनाएँ– इसके रचयिता आर्य रक्षित माने गये हैं। तदनुसार इस सूत्र की रचना वीर निर्वाण स वत् ५९२ की एव विक्रम

स वत् १२२ की मानी जाती है। आगम प्रभावक श्री पुण्य विजय जी म॰सा॰ का यह म तव्य है कि अनुयोग द्वार सूत्र की रचना आर्य रक्षित ने ही की हो ऐसा निश्चित नहीं कह सकते। इसलिये उपाचार्यश्री देवेंद्रमुनिजी ने वीर निर्वाण ८२७ वर्ष के पूर्व की रचना मानने का उल्लेख भी किया है।पूर्ण निर्णय के अभाव में भी इतना तो अवश्य है कि न दी सूत्र की रचना के पूर्व इस सूत्र की रचना हो गई थी। यह सूत्र एक श्रुत स्क ध है, इसमें अध्ययन उद्देशे नहीं है। इसका परिमाण १८९९ श्लोक का माना जाता है ।

इस सूत्र पर जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण एव जिनदास गणी महत्तर यों दो प्राचीन आचार्यों की चूर्णि नामक व्याख्या उपलब्ध है। आचार्य हरिभद्रसूरी एव हेमचन्द्राचार्य की प्राचीन टीकाएँ उपलब्ध है। बीसवीं सदी में ३२ सूत्रों पर स स्कृत व्याख्या स्थानकवासी आचार्य श्री घासीलालजी म॰ सा॰ ने की है, वे सभी प्रकाशित उपलब्ध है। आचार्य श्री अमोलकऋषिजी म॰सा॰ने ३२ ही सूत्रों का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया है एव हिन्दी विवेचन सहित ३२ ही शास्त्र आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित हुए हैं। आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰सा॰ द्वारा स पादित ३२ आगमों का नवनीत (सारा श)३२ भागों में तथा ८ भागों में प्रकाशित है। तथा ३२ आगम के प्रश्नोत्तर १० भागों में प्रकाशित है । जिसमें इस सूत्र के जटिल एव रूक्ष विषय को यथा स भव सरल और सुगम बनाकर प्रश्नोत्तर रूप में एव सारा श रूप में हिंदी-गुजराती दोनों भाषा में अलग अलग पुस्तकों में दिया गया है । नय-निक्षेप का वर्णन भी सुस्पष्ट किया गया है । वास्तव में सारा श और प्रश्नोत्तर के माध्यम से इस कठिन आगम को सामान्य पाठक भी सहज समझ सकते हैं । इसलिये ३२ आगम के सारा श एव प्रश्नोत्तर की पुस्तकों का आगम जिज्ञासु सुश्रावकों को अवश्य स्वाध्याय करना चाहिये । इन पुस्तकों में मूलपाठ नहीं होने से स्वाध्याय-अस्वाध्यय काल का कोई नियम भी इसके पढने में नहीं लगता है । अत: साध्वियाँ एव श्राविकाएँ भी सारा श और प्रश्नोत्तर की पुस्तकों का स्वाध्याय कभी भी कहीं भी कर सकती है ।

०००००

आवश्यक सूत्र ३२

स सार प्रवाह में परिभ्रमण करते हुए प्राणी को मानवदेह प्राप्त होना अत्य त दुर्लभ है। ऐसे मानव देह को प्राप्त करने का श्रेष्ठ फल है व्रतप्रत्याख्यान धारण करना। कहा भी है-**देहस्य सार व्रत धारण च ।** व्रत को धारण करने के बाद उनका शुद्ध रूप से पालन एव आराधना करना भी साधक का परम कर्तव्य हो जाता है। जीवन की सामान्य विशेष विविध परिस्थितियों में सूक्ष्म स्थूल अतिचार भी जाने- अनजाने लगते रहते हैं उनकी शुद्धि के लिये प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है। प्रतिक्रमण के लिये अवल बनभूत आगम "आवश्यक सूत्र" है ।

नामकरण-अनुयोगद्वार सूत्र में श्रावक एव श्रमण दोनों के लिये उभय स ध्या अवश्य करणीयता कही होने से इसे **आवश्यक सूत्र** कहा गया है।

आगमों में स्थान- प्रतिक्रमण करना सभी श्रमणों का प्रमुख आचार होने से इस आवश्यक सूत्र का अ ग आगम और अ गबाह्य आगमों से अलग ही महत्त्व शास्त्रों में निर्दिष्ट है। जहाँ श्रमणों के शास्त्र अध्ययन की जानकारी आगमों में दी गई है वहाँ अ गशास्त्रों से भी आवश्यक सूत्र के अध्ययन का निर्देश पहले अलग किया गया है। न दी सूत्र में अ गबाह्य आगमों में आवश्यक को पहले अलग कहा गया है फिर सभी अ गबाह्य आगमों को दो विभागों से एक साथ कहा गया है। इस प्रकार इस आवश्यक सूत्र का सभी आगमों से एक विशेष एव अलग ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे क ठस्थ करना प्रत्येक श्रमण एव श्रमणोपासक के लिये आवश्यक होता है।

विशेषता- समस्त जैन आगम या तो कालिक होते है अथवा उत्कालिक होते हैं और उनके उच्चारण के काल अकाल दोनों होते हैं। वे ३२ (३४) अस्वाध्याय के समय उच्चारण नहीं किये जाते हैं। किन्तु आवश्यक सूत्र का काल अकाल नहीं होता है अर्थात् सदा

काल इस सूत्र का उच्चारण किया जा सकता है। ३२(३४) अस्वाध्याय के समय इसका उच्चारण करना भी निषिद्ध नहीं होता है, बल्कि सुबह शाम की स ध्या काल रूप अस्वाध्याय के समय ही इस सूत्र के अवल बन भूत प्रतिक्रमण करने का विशिष्ट समय आगम उत्तराध्ययन और अनुयोगद्वार सूत्र में सूचित किया गया है। निष्कर्ष यह है कि इस आगम के उच्चारण में शुचि, अशुचि, समय, असमय आदि कोई भी बाधाजनक नहीं होते हैं ।

रचना और रचनाकार– आवश्यक सूत्र की रचना गणधर करते हैं एव सभी तीर्थंकरों के शासन के प्रारम्भ में ही इस सूत्र की रचना की जाती है क्यों कि साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप तीर्थ स्थापन से तीर्थंकर का शासन प्रारम्भ होता है और साधु-साध्वी के लिये प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है। प्रतिक्रमण आवश्यक सूत्र के आधार से ही किया जाता है। अतः यह सूत्र गणधर रचित आगम है। इसमें ६ अध्याय है जिन्हें छ आवश्यक कहा जाता है। छः आवश्यकों में कुल १+१+१+९+१+१०=२३ तथा आदि म गल और अ तिम म गलपाठ मिल कर कुल २३+२=२५ पाठ है जिनका परिमाण १२५ श्लोक का माना जाता है। कहीं १०० या २०० श्लोक परिमाण भी कहा गया है ।

व्याख्या एवं स स्करण– इस आवश्यक सूत्र नामक आगम पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीकाएँ(हरिभद्रीय, मलयगिरीय आदि) एव विविध हिन्दी, स स्कृत, प्राकृत व्याख्यायें मुद्रित उपलब्ध होती है। इस सूत्र के मूलपाठ भी सुत्तागम आदि के रूप में प्रकाशित हुए हैं। आधुनिक ढ़ग से लाड़नू से आचार्य तुलसी द्वारा स पादित एव बम्बई विद्यापीठ से पूज्य मुनि श्री ज बूविजयजी द्वारा स पादित प्रकाशित हुए हैं।

इस सूत्र के आधार से विविध पाठों सहित तथा अनेक हिन्दी गुजराती गद्य पद्य के रचित पाठों सहित प्रतिक्रमण सूत्र श्वे॰ समाज में प्रचलित हैं। उसी की प्रमुखता से समाज में प्रतिक्रमण किया जाता है। इसके अनेकों स स्करण प्रकाशित है और वे अनेक विविधता वाले हैं

जिनका परिमाण १०००श्लोक से लेकर ५-७ हजार श्लोक जितना भी हो जाता है जब कि आवश्यक सूत्र तो केवल १२५ श्लोक प्रमाण है।

कई लोग प्रतिक्रमण सूत्र(विधि सहित) को ही आवश्यक सूत्र मान बैठते हैं किन्तु आवश्यक सूत्र १२५ श्लोक प्रमाण आज भी स्वत त्र है। जो उपरोक्त लाड़नू, बम्बई के स स्करण में देखा जा सकता है। उसमें केवल अर्द्धमागधी भाषा के ही पाठ है। जब कि उस आवश्यक सूत्र के आधार से प्रचलित प्रतिक्रमण सूत्र में अन्य शास्त्रों के उद्धरित मूल पाठ भी है, अन्य नये रचित मूलपाठ भी है, साथ ही साथ हिन्दी गुजराती के या मिश्रित भाषा के कई पाठ एव दोहे, सवैये, भजन, स्तुति आदि भी सम्मिलित है।

आवश्यक सूत्र में केवल श्रमणोचित पाठ ही छहों अध्यायों में उपलब्ध होते हैं। श्रावक प्रतिक्रमण के अन्यान्य पाठों का स कलन भाष्य टीका में आवश्यक सूत्र के अ त में चूलिका रूप में दिया गया है। अनुयोगद्वार सूत्र में श्रावक को भी प्रतिक्रमण करना आवश्यक कहा गया है अतः श्रावक प्रतिक्रमण के मूलपाठों को आवश्यक सूत्र की चूलिका रूप में स्वीकार करना चाहिये। इस प्रकार आवश्यक सूत्र प्रक्षेपों रहित शुद्ध रूप में आज भी उपलब्ध है। प्रक्षेप वृद्धि आदि सब स्वत त्र प्रतिक्रमण सूत्रों में होता है। वह स्वत त्र विधि सूत्र है जो आवश्यक के आधार से तैयार किया गया है ।

प्रतिक्रमण सूत्र के समान ही सामायिक सूत्र भी प्रचलित है उसमें भी आवश्यक सूत्र के अन्यान्य अध्यायों में आये पाठों का एव अन्य सूत्र से लाये गये पाठ का तथा नये रचित पाठ का स कलन किया गया है। इसी सामायिक सूत्र के आधार से सामायिक व्रत लेने की एव पारने की पूर्ण विधि की जाती है।

उपाध्याय कवि श्री अमरमुनि जी द्वारा स पादित श्रमण सूत्र और सामायिक सूत्र विवेचन चि तन सहित प्रकाशित हुआ है। अन्य भी अनेक महत्त्वशील स स्करण इस सूत्र के प्रकाश में आये हैं ।

स्थानकवासी पर परा में आचार्य श्री अमोलख ऋषिजी का, आचार्य श्री घासीलालजी म.सा. का, युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म.सा. का, गुजरात से गुरु प्राण फाउन्डेशन राजकोट का एव राजस्थान से सुधर्म प्रचार म डल वगैरह का मुख्य रूप से प्रसिद्धि प्राप्त है।

आगम मनीषी श्री तिलोकमुनिजी म॰ सा॰ द्वारा स पादित आगम सारा श एव आगम प्रश्नोत्तर हिंदी तथा गुजराती सरल-सुगम भाषा में यह शास्त्र **९ परिशिष्टो के साथ** प्रकाशित हैं । जिसमें आवश्यक सूत्र या प्रतिक्रमण सूत्र स ब धी परंपराओं के निमित्त से उठने वाली अनेक श काओं का समाधान स्वत: हो जाता है ।

प्रचलित श्वेताम्बर पर परा में इस सूत्र को अ तिम सूत्र बोला एव गिनाया जाता है अर्थात् ४५ या ३२ आगम में यह पेंतालीसवाँ और बत्तीसवाँ सूत्र गिना जाता है किन्तु समस्त आगमों में इस सूत्र की प्राथमिकता उपर स्पष्ट की गई है । इसलिये इस सूत्र को व्यवहार में भी प्रथम न बर में रखना चाहिये।

॥ परिशिष्ट विभाग ॥

परिशिष्ट-१

अंतिम समय की आराधना के जैन साहित्य

प्रभु महावीर ने मानव जीवन के सदुपयोग के लिये द्विविध धर्म का निरूपण किया है- श्रावक धर्म तथा श्रमण धर्म । यथा शक्ति कोई श्रमण धर्म स्वीकार करते है कोई श्रावकधर्म । दोनों प्रकार के साधकों के लिये साधना की अंतिम सफलता हेतु पंडित मरण, संलेखना-संथारे का आराधन एक महत्वपूर्ण कर्तव्य है । इस कर्तव्य की परिपूर्णता के लिये जैनचार्यों ने विध-विध तरह से अंतिम आराधना प्रदायक उपदेशों का ग्रंथ रूप में संकलन किया है । वे ग्रंथ प्राकृत साहित्य के रूप उपलब्ध हैं । उनका (२२ का) परिचय इस प्रकार है —

(१) समाधिमरण :- संलेखना आराधना संबंधी उपलब्ध ग्रंथों में यह बहुत बड़ा प्राकृत ग्रंथ है । इसमें ६६१ गाथाएँ है । इस ग्रंथ की रचना में १. मरण विभक्ति २. मरण विशोधि ३. मरण समाधि ४. संलेखना श्रुत ५. भक्त परिज्ञा ६. आतुर प्रत्याख्यान ७. महाप्रत्याख्यान ८. आराधना । इन प्राचीन ग्रंथों का उपयोग किया है ऐसा स्वयं ग्रंथकार ने कथन किया है । इस ग्रंथ में अंत समय की आराधना का वर्णन है । रचनाकार अज्ञात है । नंदी में नाम नहीं है । पाक्षिक सूत्र में नाम है ।

इसमें मरण के अतिरिक्त आचार्य के ३६ गुण, आलोचना के दोषों का नाम सहित वर्णन किया है। मूर्तिपूजक ६-७ संघ संस्थाओं से प्रकाशित है । हिंदी अनुवाद नहीं है ।

(२-४) आतुर प्रत्याख्यान :- यह गद्य-पद्य मिश्रित ग्रंथ है । इस नाम के तीन ग्रंथ मिलते है । उनमें ३०, ३४ और ७१ गाथाएँ है । **१.** शरीर ममत्व त्याग, सागार-निरागार प्रत्याख्यान । सभी जीवों के प्रति क्षमापना की गई है । लेखक अज्ञात है । **२.** उपोद्घात, अविरति, प्रत्याख्यान, मिथ्यादुष्कृत, ममत्व त्याग, शरीर के लिये उपालंभ, शुभ-

भावना, अरिहंतादि स्मरण, पापस्थान त्याग आदि शीर्षकों से विषय वर्णित है। कर्ता अज्ञात है । **३.** यह ७१ गाथामय वीरभद्र आचार्य कृत ग्रंथ है, **नंदी सूत्र में नाम है ।** इसमें बाल-पंडित आदि तीन मरण का प्रतिपादन है । ६-७ जगह से प्रकाशित है हिंदी अनुवाद सहित भी उदयपुर से प्रकाशित है ।

(५) महाप्रत्याख्यान :- नंदी सूत्र एवं पाक्षिक सूत्र में **इसका नाम है ।** नंदी चूर्णि, हरिभद्रीयवृत्ति तथा पाक्षिक सूत्र वृत्ति में इसके विषय में सूचन है । इसमें जिनकल्पी एवं स्थविरकल्पी दोनों की अंतिम आराधना संलेखना का निरूपण है । इसमें १४२ गाथाएँ है । इसमें मंगल कथन के बाद तीन व्युत्सर्जना, सर्वजीव क्षमणा, निंदा गर्हा आलोचना, ममत्व छेदन, आत्म स्वरूप, मूल और उत्तर गुणों में प्रमाद की निंदा, एकत्व भावना, संयोग संबंध व्युत्सर्जना, असंयम आदि की निंदा, मिथ्यात्व का त्याग, अज्ञात अपराध की आलोचना का स्वरूप, शल्योद्धरण प्ररूपण, आलोचना का फल, निर्वेद भाव उपदेश, पंडित मरण का प्ररूपण, पंच महाव्रत की रक्षा, तप का महात्म्य, अनाराधक का स्वरूप। आराधना का महात्म्य । पाप आदि का प्रत्याख्यान, सभी जीवों के प्रति क्षमाभाव, प्रत्याख्यान पालन के फल आदि का विस्तार है । **इसके कर्ता अज्ञात है ।** हिंदी अनुवाद सहित प्रकाशित है ।

(६) संस्तारक :- इसमें १२२ गथाएँ है । कर्ता अज्ञात है । **नंदी में नाम नहीं है ।** संस्तारक के गुण, स्वरूप, लाभ और सुख का वर्णन है । संस्तारक ग्रहण करने वाले पुण्यात्माओं के नामोल्लेख है । अंत में क्षमापना और भावना का निरूपण है । सात जगह से संस्करण प्रकाशित है- मुर्शिदाबाद, अहमदाबाद, आगमोदय समिति, हर्ष पुष्पामृत जैन ग्रंथमाला, महावीर जैन विद्यालय मुम्बई, जैन धर्म प्रसारक सभा से मूल, आगम संस्थान उदयपुर से अर्थ सहित ।

(७) चतुःशरण :- कर्ता अज्ञात । **नंदी में नाम नहीं ।** इसमें २७ गाथाएँ है । दुष्कृत गर्हा, सुकृत अनुमोदना और चार शरणागमन ये तीन विषय है । यह ग्रंथ केवल महावीर जैन विद्यालय मुम्बई से ही प्रकाशित है ।

(८) भक्तपरिज्ञा :- नंदी में नाम नहीं है । १७२ गाथाएँ है । वीर भद्राचार्यकृत । इसमें मंगल कथन के पश्चात् ज्ञान का महात्म्य, अशास्वत सुख की निष्फलता, जिनाराधना में शाश्वत सुख, अभ्युद्धत मरण के तीन भेद, भक्त परिज्ञा मरण के दो भेद, आलोचना, प्रायश्चित्त, महाव्रतारोपण, सामायिक आरोपणा, क्षमापना उपदेश आदि । अंत में भक्तपरिज्ञा का महात्म्य वर्णन है । अनेक मूर्तिपूजक संघ संस्थाओं से प्रकाशित है ।

(९) चतुःशरण प्रकीर्णकम्(कुशलानुबंधी) :- आचार्य वीरभद्रकृत। इसमें ६३ गाथा है । इसमें ६ मुख्य विषय है- १. सावद्ययोगविरति, २. उत्कीर्तन, ३. गुणियों के प्रति विनय ४. क्षतिनिंदा ५. दोषों की चिकित्सा, ६. गुणाराधना । इसके अतिरिक्त १४ स्वप्न का वर्णन है । चार शरण ग्रहण, दुष्कृत निंदा । अनेक जगह से प्रकाशित है। सन्मार्ग प्रकाशक अहमदाबाद से टीका अनुवाद सहित सन्-२००८ में प्रकाशित है । संपादक विजय कीर्तियशसूरि है । ३०० पृष्ट सजिल्द। २०० रूपये की कीमत का संग्रहणीय एवं अनेक प्रकीर्णकों की जानकारी का भंडार स्वरूप ग्रंथ है ।

(१०) आराधना पताका :- इसमें ९३२ गाथाएँ है । प्राचीन आचार्य कृत है । ३२ विषय विभाजन से वर्णन । महावीर विद्यालय मुम्बई से प्रकाशित है ।

(११) आराधना पताका :- इसमें ९८९ गाथाएँ है । वीरभद्राचार्यकृत है । इसमें समाधिमरण का सांगोपांग वर्णन है । सविचार अविचार दो भेद करके सविचार भक्त परिज्ञा का विस्तृत विवेचन है । फिर तीनों पंडित मरण का वर्णन है । केवल मुम्बई महावीर जैन विद्यालय से मूल प्रकाशित है ।

(१२) पर्यंताराधना :- अज्ञातकर्ता । इसमें २६३ गाथाएँ है । अपर नाम **आराधना सार** है । इसमें विषय वर्णन २४ द्वारों से विभाजित है । अनेक जगह से प्रकाशित है । हिंदी अनुवाद भी हैं ।

(१३) आराधना पंचक :- इसमें ३३४ गाथाएँ है । यह स्वतंत्र ग्रंथ न होकर उद्योतनसूरि के **कुवलयमाला** ग्रंथ से उद्धृत अंश वाला ग्रंथ है ।

अंतकृत केवलियों के नाम निर्देश पूर्वक कर्मक्षय का निरूपण है। उसके बाद भगवान महावीर की प्रेरणा से मणिरथ मुनि, कामजेन्द्र मुनि, वज्रगुप्त मुनि एवं स्वयंभूदेव मुनि का संलेखना ग्रहण, ज्ञान दर्शन चारित्र और वीर्य की आराधना, पंचमहाव्रत रक्षा, ममत्व त्याग, सर्वजीव क्षमापना, दोषप्रतिक्रमण, पंडित मरण की प्रेरणा एवं उसकी आराधना तथा उसके सिद्धि गमन का विस्तार से वर्णन हैं ।

(१४) आराधना प्रकरण :- इसके कर्ता अभयदेव सूरि हैं । इसमें ८५ गाथाएँ है । ६ द्वारों से मरणविधि का वर्णन है । यह मूलपाठ रूप में मुम्बई से प्रकाशित ।

(१५) आराधना :- इस ग्रंथ में **जिनेश्वर श्रावक के प्रति सुलसा श्राविका** द्वारा प्रेरित आराधना संदेश है । इसमें ७४ गथाएँ है । इसमें अंत निकट होने पर अनशन की प्रेरणा, पंच परमेष्ठी स्वरूप निरूपण, एवं उनकी वंदना, नमस्कार महात्म्य, चार मंगल, चार उत्तम, चार शरण। आलोचना, व्रतोच्चार, क्षमापना, वेदना सहन और अनशन उपदेश है । मुम्बई से प्रकाशित हैं ।

(१६) नन्दनमुनि आराधित आराधना :- इसमें ४० गाथाएँ है । यह **संस्कृत भाषा** में लिखा गया है। इसमें नंदनमुनि कृत दुष्कृत गर्हा, क्षमापना, शुभभावना, चार शरणग्रहण, पंच परमेष्ठी नमस्कार एवं अनशन प्रतिपति रूप ६ प्रकार की आराधना का वर्णन है । मुम्बई से प्रकाशित है ।

(१७) आराधना कुलक :- इसमें ८ गाथा है । सबसे छोटा ग्रंथ है । इसमें व्रतोच्चार, जीवक्षमापना, पापस्थान त्याग, दुष्कृत निंदा, सुकृत अनुमोदन, चार शरणा ग्रहण, एकत्वभावना निर्देश है । अज्ञात कर्ता। मुम्बई से प्रकाशित है ।

(१८-१९) मिथ्या दुष्कृत कुलक :- इस नाम से दो ग्रंथ उपलब्ध है । **(१)** इसमें १५ गाथा है । चार गति के सभी जीवों से अलग-अलग क्षमापना है । परमेष्ठी की निंदा, ज्ञानादि की विराधना, चतुर्विध संघ की अवमानना एवं महाव्रत-अणुव्रत के प्रति स्खलना आदि की निंदा है । **(२)** दूसरे में आराधक द्वारा चारगति के प्राणियों

को दिये गये दुख का स्मरण कर क्षमापना । विभिन्न भवों में परिजनों का त्याग, रागद्वेष वश हिंसा, असत्य भाषण, परिग्रह, मिथ्यात्वमोह से मूढ होकर असेवा-भक्ति के प्रति मिथ्या दुष्कृत किया गया है । मुम्बई महावीर विद्यालय से प्रकाशित है ।

(२०) आलोचना कुलक :- इसमें १२ गाथाएँ है । कर्ता अज्ञात है । इसमें विविध प्रकार के दुष्कृत्यों की आलोचना है तथा आलोचना का महात्म्य है । मुम्बई से प्रकाशित है ।

(२१) आत्म विशोधि कुलक :- इसमें भी समस्त लोक के जीवों के प्रति हुए दुष्कृत्यों की निंदा है । इसमें आहार का एवं समस्त शारीरिक क्रियाओं के त्याग का निर्देश है । अंत में आलोचना द्वारा आत्म विशोधि का महात्म्य बताया है । इसमें कुल २४ गाथाएँ है । मुम्बई से छपा है। नंदी सूत्र में नाम है **आत्म विशोधि** ।

(२२) कवच :- इसके कर्ता जिनचन्द्रसूरि । प्राचीन आगमों के पाठों का संकलन होने से प्रमाणिक ग्रंथ है । **अप्रकाशित है ।** इसमें पंडित मरण से संबंधित विषय का प्रतिपादन है ।१२९ गाथाएँ है ।

इसमें क्रमांक ४,५,२१ का नाम नंदी में है, शेष ग्रंथ नंदी रचना के बाद के मध्यकाल में समय समय पर विद्वान मुनि पुंगवों द्वारा रचित प्राकृत ग्रंथ है । क्रमांक १६ संस्कृत भाषा में है । २१ प्रकाशित है, १ अप्रकाशित है बावीसवाँ । कईयों का हिंदी अनुवाद भी आगम संस्थान उदयपुर से हुआ है ।

- आचार्य श्रीमद् विजयकीर्तियशसूरीश्वर द्वारा संपादित
श्रीचतुः शरणप्रकीर्णकम् से साभार उद्धित ।

पुस्तक में विशेष पठनीय स्थल

१) दिगंबर का उत्पत्ति समय । पृष्ट-१०
२) लोकाशाह-लोंकागच्छ के लक्ष्मीविजयजी म.सा. । पृष्ट-११
३) दिगंबर एवं आगम । पृष्ट-१९
४) १८-२० वर्ष में ५०० आगम पुस्तकों के प्रकाशनकर्ता संत । पृष्ट-२५
५) नंदी आगम सूचि के अंत मे रहा प्रकीर्णक पाठ ऐक आश्चर्य । पृष्ट-३७
६) नंदी आगम सूचि में हस्तक्षेप तथा १२ उपांग संख्या खोटीधुन । पृष्ट-४३ । पृष्ट १६३ पेरा दूसरा पृष्ट १६५ तक । पृष्ट १७१ ऐतिहासिक विचारणा ।
७) ऋषिभाषित सूत्र परिचय । पृष्ट-४५ तथा १३३
८) समुत्थानसूत्र परिचय । पृष्ट-४७
९) महानिशीथसूत्र परिचय । पृष्ट-४७
१०) पर्युषणाकल्पसूत्र = चुल्लकल्प-महाकल्पसूत्र का मिश्रण । पृष्ट ४८, पृष्ट - १८५ ।
११) एकलविहारी २०६ साध्विओं का मोक्ष-विशेष नोंध । पृष्ट-१०३
१२) कटुता त्याग शिक्षावचन । पृष्ट ११५-११६ पोइंट-१५
१३) मुनिश्री पुण्यविजयजी म.सा.का प्रकीर्णक संबंधी कथन । पृष्ट १३५
१४) श्रमणोपासक की मानवसेवा, प्रदेशी राजा । पृष्ट-१४५ पोइंट ८।
१५) मूर्तिपूजा कब कहाँ किसके । पृष्ट-१४८ पोइंट - ११,१२
१६) धर्मिष्ठों की मानस दशा - मेरा सो सच्चा । पृष्ट - १६५
१७) साध्वी को गच्छ मुक्त करने का प्रायश्चित । पृष्ट - १७७ पोइंट - ८
१८) एकलविहार निषेध - उत्सूत्र प्ररूपणा । पृष्ट - १९५ पोइंट २७
१९) भाषा विवेक क्या ? पृष्ट - २१९
२०) आगम श्लोक प्रमाण एवं उपधानतप । पृष्ट - २२१, २२२
२१) आगम मूल, छेद, प्रकीर्णक विचारणा । पृष्ट - २३१, २३२ । निष्कर्ष - १, २, ३.
२२) संघ भेद और महामोहकर्म बंध । पृष्ट - २६७ पेरा २-३।

ooo

परिशिष्ट-२

:: भाषा विवेक क्या है ? आगमिक विचारणा ::

खोटे मार्ग के प्रेरक या खोटे आचरण करने वालों को तथा खोटी तर्कें करने वालों को एवं हठाग्रहवृत्ति वालों को शिक्षित करने में भाषा की एकांत मृदुता की बातें करना कभी अत्यंत भूल भरा कर्त्तव्य हो सकता है । इसके लिये कुछ आगम स्थलों का प्रेक्षण करें । यथा- (१) दशवैकालिक सूत्र में(रात्रि में) आहार संग्रह करने वाले श्रमणों के लिये मृदु संकेत नहीं किंतु तीक्ष्ण शब्द प्रयोग करते हुए कहा गया है कि वे श्रमण **गृहस्थ हैं प्रव्रजित नहीं है ।** (२) उत्तराध्ययन अध्य. १७ में कहा कि जो श्रमण प्रतिलेखन में प्रमाद करते हैं, विगयों का सेवन कर तपस्या नहीं करते हैं वे **पापीश्रमण** है । यह कैसा मृदु शब्द प्रयोग है ? देखें । (३) महानिशीथ सूत्र में- उन मिथ्यादृष्टि कुलिंगी (जैन यतियों के समक्ष) उस आचार्य कुवलयप्रभ ने स्पष्ट निडर कथन करके तीर्थंकर नाम कर्म बांधा । (४) दशवैकालिक में- **धिक्कार है हे अपयश के कामी !** ये शब्द एक साध्वी के द्वारा एक चरम शरीरी भूलपात्र श्रमण के लिये प्रयुक्त है । जिसे शास्त्रकार ने संकलित किया और साध्वी के उन वचनों को सुभाषित कहा । (५) भगवती में- हे गौतम ! मेरा **कुशिष्य** गोशालक मरकर बारहवें देवलोक में गया । भगवान स्वयं ने गोशालक के लिये कटुसत्य शब्द प्रयोग किये । (६) रेवति पत्नि को मरकर नरक में जाने का कहने पर महाशतक को प्रायश्चित कराने के लिये भगवान ने गौतम को उसके घर भेजा था । फिर भी गौशालक जैसे विधर्मी को प्रत्यक्ष में भगवान ने कहा कि तूं खुद सात दिन में मर जायेगा । (७) प्रदेशी राजा के लिये केशी स्वामी ने दाण की चोरी आदि अनेक कटु तीक्ष्ण उपमाओं से आक्षेप की भाषा प्रयोग किया था । देखे-***राजप्रश्नीय सूत्र ।*** सार यह है कि भाषा विवेक के विषय में भी जिनशासन में एकांतिकता नही किंतु अनैकांतिकता है । अत: कभी कहीं तीक्ष्ण भाषा प्रयोग भी अनुचित

नहीं होता है, इस सत्य को भी समझने की जरूरत है । शास्त्रों में ऐसे ही अनेक दृष्टांत देखने को खोजने से मिल सकते हैं ।

निष्कर्ष यह हुआ कि खोटी परंपराएँ, खोटे धर्म मार्ग, खोटे इतिहास, खोटा आचार ढोंग, खोटी प्ररूपणाएँ, आगमों में खोटे प्रक्षेप कर्ता, अति होशियारी कर्ता इत्यादि प्रसंगोपात जो भाषा में तीक्ष्णता हो जाय तो उसे गौण करके लेखक या वक्ता के जिनशासन के प्रति हृदयभाव तथा शोधपूर्वक सत्य ज्ञान के श्रम को आदर देने का कर्तव्य पालन करना श्रेयस्कर होता है । किंतु लेखक के आशय की उपेक्षा करके उसके भाषा प्रयोग की निंदा कर कर्मबंध नहीं करना चाहिये । यही पाठकों को हितावह संसूचन करना है । **सुज्ञेषु किं बहुना ।** (समझदारों को इशारा ही काफी है ज्यादा उन्हें क्या कहना ।)

नोटः– ***इस स्पष्टीकरण का उद्देश्य यही है कि हमारे मुमुक्षु पाठक स्वाध्याय से कर्मबंध में नहीं पडकर कुछ ज्ञान और समभाव तथा कर्म निर्जरा हासिल कर आत्म विकास को पावें । तदुपरांत जो कोई मात्र छिद्रान्वेषी या दोषदर्शी बनकर अर्थात् हीनभावनाओं के वशवर्त्ती होकर संपादक लेखक को अंगुली दिखाने की एवं हीलना निंदा कुथली करने में रस लेने की वृत्ति, राग-द्वेष के मानस से करते रहते हैं, वे लेखक के आगम अनुभव एवं श्रम से निर्जरा लाभ करने की वजाय कर्मबंध के लाभ को पाकर अपनी आत्मा को भारी करते हैं । उनके लिये हम अपार करुणा भाव एडवांस में ही प्रेषित कर शुभाकांक्षा करते हैं । ॥ शुभं भवतु सर्व जीवानाम् ॥***

॥ सद्बुद्धिर्भवतु छिद्रान्वेषीनाम्–दोषदृष्टिधारकाणाम् च ॥

ooooo

परिशिष्ट-३

३२ सूत्रों के श्लोक प्रमाण एवं उपधान-तप

क्रमांक	आगम नाम	श्लोक	उपधान तप
(१)	आचारांग सूत्र	२५००	५०
(२)	सूयगडांग सूत्र	२१००	३०
(३)	ठाणांग सूत्र	३७७०	१८
(४)	समवायांग सूत्र	१६६७	३
(५)	भगवती सूत्र	१५७५२	१८६
(६)	ज्ञाताधर्मकथा सूत्र	५५००	३३
(७)	उपासकदशा सूत्र	८१२	१४
(८)	अंतगडदशा सूत्र	९००	१२
(९)	अनुत्तरोपपातिक सूत्र	२९२	७
(१०)	प्रश्नव्याकरण सूत्र	१२५०	१४
(११)	विपाक सूत्र	१२१६	२४
(१२)	उववाई सूत्र	१२००	३
(१३)	रायप्पसेणीय सूत्र	२०७८	३
(१४)	जीवाभिगम सूत्र	४७००	३
(१५)	पन्नवणा सूत्र	७७८७	३८
(१६)	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र	४१४६	१०
(१७-१८)	चन्द्र-सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र	२२००	३
(१९-२३)	उपांग सूत्र (निरयावलिकादि)	११०९	७
(२४)	निशीथ सूत्र	१४१५	१०
(२५)	दशाश्रुतस्कंध सूत्र	७५०	२०
(२६)	बृहत्कल्प सूत्र	४७३	
(२७)	व्यवहार सूत्र	८३५	
(२८)	उत्तराध्ययन सूत्र	२०००	२९
(२९)	दशवैकालिक सूत्र	७००	१५
(३०)	नंदी सूत्र	७००	३
(३१)	अनुयोग द्वार सूत्र	१८९९	१०
(३२)	आवश्यक सूत्र	१२५	८
	टोटल	**६८३७९**	**५५३**

ज्ञातव्य :- यह बत्तीस सूत्रों के मूल पाठ का परिमाण बताया गया है अर्थात् ३२ अक्षरों का एक श्लोक होता है और आचारांग सूत्र का मूल पाठ ऐसे २५०० श्लोक जितना है । इसी प्रकार सभी सूत्रों का श्लोक परिमाण कहा गया है ।

यह परिमाण किसी समय माप करके आंका गया है । इसमें काल क्रम से कुछ हीनाधिक होना भी संभव है । पाठों को संक्षिप्त या विस्तृत करने के कारण से भी फर्क हो सकता है । अतः जहाँ उस सूत्र का श्लोक परिमाण बताया जाय वहाँ ऐसा सूचित करना चाहिये कि, इतने श्लोक परिमाण यह सूत्र माना जाता है । इसके अतिरिक्त किसी को किसी भी संख्या में विश्वास न जमे(कन्फयुझन लगे) तो अक्षर गिन कर ३२ अक्षर का एक श्लोक समझ कर स्वयं श्लोक संख्या का निर्णय-निर्धारण कर लेना चाहिये ।

उपधान :- प्रत्येक सूत्र के गुरुगम वाचनी के साथ या बाद में कुछ तप करना आवश्यक होता है । क्यों कि ज्ञान की आराधना में उपधान करना आवश्यक माना गया है । आगमों में साधु और श्रावक दोनों के श्रुत अध्ययन और उसके उपधान का विधान वर्णन आता है । प्रमाण के लिये देखें नंदी सूत्र ।

यह जो उपधान तप की संख्या बताई गई है वह आयंबिल करने की संख्या है । यदि उपवास करना हो तो २ आयंबिल = एक उपवास होता है ।

नोट :- उक्त श्लोक परिमाण एवं उपधान संख्या में कई मतांतर प्राप्त होते हैं । कुछ परिश्रम करके अर्थात् अभिधान राजेन्द्र कोष आदि देखकर शुद्ध संख्या देने का लक्ष्य रखा गया है ।

परिशिष्ट-४

३२ आगम के अतिरिक्त यत्र-तत्र सूचित श्वेताम्बर आगम या ग्रंथ

(१) **महानिशीथ सूत्र-** ७ अध्य., २ चूलिका, परिमाण-४५५४ (४५००) । नंदी मे नाम है क्रमांक २ से ९ तक भी नहीं है ।

(२) **यति जीतकल्प(सूत्र)-** मूल-१०८ । टीका-१२००० । चूर्णि-१००० । भाष्य-३१२४ । सोमसूरिकृत ।

(३) **श्राद्ध जीतकल्प सूत्र-** मूल-३७५ । धर्मघोष सूरि टीका-२६५० । निर्युक्ति गाथा-१६८ ।

(४) **पंचकल्प सूत्र-** अध्ययन-१६ । मूलपरिमाण-११३३ । भाष्य-३१२५ । चूर्णि-२१३० ।

(५) **पिंडनिर्युक्ति सूत्र-** मूल-७०० । टीका मलयगीरी-७००० ।

(६) **ओघनिर्युक्ति-** मूल-११७० । द्रोणाचार्य टीका-७००० । भाष्य-३००० चूर्णि-७००० ।

(७) **पाक्षिक सूत्र-** सूत्र-३६० । टीका-२७०० (यशोदेवसूरि संवत-११८०) चूर्णि-४०० ।

(८) **यतिप्रतिक्रमण सूत्र वृति-** ६०० परिमाण है ।

(९) **विशेषावश्यक भाष्य-** सामायिक अध्ययन का भाष्य- ५००० जिनभद्रगणि । लघुवृत्ति - कोट्याचार्य या द्रोणाचार्य - १४००० । बृहद्वृत्ति- १८००० मलधारी हेमचंद्राचार्य ।

(१०) **चउसरणपइण्णा-** ६३ गाथा । नंदी में नहीं ।

(११) **आतुरप्रत्याख्यान-** ८४ गाथा । नंदी में है ।

(१२) **भक्तप्रत्याख्यान पइण्णा-** १७२ गाथा । नंदी में नहीं है ।

(१३) **संस्तारक पइण्णा-** १२२ गाथा । नंदी में है ।

(१४) **तंदुलवैतालिक पइण्णा-** ४०० गाथा । नंदी में है ।

(१५) **चंद्रावैद्यक पइण्णा-** ३१० गाथा । नंदी में है ।

अथवा

(१६) **गच्छाचार प्रकीर्णक**– ४ अधिकार । टीका–विमलविजय गणी– ५८५० । नंदी में नाम नहीं है । **इन दो में कोई किसी एक को छोडते या गिनते रहते है ।**

(१७) **देवेन्द्रस्तव पइण्णा**– २०० गाथा । नंदी में है ।

(१८) **गणिविद्या पइण्णा**– १०० गाथा । नंदी में है ।

(१९) **महाप्रत्याख्यान पइण्णा**– १३४ गाथा । नंदी में है ।

अथवा

(२०) **वीरस्तव पइण्णा**– ४३ गाथा । इसकी ४५ में आवश्यकता नहीं है ऐसा राजेन्द्रकोश में लिखा हैं । यह १० पइण्णा से अतिरिक्त है । नंदी में नहीं है । फिरभी **इन दो में कोई किसी एक को छोडते या गिनते रहते हैं ।**

(२१) **समाधिमरण पइण्णा**– ७२० गाथा । नंदी में नहीं ।

(२२) **ऋषिभाषित सूत्र**– ७५० गाथा प्रमाण । नंदी में है ।

(२३) **सिद्ध पाहुड सूत्र**– १५० सूत्र । टीका–७५० । नंदी में नहीं है । इसमें सिद्धों का वर्णन है, भावनगर से प्रकाशित हैं ।

(२४) **द्वीपसागर प्रज्ञप्ति**– संग्रहणी संख्या–२५० गाथा । टीका–२५००, नंदी में है ।

(२५) **अंगविद्या प्रकीर्णक**– ८८०० श्लोक । नंदी में नहीं है ।

(२६) **ज्योतिषकरण्ड पइण्णा**– ५०० गाथा । टीका मलयगिरि– ५४००। पाहुड–३१ । नंदी मे नहीं है ।

(२७) **अंगचूलिका ग्रंथ**– ८०० गाथा । नंदी में है ।

(२८) **उवंग चूलिका (वर्ग चूलिका)** – १०९ गाथा । यशोभद्रकृत। नंदी में हैं ।

---

(२९) **नरकविभक्ति**– नंदी में नाम नहीं है ।

(३०) **गणधरावली**– नंदी में नाम नहीं है ।

(३१) **समुत्थान सूत्र*(देवेन्द्रनरेन्द्रा)***– नंदी में नाम है ।कालिक सूत्रों में ।

(३२) **ध्यानविभक्ति**– नंदी में नाम है ।

(३३) **मरणविभक्ति**– नंदी में नाम है ।

---

(३४) कल्प्याकल्प सूत्र

(३५) चुल्लकल्प सूत्र

(३६) महाकल्प सूत्र

(३७) महाप्रज्ञापना सूत्र

(३८) प्रमादाप्रमाद सूत्र

(३९) क्षुल्लिका विमान प्रविभक्ति

(४०) महल्लिकाविमान प्रविभक्ति

(४१) पोरिषी मंडल

(४२) वियाह चूलिका

(४३) मंडलप्रवेश

(४४) विद्याचरणविनिश्चय

(४५) आत्मविशोधि

(४६) वीतरागश्रुत

(४७) संलेखनाश्रुत

(४८) उत्थान सूत्र

(४९) समुत्थान सूत्र

(५०) विहारकल्प

(५१) चरणविधि

(५२) नागपरियावणिया

(५३) अरुणोववाए

(५४) वरुणोववाए

(५५) गरुलोववाए

(५६) धरणोववाए

(५७) वेसमणोववाए

(५८) वेलंधरोववाए
(५९) देविंदोववाए

---

(६०) पर्यूषणाकल्प सूत्र
(६१) क्षमापना सूत्र
(६२) वंदित्तु सूत्र
(६३) अजीवकल्प
(६४) सिद्ध प्राभृत (दूसरा) एकभवावतारी श्रमणों की सूची वाला ग्रंथ है । अप्रकाशित है ।
(६५) तित्थोगालिय पईण्णा
(६६) आराधना पताका । वीरभद्राचार्य कृत । ९८९ गाथा ।
(६७) तिथि प्रकीर्णक
(६८) योनिप्राभृत
(६९) पिंडविशुद्धि
(७०) सारावली
(७१) पर्यंताराधना
(७२) जीवविभक्ति
(७३) कवचप्रकरण
(७४) वृद्धचतु:शरण
(७५) जम्बूपयण्णा
(७६ से ८३) निर्युक्ति व्याख्याएँ- ८(आठ) = २ अंगसूत्र प्रारंभ के, २ मूलसूत्र- उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, ३ छेदसूत्र(निशीथ छोडकर), आवश्यक ।
(८४) ऋषिभाषित निर्युक्ति
(८५) सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति
(८६) संसक्त निर्युक्ति

---

(८७) आराधना पंचक
(८८) आराधना प्रकरण
(८९) आराधना सुलसाश्राविका रचित
(९०) आराधना नंदनमुनि आराधित
(९१) आराधना कुलक
(९२) मिथ्यादुष्कृत कुलक
(९३) आलोचना कुलक
(९४) आत्मविभक्ति
(९५) कृतिकर्म
(९६) चारणस्वप्न भावना ।
(९७) तेजोनिसर्ग
(९८) दीर्घदशा
(९९) दृष्टिविष भावना
(१००) दोगिद्धिदशा
(१०१) पुण्डरीक
(१०२) बंधदशा
(१०३) मरणविशोधि
(१०४) महापुंडरीक
(१०५) महास्वप्न भावना
(१०६) वैनयिक
(१०७) संक्षेपिकदशा
(१०८) संग्रहणी
(१०९) आशीविष भावना
(११०) निशीथ सूत्र : निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि ।

११० का परिचय एवं निष्कर्ष :-

(१) क्रमांक १ से २८ तक अभिधान राजेन्द्रकोश में से संग्रहित किये है । ***-भाग-१, पृष्ठ-३१ से ३५ तक ।***

(२) क्रमांक २९ से ३३ तक श्वे. मूर्तिपूजक आचार्य प्रद्युम्नसूरी कृत **विचार सार प्रकरण** ग्रंथ मे से संग्रहित किये हैं । जो लोकाशह के पूर्व वि.सं. १४वीं सदी का रचित ग्रंथ हैं ।***-श्लोक नं. ३४४ से ३५१*** तक । वहां ४५ आगम के नाम हैं ।

(३) क्रमांक ३४ से ५९ तक नंदी सूत्र की आगम सूचि से संकलित किये हैं ।

(४) क्रमांक ६० से ८६ तक आचार्य देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री के ग्रंथ **जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा,** पृष्ठ-३२ की **चौरासी आगम सूचि** से संकलित किया है । तथा प्रबुद्ध जीवन मुम्बई मासिक से ।

(५) क्रमांक ८७ से १०९ तक श्रीमद् विजयकीर्तियशसूरी संपादित चतु:शरण प्रकीर्णक ग्रंथ से संग्रहित किये है ।- ***प्रस्तावना पृष्ठ-३३ से ४६ तक ।***

(६) *क्रमांक ११० निशीथ सूत्र निर्युक्ति का नाम उपर के पाँचों स्थलों की सूचि में नहीं आया है ।* आचार्य भद्रबाहुस्वामी ने १० सूत्रों पर निर्युक्ति रचना करी है, उसमें से ९ निर्युक्ति का नाम उपर की सूचि में आ चुका होने से ११०वाँ नाम इस निशीथ निर्युक्ति-चूर्णि का रखना आवश्यक होने से रखा गया है ।

(७) ये ११०+३२ आगम=१४२ श्वे. जैन आगम-ग्रंथ(जैन साहित्य) होते हैं । **१.** इनमें से नंदी सूत्रोक्त-२४ शास्त्र अनुपलब्ध है । जिसकी सूचि इस पुस्तक में दी है तथा **२.** उक्त सूचि के क्रमांक-९४ से १०९ तक १६ आगम-ग्रंथ अनुपलब्ध है । अत: कुल २४+१६ = ४० आगम-ग्रंथ अनुपलब्ध है । जिससे १४२-४० = १०२ आगम-ग्रंथ (जैन साहित्य) प्राप्य- उपलब्ध है । इसमें ३२ आगम सर्वश्वेतांबर समाज को एक मत से

मान्य है । शेष १०२-३२ = ७० की मान्यता में अनेक विकल्प मतभेद है अर्थात् शेष ७० को स्थानकवासी जैनों ने आगम रूप में नहीं माना है, यह उनकी अपनी परंपरा है । श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज की इन ७० के विषय में आगम मानने की परंपरा निश्चित नहीं है । कहीं कभी कोई किसी को ४५ आगम में रखता है कोई उसे ही निकाल कर किसी दूसरे को ४५ आगम में गिन लेता हैं । यों ४५ आगम के निर्णय में उनकी अस्थिर मानसिकता प्रगट होती हैं । अर्थात् स्था. मान्य ३२ आगम तो वे स्थिर रूप से मानते ही है । शेष १३ को गिनने में वे अस्थिर चित और विविधता वाले हैं ऐसा स्वयं मूर्तिपूजक विद्वान श्रमण आदि अपने लेखन में स्वीकार करते हैं । उनके लेखन का उद्धरण भी इस पुस्तक में संकलित है । पाठक आगे पीछे ध्यान से देखेंगे तो पढ पायेंगे।

निष्कर्ष(तुलना-विचारणा) :-

(१) **अभिधान राजेन्द्र कोश :-** राजेन्द्रकोश में ४५ आगम संख्या लिखते हुए भी कुल ५१/६० आगम नाम वहाँ लिखकर उनका परिचय, ग्रंथाग्र वगैरह दर्शाये हैं । अर्थात् ४५ की संख्या में स्थिरता नहीं रखी है ।

(२) **विचारसार ग्रंथ :-** लोकाशाह के पहले विक्रम की १४वीं शताब्दि में श्वेतांबर मूर्तिपूजक आचार्य प्रद्युम्नसूरि ने यह ग्रंथ संस्कृत भाषा में बनाया है । जिसकी गाथा-३४४ से ३५१ तक में ४५ आगम के नाम गिनाये है जिसमें ४५-३२=१३ विशेष आगम इस प्रकार कहे हैं- (१) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति (२) ऋषि भाषित (३) तंदुलवैतालिक (४) चंद्रावेद्यक (५) गणिविद्या (६) नरकविभक्ति (७) आतुर प्रत्याख्यान (८) गणधरावली (९) समुत्थानसूत्र-***देवेन्द्रनरेन्द्रा*** (१०) मरणविभक्ति (११) ध्यानविभक्ति (१२) पाक्षिक सूत्र (१३) देवेन्द्र संस्तव । इस ग्रंथ में दर्शाये ४५ आगम नाम आगे प्रश्नव्याकरण सूत्र के परिचय में दिये हैं ।

विचारणा :-

(१) इस विचारसार ग्रंथ में १४वीं सदी के आचार्य ने (१) महानिशीथ (२) जीतकल्प भाष्य (३) पंचकल्प सूत्र (४) ओघनिर्युक्ति (५) पिंडनिर्युक्ति । इन पाँचों को (छेद सूत्रों को + निर्युक्ति को) आगम ४५ में नहीं गिना है । क्यों कि वास्तव में वे आगम की परिभाषा में नहीं आते हैं । वर्तमान में इन पाँचों को आगम गिना जाता है । उसका क्या कारण है मूर्तिपूजक विद्वान सोचे !!!

(२) विक्रम की १४वीं सदी के विद्वान आचार्य द्वारा गिनाये गये १३ आगम नामों में और वर्तमान में गिनाये जाने वाले १३ आगम नामों में बहुत भिन्नता है । राजेन्द्रकोष बीसवीं सदी में बने हैं और विचारसार ग्रंथ १४वीं सदी में बना है।तथापि उपरोक्त प्राचीन १३ में से निम्न ७ को ४५ आगम में गिनना छोड दिया है। यथा- (१) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति (२) ऋषिभाषित सूत्र (३) नरक विभक्ति (४) गणधरावली (५) समुत्थान सूत्र-***देवेन्द्रनरेन्द्रा*** (६) ध्यान- विभक्ति (७) मरणविभक्ति ।

(३) विचारसार ग्रंथ के १३ आगम नामों में देवेन्द्रस्तव और देवेन्द्रनरेन्द्रा ये दो नाम है, जिसमें देवेन्द्रस्तव का नाम नंदीसूत्र आदि अनेक सूचियों में आता है, देवेन्द्रनरेन्द्रा नाम उसी का पर्याय शब्द भ्रम से अलग नाम रूप में समुत्थानसूत्र(जिसका नाम नंदी सूत्र की मौलिक सूचि में कालिक आगम में है) की जगह लिखा गया हो ऐसा प्रतीत होता है । अतः देवेन्द्रनरेन्द्रा बदला हुआ नाम समझना चाहिये । क्यों कि आचार्य कीर्तीयशसूरि द्वारा संपादित चतुःशरण प्रकीर्णक ग्रंथ की प्रस्तावना में समस्त प्रकीर्णकों का संग्रह करके ४५ आगम के सिवाय कुल ८८ प्रकीर्णक नाम या परिचय सहित गिनाये हैं । उसमें देवेन्द्रस्तव का परिचय एवं नाम आया है किन्तु इतनी बडी प्रकीर्णकों की सूचि में देवेन्द्रनरेन्द्रा नाम का कोई कथन नहीं है । अतः वह नाम बाद में किसी ने समुत्थान सूत्र को हटाकर

उसकी जगह रखा है । इसीलिए इसका नाम उक्त ८८ प्रकीर्णक संकलन में भी नहीं आ पाया हैं । जबकि समुत्थान सूत्र का नाम तो नंदी सूत्र की आगम सूचि के कालिक विभाग में हैं । यह बात जगजाहिर है अर्थात् पूर्ण प्रमाणित है ।

निष्कर्ष-१ :-

महत्त्व की बात यह है कि ७०० वर्ष पहले के मूर्तिपूजक आचार्य ने अपने ग्रंथ में ४५ आगम में १३ अतिरिक्त आगम सीधे ही गिना दिये है ऊपर प्रमाणे । किंतु उन्हें किसी को **प्रकीर्णक** नहीं कहा है तथा किसी के नाम के साथ प्रकीर्णक शब्द नहीं लगाया है। इसका तात्पर्य यह होता है कि उस समय तक प्रकीर्णक विभाग का प्रचलन नहीं हुआ होगा । इसके अतिरिक्त १४वीं सदी के उन ४५ आगम में मूलसूत्र, छेदसूत्र वगैरह विभाजन या अलगाव भी नहीं किया गया है । किन्तु क्रम बिना छेद, मूल, प्रकीर्णक ऐसे सूचन बिना व्युत्क्रम से २२ नाम(४ मूल, ६ छेद, १० प्रकीर्णक, २ चूलिका) गिना दिये है, कोई भी पाठक प्रश्नव्याकरण सूत्र के परिचय में लिखे गये उन नामों को देखकर जान सकता है ।

निष्कर्ष-२ :-

आचार्य कीर्तीयशसूरि के संपादित चतुःशरण ग्रंथ की प्रस्तावना में इस तरह लिखा है- *"प्राचीन आगम ग्रंथों में ऐसा कहीं भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि अमुक अमुक ग्रंथ प्रकीर्णक के अंतर्गत है । नंदीसूत्र और पाक्षिक सूत्र दोनों में आगमों के विभिन्न वर्गों में प्रकीर्णक वर्ग का उल्लेख नहीं है । यद्यपि इन दोनों ग्रंथों में आज हम जिन्हें प्रकीर्णक(१०) मानते है उनमें से ९ ग्रंथों का उल्लेख कालिक एवं उत्कालिक आगमों के अंतर्गत आता है । कालिक के अंतर्गत ऋषिभाषित और द्वीपसागरप्रज्ञप्ति का तथा उत्कालिक के अंतर्गत देवेन्द्रस्तव, तंदुलवैचारिक, चन्द्रावैद्यक, गणिविद्या, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान और मरणविभक्ति आता*

है । आगमों का अंग, उपांग, छेदसूत्र, मूलसूत्र, चूलिकासूत्र एवं प्रकीर्णक सूत्र के रूप में विभाजन सर्व प्रथम आचार्य जिनप्रभ के ***विधिमार्गप्रपा*** *ग्रंथ में मिलता है । जो ईसा की १४वीं शताब्दी में(विक्रम की १५ वीं शताब्दि में) रचा गया है ।"*

प्रकीर्णक ग्रंथ के उक्त लेखन का तात्पर्य भी यही होता है कि-१४वीं १५वीं शताब्दी के पहले मूल, छेद, प्रकीर्णक, चूलिका आदि आगमों के विभाजन और नामकरण नहीं हुए थे । अर्थात् ये सारे विभाजन बाद के है । मौलिक विभाजन तो नंदीसूत्र, पाक्षिक सूत्र, अनुयोगद्वारसूत्र में— अंगप्रविष्ट, अंगबाह्य, कालिक, उत्कालिक और आवश्यकसूत्र रूप जो मिलता है वही प्राचीन विभाजन रहा है।अत: वर्तमान के आगम विभाजन रूप मूल, छेद, प्रकीर्णक आदि के विवाद में नहीं पडना चाहिये । अत: प्रकीर्णकों को आगम मानने मनवाने संबंधी आग्रह एवं विधानों की चर्चा निरर्थक ही बुद्धि की कसरत करना है।

सीधी सरल बात तो यह है कि नंदी सूत्र की रचना के बाद विद्वान श्रमणों आदि के द्वारा बनाये गये समस्त ग्रंथों को जैन साहित्य मानते हुए अनुकुलता अनुसार सादर स्वाध्याय कर ज्ञान लाभ प्राप्त करना चाहिये । किंतु आगम गिनने गिनाने का और नंदी सूत्रोक्त आगम के समकक्ष मानने मनवाने का खोटा प्रयास करने में नहीं पडना चाहिये ।

निष्कर्ष-३ :-

नंदीसूत्र की सूचि में जितने कालिक और उत्कालिक अंगबाह्य आगम कहे हैं उसके अतिरिक्त आज जो भी ग्रंथ मिलते हैं उनके कालिक उत्कालिक रूप कोई भेद नहीं होता है और उनको आगम भी नहीं कहा जा सकता है । क्यों कि नंदीसूत्र की आगमसूचि में उनका नाम नहीं गिनाया गया है, अत: वे सभी सामान्य रूप से जैन साहित्य है और उनका कालिक- उत्कालिक कोई भेद नहीं होता है ।

इन जैन साहित्य में हिंसा आदि पापों की एवं आगम विपरीत तत्वों की प्ररूपणा नहीं हो तो वे सभी जैनाचार्यों या जैन श्रमणों द्वारा रचे गये ग्रंथ जैन साहित्य के रूप में सदा सादर सन्माननीय ही है । साथ ही इन्हें नंदी सूत्रोक्त आगमों की कोटि में तुल्य या बढकर कहना समझदारी नहीं है किन्तु व्यामोह या खोटा हठाग्रह रूप बनता है तथा ऐसा करने से निरर्थक का अति प्ररूपण दोष भी लगता है । उस अति प्ररूपण दोष के कारण उस जैनसाहित्य का जितना सन्मान स्वाभाविक होना जरूरी है वह भी उपेक्षित होकर निंदापात्र होता है और सत्याग्रही सामान्य जन तथा विद्वानों में वह साहित्य उपेक्षणीय और तिरस्कृत बनता जाता है । इसके दोष के भागी और अंतराय के भागी भी वे अतिप्ररूपण कर अतिशयोक्ति में आकर इन जैन साहित्य को जैनसाहित्य न रहने देकर आगम कहने का दुराग्रह करने वाले होते हैं ।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस साहित्य का सिद्धांत से जितना महत्व है उतना ही रखना चाहिये, अति महत्व बताने में लाभ की जगह हानि ही अधिक पल्ले पडती है ।अंतराय भी होती है और उत्सूत्र प्ररूपणा तथा झूठ का दोष लगकर सत्यमहाव्रत दूषित होता है। सरलता, निष्कपटता नहीं रहने से नैतिकता भी नष्ट होती है। इन सब के फल स्वरूप ***धर्म स्थाने कृतं पापं*** का दोष भी लगता है । जिससे कर्मनिर्जरा की जगह कर्मबंध ही विशेष होता है और अतिशयोक्ति के कारण अनेक पापों का सेवन भी होता है ।

सार यह है कि प्रकीर्णक साहित्य भी समादरणीय जैनसाहित्य है, किन्तु उन्हें आगम रूप में कहना सर्वथा अनुचित होता है जिनका नाम नंदी सूत्रोक्त आगम सूचि में नहीं है । इसके उपरांत जिस किसी जैनसाहित्य में वीतराग मार्ग विपरीत सावद्य प्रेरक प्ररूपण, निरूपण हो वह भी गंभीरता से सोचने योग्य होता है ।

००००

परिशिष्ट-५

जैन धर्म के सिद्धांत एवं क्रियाओं के प्रति वैज्ञानिकता विज्ञान-मनोविज्ञान-शरीर विज्ञान

इस जगत के मनुष्यों को रोग-पीड़ा-व्याधि बहुत दु:खकारी लगती है तथापि औदरिक शरीरी मानव प्राय: कोई न कोई रोग से ग्रस्त होता रहता है और उस रोग से मुक्त होने के लिये वह वैद्य डॉक्टर आदि की शरण में जाता रहता है । चिकित्सक वैद्य दैहिक एवं मनोदैहिक रोगों की अपनी कार्य पद्धति के द्वारा चिकित्सा करते हैं । वे शारीरिक मानसिक कोई भी रुग्णता का उपचार करके रोगी को रोगमुक्त करने में सफल प्रयत्न करते हैं । फिर भी उनका उपचार शरीर तक ही सीमित होता है । जब कि जैन दार्शनिक महादार्शनिक तीर्थंकर प्रभु वीतराग परमात्मा शारीरिक उपचार से भी आगे उठकर आत्म शुद्धि की चिकित्सा को मानव जीवन से जोड़कर जन्म-मरण आदि महा रोगों को, भवभ्रमण के चक्कर को मिटाने वाले परम चिकित्सक वैद्यराज है । वे इस जगत के प्रत्येक प्राणी की बिना मूल्य चिकित्सा करते हैं । **परम दयालु परम वैद्य तीर्थंकर** और उनके शिष्य प्रशिष्यादि गुरुभगवंतों के द्वार सभी की लिये खुले रहते हैं । वे जीवनभर इस उपकारी प्रवृत्ति हेतु ग्रामानुग्राम भ्रमण-विचरण करते रहते हैं । उनकी औषध भी कहीं से क्रयविक्रय किये बिना सीधे ही रोगी को उनके पास से ही मिल जाती है । उन एक परमात्मा की परंपरा में सैकडों हजारों चिकित्सक तैयार होकर आगे से आगे यही उपकारी प्रवृत्ति करते हुए स्व पर उभय की आत्मा का परम कल्याण नि:स्वार्थभाव से करते रहते हैं ।

फ्रोइडबाद में जिस तरह शुभ विचार वगैरह का शुभ संकल्पों में परिवर्तन किया जाता है इसी तरह जैन दर्शन में **भावना** एवं **लेश्याओं** का वर्णन है और उसके परिवर्तन की कला स्वयं मानव के अधिकार में दर्शाई गई है अर्थात् अपने परिणामों, लेश्याओं का अधिकारी मानव स्वयं होता है ।

कर्मवाद के चिंतन में उद्वर्तना, उदीरणा, संक्रमण वगैरह अवस्थाओं में कर्म क्षय होते रहते है जिससे आत्मा हलुकर्मी और पवित्र बनती रहती है ।

आत्मा को प्राप्त मनरूपी उच्च साधन के द्वारा उसकी मुख्यता से प्राणी के जानते अजानते अथवा जागृत अवस्था या स्वप्न अवस्था में भी पापों का सेवन हो जाता है । उन सूक्ष्म पापों के प्रायश्चित्त या प्रतिक्रमण के लिये भी जैनागमों में आवश्यक सूत्र में विस्तार से विश्लेशण प्राप्त होता है उस सूत्र के मार्गदर्शन का पवित्र हृदय से आचरण क्रियान्वित करने से मानव कर्ममुक्त होकर सिद्धावस्था तक पहुँच सकता है ।

अचेतन मन की तुलना अपने कार्मण शरीर के साथ कर सकते हैं । अपने वश में किये गये वचन और काया की प्रवृत्तियों का संबंध कार्मण शरीर के साथ होता है । आज मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में जितने भी शोधकार्य किये जा रहे है, वे हमारे कार्मण शरीर तक ही सीमित है । जबकि जैन दर्शन के सूत्रानुसार यह शोध तैजस, कार्मण या औदारिक शरीर से भी आगे है अर्थात् जीवात्मा एवं शुद्धात्मा तथा सिद्धात्मा तक पहुँचने की सफल प्रक्रिया अर्थात् साधना आगमों में दर्शाई है ।

जैन दर्शन में संमोहन की बात भी आती है । परंतु आदर्शभूत संमोहन के रूप में होती है । मनोचिकित्सक रोगी के शरीर को शिथिल करके अचेतन में व्याप्त चिंता और विकार की जड तक पहुँचते हैं । वैसे ही जैन आगम में आवश्यक और अंतर तप में **कायोत्सर्ग** की विधि बताई गई हैं । कायोत्सर्ग अर्थात् शरीर को शिथिल करना यह आत्म संमोहन क्रिया है । ध्यान युक्त कायोत्सर्ग की क्रिया से नीडरता, व्यसन-मुक्ति, एकाग्रता तथा निर्णय शक्ति का विकास होता है ।

लोगस्स भी एक मनोवैज्ञानिक पद्धति है जो आत्म से परमात्मा तक पहुँचाने में आत्म शुद्धिकरण की प्रक्रिया दर्शाता है । लोगस्स परम पुरुषों की स्तुति द्वारा अपने अजागृत मन की शक्तियों को जागृत कर आत्मा को आध्यात्मिक ऊँचाइयों में पहुँचाने में मदद करता है ।

जैनों के अनुष्ठानों में वंदन की प्रक्रिया आती है । जैनाचार्यो ने जो नमन करने का कहा है उसमें भी शरीर विज्ञान, योगविज्ञान तथा मनोविज्ञान के परिबल काम करते हैं । झुकने से अपना पेट दबता है और पेट के नीचे की पेन्क्रियास में से रस झरता है वह तामसी तत्त्वों को शांत करता है यह शरीर की प्रक्रिया हुई । पंचाग प्रणाम अथवा साष्टांग प्रणाम की क्रिया में हाथ, पांव, मस्तक या सम्पूर्ण शरीर पृथ्वी के निकट अथवा संस्पर्श में जाने से वैश्विक चेतना का अपने साथ अनुसंधान होने से जगत की अनेक शक्तियों का अपने में सहज प्रवेश होता है । बाह्याकृति के साथ अंतर परिणामों में परिवर्तन होने से प्रणाम या वंदन के लिये जब झुकते हैं तब हमारे भीतर का अहंकार भी झुकता है । अपने अंदर से अपने चौरतफ सतत निकलता और बनता अहं का सुरक्षा का घेरा टूटने लगता है । इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया से अपने द्वारा रचित अहं और मम की दीवालों में (मैं और मेरेपन के घोष में) तिराड़े पड़ने लगती है । जिससे शरणागति के आभ्यंतर भावों को प्रवेश मिलने मे सहायता होती है । यों भावना के अभिप्रेत होने से लोकोत्तर वंदन की यात्रा देवगुरु की शरणागति में परिणमती है । आगम आवश्यक सूत्र तथा अन्य शास्त्र उत्तराध्ययन आदि में वंदना के विषय में प्रेरणा मिलती है ।

आधुनिक मनोविज्ञान के निरीक्षण परीक्षण अनुसार कोई भी व्यक्ति के चित्त की एकाग्रता सामान्यत: ४८ मिनिट से ज्यादा नहीं रह सकती है । जैनधर्म के आचरणों में प्रमुख सामायिक साधना का समय प्राचीन समय से ४८ मिनिट का ही रखा है और ध्यान शतक की रचना करनेवाले जैन महात्माने भी ध्यान की परिभाषा में एक मुहूर्त मात्र चित का अवस्थित होना बताया है ।

सूत्रकृतांग आगम में आर्द्रक नामक अध्याय है जिसमें हस्ती-तापसों का ऐसा कथन दर्शाया है कि आहार के लिये अनेक वनस्पति एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा करने की अपेक्षा तो एक हाथी मारकर पाँच-छ महीने जीवन यापन करना अल्प हिंसा है । इस प्रकार करके वे हस्ती-

तापस स्वयं को अधिक अहिंसक सिद्ध करते हैं । परन्तु जैनमतानुसार हिंसा अहिंसा के विवेक में कितने प्राणियों की हिंसा हुई यह महत्त्व का नहीं है किंतु किस प्राणी की हिंसा हुई है वह ज्यादा महत्त्व का है । भगवती सूत्र में इस प्रश्न के विषय में चिंतन करते हुए दर्शाया गया है कि स्थावर जीवों की अपेक्षा त्रस जीवों की और त्रस जीवों में मनुष्य की तथा मनुष्यों में भी ऋषिमहर्षि की हिंसा विशेष निकृष्ट मानी गई है । आगम मनीषी लोको ने प्राणियों की प्राण संख्या अर्थात् जैविक शक्ति के विकास का विशिष्ट संशोधन प्रस्तुत करके हिंसा आत्मा की या जीवों की नहीं किंतु प्राणियों के प्राणों की होती है, ऐसा प्रतिपादन किया है । इसलिये हिंसा-अहिंसा के विवेक में संख्या का महत्त्व नहीं परन्तु प्राणियों के ऐन्द्रिक शक्ति एवं आत्मशक्ति का महत्त्व है ।

तदुपरांत हिंसा अहिंसा के विवेकपूर्ण व्यवहार में हिंसक भाव, कषायों की तीव्रता एवं बाह्य घटना सिवाय कर्ता की मनोवृत्ति पर हिंसा का मुख्य आधार रहा हुआ है । इस विश्लेषण में जैन आगमों में समाज चिंतन तथा अनेकांतवाद अभिप्रेत है ।

जैन सूत्रों में **तप** को कर्म निर्जरा का साधन रूप गिना है तथापि बाह्य और आभ्यंतर तप में वैज्ञानिक अभिगम की अवगणना भी नहीं हुई है । उपवास, ऊणोदरी या आयंबिल आरोग्य के लिये अर्थात् शरीर स्वास्थ्य के लिये भी उत्तम है । उपवास में भोजन नहीं करने से समग्र पाचनतंत्र को पाचन क्रिया के कार्य में अल्पविराम मिलने से पाचनतंत्र में शुद्धिकरण का प्रारंभ होता है और पूरे शरीर में स्वशुद्धिकरण की प्रक्रिया चालु होती है । शरीर में कहीं भी विषैले द्रव्यों का जमाव हुआ हो तो उपवास के समय में वह ओटोलिसिस की प्रक्रिया द्वारा क्षीण होना शुरू होता है । और उसमें रहे हुए उपयोगी तत्त्व शरीर के महत्त्व पूर्ण अंग हृदय, मगज वगेरे को पोषण देने के काम में आते हैं एवं मात्र विष तत्त्व ही शरीर के बाहर कर दिया जाता है । शरीर की गांठों का और अल्प उपयोगी पेशियों का भी विसर्जन होता है जिससे शरीर निर्मल एवं निरोगी बनता है ।

जैन धर्म के अनुष्ठानों में प्रतिक्रमण ध्यान आदि में किये जाने वाले **आसन या मुद्राएं** भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त है । णमोत्थुणं, इच्छामि खमासमणो, चत्तारि मंगल और पांच पद की भाव वंदना आदि के समय की जाने वाली मुद्राओं एवं आसनो में एक्युप्रेसर की क्रियाएँ सहज में हो जाती है । णमोत्थुणं आदि के समय की जाने वाली मुद्रा या आसन के कारण से होने वाली शारीरिक क्रियाएँ ब्रह्मचर्य पालन में विकार वृत्ति की उपशांति में मददगार बनती है । दंडासन, लकुटासन, उत्तानासन, अवमासन, गोदोहिक आसन ध्यान या निर्जरा में सहायक होने के साथ-साथ अंत:स्राव से ग्रंथियों के संतुलन एवं रूधिराभिषण के लिये भी उपकारी होते हैं ।

कंदमूल में अनंत जीव होते हैं यह वर्तमान वैज्ञानिकों ने खोज की है परन्तु जैन आगमों में तो हजारों वर्ष पहले से बता दिया गया है एवं श्रावकाचार के वर्णनप्रसंग में उन कंदमूल का आहार त्याग करने की भी श्रावकों के लिये प्रेरणा भगवती सूत्र में हुई है ।

जैन धर्म सिद्धांतानुसार जीवों का **जन्म तीन प्रकार** में से किसी एक प्रकार से होता है । **(१) संमुर्च्छिम जन्म–** नर-मादा के संयोग बिना ही उत्पत्ति स्थान में जीवों की उत्पत्ति होती है । जिसे वैज्ञानिकों ने ई.सन की १८वीं १९वीं सदी के आसपास शोध करके बताया कि नरमादा के संबंध बिना भी जीव उत्पन्न हो सकते हैं, वंश वृद्धि हो सकती है । इस जन्म को वैज्ञानिकों ने अजातीय प्रजनन कहा है । प्रजनन का अर्थ तो सजीव में से सजीव का उत्पन्न होना है जब कि जैन सिद्धांतानुसार तो कर्म फिलोसोफी प्रमाणे ही जीव उत्पन्न होता है प्रजनन तो उसके बाद की प्रक्रिया है । **(२) गर्भजजन्म–** इसमें स्त्री पुरूष के संयोग के बाद शुक्र-शोणित के मिश्रित पुद्गलों में जीव उत्पन्न हो जाता है । फिर वह अलग-अलग प्राणियों के गर्भ में अलग-अलग समय प्रमाणे रहकर विकसित होकर फिर योनि द्वारा उसका जन्म होता है । इसे विज्ञानिक सजातीय प्रजनन कहते हैं । (३) **उपपात जन्म–** नारकी–देवताओं में ही यह जन्म उपपात शय्या में स्वत: हो जाता है इस तक वैज्ञानिकों की कोई पहुँच या कल्पना नहीं हुई है ।

वैज्ञानिको द्वारा १८वीं सदी में खोज की हुई बात जैन शास्त्रों में हजारों वर्ष पहले से ही अंकित है । समुर्च्छिम का अर्थ है माता-पिता के संयोग बिना जीवों का उत्पन्न होना । ऐसा जन्म एकेन्द्रिय-पाँच स्थावरजीवों में तथा हलते-चलते त्रसजीव-बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय एवं पंचेंन्द्रिय पशु पक्षी और मनुष्यों में भी होता है । संमुर्च्छिम मनुष्यों की अपेक्षा ।

ब्रह्मचर्य पालन के लिये जैन आगमों में नियम बताया है कि साधु को स्त्री, नपुंसक अथवा तिर्यंच-पशु रहित मकान-उपाश्रय में रहना चाहिये । यह नियम भी बडी महत्त्व की वैज्ञानिकता और रहस्य से भरपूर है । प्रत्येक जीव में सूक्ष्म प्रमाण में विद्युतशक्ति(इलेक्ट्रीसिटी) रही हुई होती है । जैसे कि समुद्र में इलेक्ट्रिकल नामक मछली होती है वह अपने शरीर से अत्यधिक प्रमाण में विद्युत पैदा करती है । जहाँ विद्युत शक्ति होती है वहां चुम्बकीय शक्ति भी होती है । यों हम सभी में जैविक विद्युत चुम्बकीय शक्ति होती है । इससे प्रत्येक जीव का अपना जैविक विद्युत चुम्बकीय क्षेत्र भी होता है । यह बात पश्चिम के वैज्ञानिकों ने प्रमाणित की है । चुम्बक में सामान्यत: समान ध्रुवों के प्रति अपाकर्षण और असमान ध्रुवों के प्रति आकर्षण होता है । यदि वे दोनों ध्रुवों एक-दूसरे की क्षेत्र सीमा में हो तो ही आकर्षण होता है । इसी कारण ब्रह्मचर्य पालन के नियम में कहा गया है कि स्त्री, पुरुष के तथा पुरुष, स्त्री के नेत्र, मुख आदि अंगोपांगो को स्थिर दृष्टि से नहीं देखे तथा स्त्री-पुरुष एक आसन पर पास-पास में नहीं बैठे । तथा यह भी नियम है कि जहाँ अधिक समय स्त्री बैठकर उठ गई हो वहाँ पुरुष तत्काल नहीं बैठे और जहाँ पुरुष बैठकर उठा हो वहाँ ब्रह्मचारिणी स्त्री तत्काल नहीं बैठे कुछ समय(अंतर्मुहूर्तादि) बीतने के बाद बैठा जा सकता है । इस नियम में भी चुम्बकीय शक्ति की महत्ता स्वीकार की गई है । जो सर्वथा वैज्ञानिक मनोवैज्ञानिक स्तर का नियम है ।

जैन आगमों में पर्यावरण संबंधी सीधा उल्लेख नहीं मिलता है तो भी आगमों में जो श्रमण-श्रमणोपासकों की जीवन शैली का

वर्णन है वह पर्यावरण संतुलन का पोषक है । आगमों में पृथ्वी, पानी, अग्नि,वायु और वनस्पति में जीव होना स्वीकार कर उसका वेस्टेज-दुरुपयोग अति उपयोग नहीं करने का निर्देश-निरूपण है । जैन धर्म का महत्वपूर्ण सिद्धांत अहिंसा अपरिग्रह एवं संयम के लिये जिन नियमों का संसूचन है वह भी पर्यावरण संतुलन का पोषक है । तत्त्वार्थ सूत्र में-**परस्परोपग्रहो जीवनाम्** यह सूत्र भी दर्शाता है कि जीवों को जीवन के लिये एक दूसरे का परस्पर अवलंबन की जरूरत होती है । यह कथन भी पर्यावरण की रक्षा के लिये अति उपयोगी होता है । इर्यावाहि सूत्र जीव विराधना का सूत्र है अर्थात् उसमें जाने-अनजाने कोई जीव को पीड़ा पहुँचाई हो तो उसकी माफी मांगने में आई हैं ।

अतिरिक्त **भोग-उपभोग** और असंयम विश्व की कुदरती संपत्ति का दुर्व्यय करने वाला होता है । इसीलिये जैन आगम उपभोग से उपयोग की संस्कृति तरफ मुड़ने की प्रेरणा करता है । अमर्यादित भोग-उपभोग जगत में निरर्थक का कचरा बढ़ाता है जिससे वेस्ट मेनेजमेंट पूरे विश्व के लिये दु:खदाई बना है । जैनागमों में पांच समिति तीन गुप्ति रूप **अष्ट प्रवचन माता** का कथन है जिसमें **परिष्ठापनिका समिति** आजके संदर्भ में रिमार्क करने योग्य है जो यह सिखाती है कि फिजूलकी अनुपयोगी वस्तु कचरे का निकाल किस तरह करना चाहिये ।

आज व्यक्ति-मानव, प्रकृति से बहुत दूर होता जा रहा है जिससे कुदरत के संदेशों को वह समझ नहीं सकता है । कुछ समय पहले आये विनाशकारी सुनामी की मौजों के उत्पतिस्थल के कम्पन्न का संदेश थाइलेण्ड के हाथियों ने किस इलेक्ट्रिक उपकरणों से सुना होगा ? प्रकृति के संदेशो को समझने के लिये प्रकृति ने जीवन के साथ शरीर में चेतना या प्रकृति के तार जोड़े हैं । फोटो रिसेप्निस ग्रंथियाँ मनुष्य में निर्बल होती जा रही हैं ।

उपाश्रय के किसी एक छोटे से कमरे में एकांत में या पर्वत की गुफा में अथवा पर्वत के शिखर पर एकांत में साधना करने वाले संतों

के पास कोई लाइब्रेरी या प्रयोग शालाएँ नहीं थी उन्होंने कोई ग्रंथ नहीं टटोले थे न ही कभी प्रयोगशाला में प्रयोग किये थे तो भी उन्होंने सृष्टि के कितने ही रहस्यों के उद्‌घाटन किये है । जो आगमों का गहरा अध्ययन किया जाय तो विश्व की कोई भी समस्या का समाधान इन आगम ग्रंथो में से मिल सकता है । ज्ञान की अंतर्चेतना ने ही प्रकृति के रहस्यों को उद्‌घाटित किया है ।

भगवान महावीर के दिये हुए ज्ञान का आज विश्व के प्रख्यात वैज्ञानिक भी आदर करते हैं । आइन्सटाईन जैसे वैज्ञानिक भी इसलिये कहते हैं कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो भारत में संत बनकर आत्म तत्त्व का संशोधन करूँगा ।

जैन आगमों में ५ भरत, ५ एरवत तथा ५ महाविदेह क्षेत्र यों पंद्रह कर्मभूमिज क्षेत्र का वर्णन मिलता है । हिंदुस्तान टाइम्स के ओक्टोम्बर २०११ के अंक में एक रशियन वैज्ञानिक ने लिखा था कि हम जिस पृथ्वी पर रहते हैं और जिसे जितना जानते है उससे एक करोड गुणी वस्ती(भूमि) अधिक है । ईस्वी सन् १९६५ में युनाइटेड फर्मेशन में भी कितने ही वैज्ञानिकों ने बताया था कि अपने इस ब्रह्मांड जैसा अन्य ब्रह्मांड भी है जिसमें अरबों लोग रहते हैं । एक रशियन खगोलशास्त्री का मंतव्य है कि अभी के परिचित ग्रहों के सिवाय अन्य सात हजार ग्रहों पर बुद्धिशाली मानव रहते हैं ।

संक्षेप में विज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाएँ जैसे कि- भूस्तर शास्त्र, भौतिकशास्त्र, जीवन विज्ञान, परमाणु विज्ञान, भूगोल, खगोल के भारतीय वैज्ञानिक लोगों द्वारा भारतीय प्राचीन दार्शनिक तथा अन्य ग्रंथों का गहराई से अध्ययन करके उसके आधार से योग्य संशोधन करने की अनिवार्य आवश्यकता है और जो ऐसा किया जाय तो भारत विज्ञान के क्षेत्र में अमूल्य भेट देने वाला देश गिना जायेगा ।

२०वीं सदी के अंत में रशिया के किर्लीयन दंपती और भारत के डो. दत्त ने ओरा के विषय में फोटोग्राफ और संशोधन द्वारा

समझाया था कि २५०० वर्ष पहेले आभामंडल की बातें आगमों में की गई है जिससे प्रत्येक प्राणी या पदार्थ का अपना आभामंडल होता है ।

आजकल सामान्य जनता भले ही भौतिक विज्ञान की सिद्धियों को देखकर विज्ञान से प्रभावित हो रही है और सभी विषयों में विज्ञान को ही प्रमाणभूत अधिकृत गिनकर अपने मन्तव्यों को स्थिर करता होगा । किंतु वैज्ञानिक स्वयं तो आध्यात्मिक जगत के प्रति जिज्ञासु भावों से दृष्टि टिकाकर आध्यात्मिक जगत के ज्योतिर्धरों के कथनों को अपनी विज्ञानशाला में प्रयोगत्मक विधि से परीक्षण करने को उत्सुक हो रहा है । और जिज्ञासा में से उत्पन्न संशोधन आज इस बात को स्पष्टत: कह रहे हैं कि शरीर के नाश के बाद भी कुछ न कुछ तत्त्व अवशेष रहता है, कायम रहता है ।

"दि फाइन्डिंग ओफ दि थर्क आई" में **वेरा स्टेन्ली अेल्डर** लिखते हैं कि कुछ संशोधनो ने यह संभावना खडी कर दी है कि एक दिन विज्ञान की खोजें और प्राचीन काल के ज्ञानी पुरुषों के वचन एक दूसरे में समाविष्ट हो जायेंगे । इन दोनों में जो फर्क दिखता है वह शब्द मात्र का या कथन करने की पद्धति मात्र का ही है ।

प्राकृतिक जगत के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त करके उसके उपर मनुष्य का दबदबा प्रभुत्व स्थापित करने वाले विज्ञान की नित नई खोजों से प्रभावित होकर आज के पढेलिखे गिने जाने वाले मनुष्य जब आध्यात्मिक जगत से दूर जा रहे है ऐसे समय में उक्त वैज्ञानिकों के उद्‌गार कितने चिंतन करने योग्य हैं यह सहज समझना चाहिये । दार्शनिकों द्वारा तीर्थंकरों द्वारा लिखे या कहे सत्य तत्त्वों को विज्ञान की कसौटी पर चढाकर पार उतारने से ही नवी पेढी की धर्मदर्शन में श्रद्धा बढाई जा सकेगी ।

विज्ञान को एक चिरमी जितना गिने तो धर्म सिद्धांत एक सोनेया जितना महत्त्व रखते हैं । फिर भी पुराने समय में सोने का वजन करने के लिये चिरमी की मदद ली जाती थी वैसे ही आज धर्म दर्शन को समझने और आगम श्रद्धा को बढाने के लिये वैज्ञानिकों के मंतव्यों की

मदद लेना जरूरी हो गया है तभी आज का शिक्षित वर्ग समझ सकेगा।

विनोबा भावे भी कहते थे कि विज्ञान जीवन की प्राण शक्ति है, आध्यात्म यह जीवन का चित्त है, इन दोनों का समन्वय ही मानव जाति का कल्याणकर कर सकता है । अंधश्रद्धा को दूर हटाकर विवेक पूर्ण श्रद्धा के साथ धर्म का आचरण ही कल्याणकारी बन सकेगा।

इस तरह उपरोक्त लेखन में भावुकता से कुछ भी जिनाज्ञा विपरीत भावों का लेखन हो गया हो या उत्सूत्र प्ररूपण कुछ भी हो गया हो तो नम्र भावों से तथा समर्पण भाव से त्रिविध-त्रिविधे मिच्छामि दुक्कडं करता हूँ ।

– लेखक : गुणवंत बरवालिया, मुम्बई ।

जैन विद्वान मनीषी लेखक श्री गुणवंत बरवालिया के गुजराती भाषा के भावों को हिंदी अनुवाद करने में जिनाज्ञा विपरीत भाषानुवाद अल्पज्ञतावश हो गया हो तो उसके लिये वारंवार क्षमाप्रार्थी हूँ ।

– संपादक

परिशिष्ट-६

जैन प्राकृत साहित्य : एक सर्वेक्षण

प्रो. सागरमल जैन

भारतीय संस्कृति एक समन्वित संस्कृति है । अति प्राचीनकाल से ही इसमें दो धाराएँ प्रवाहित होती रही है - वैदिक और श्रमण । यद्यपि ये दो स्वतंत्र धाराएँ मूलतः मानव जीवन के दो पक्षों पर आधारित रही है । मानव जीवन विरोधी भावों से पूर्ण है। वासना और विवेक, ये दोनों तत्त्व उसमें प्रारम्भ से ही समन्वित है। परम्परागत द्रष्टि से इन्हें शरीर और आत्मा भी कह सकते हैं। जैसे ये दोनों पक्ष हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करते रहते हैं, वैसे ही ये दोनों संस्कृतियाँ भी एक दूसरे को प्रभावित करती रही है। जहाँ वैदिक संस्कृति में संस्कृत की प्रधानता रही है, वहीं श्रमण संस्कृति में लोकभाषा या प्राकृत की प्रधानता रही है। आदि काल से ही वैदिक धारा की साहित्यिक गतिविधियाँ संस्कृत केन्द्रित रही है। यद्यपि उसमें संस्कृत के तीन रूप पाये जाते हैं- १. छान्दस (वैदिक), २. छान्दस प्रभावित संस्कृत और ३. साहित्यिक व्याकरण-परिशुद्ध संस्कृत । छान्दस मूलतः वेदों की भाषा है । ब्राह्मण ग्रंथों पर भी छान्दस का ही अधिक प्रभाव रहा है, किन्तु आरण्यकों और उपनिषदों की भाषा छान्दस प्रभावित व्याकरण से परिमार्जित साहित्यिक संस्कृत रही है । पुराण आदि परवर्ती वैदिक परम्परा का साहित्य व्याकरण परिशुद्ध साहित्यिक संस्कृत में ही देखा जाता है । जबकि श्रमणधारा ने प्रारम्भ से ही लोकभाषा को अपनाया । देश और काल की अपेक्षा से इसके भी अनेक रूप पाये जाते हैं, यथा-मागधी, पाली, पैशाची, अर्द्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री और अपभ्रंश । बौद्धों का परम्परागत त्रिपिटक साहित्य भी पाली भाषा में है, जो मूलतः मागधी और अर्धमागधी के निकट है । वहीं जैन परम्परा का साहित्य मूलतः अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री और अपभ्रंश में पाया जाता है । यहाँ यह ज्ञातव्य है जहाँ जैन धर्म की श्वेताम्बर शाखा का साहित्य अर्धमागधी और महाराष्ट्री प्राकृत में है, वहीं

दिगम्बर एवं यापनीय शाखा का साहित्य, शौरसेनी प्राकृत में मिलता है । साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि छान्दस, अभिलेखीयप्राकृत, पाली और प्राचीन अर्द्धमागधी एक दूसरे से अधिक दूर भी नहीं है । वस्तुतः सुदूर क्षेत्र की भारोपीय (भारतीय + युरोपीय) वर्ग की सभी भाषाएँ एक दूसरे के निकट ही देखी जाती है, आज भी आचारांगसूत्र की प्राचीन प्राकृत में अंग्रेजी के अनेक शब्द रूप देखे जाते हैं, जैसे बोंदि (Body), एस (As), आउट्टे (Out), चिल्लड़-चिल्ड्रन (Children) आदि ।

आज प्राकृत की प्रत्येक संगोष्ठी में यह प्रश्न भी उठाया जाता है कि प्राकृत से संस्कृत बनी या संस्कृत से प्राकृत बनी तथा इनमें कौन कितनी प्राचीन है ? जैन परम्परा में ही जहाँ 'नमिसाधु' प्राकृत से संस्कृत के निर्माण की बात कहते हैं, वहीं हेमचंद्र 'प्रकृतिः संस्कृतम्' कहकर संस्कृत से प्राकृत के विकास को समझाते हैं । यद्यपि यह भ्रान्ति भाषाओं के विकास के इतिहास के अज्ञान के कारण है । सर्वप्रथम हमें बोली और भाषा के अंतर को समझ लेना होगा । प्राकृत अपने आपमें एक बोली भी रही है, और भाषा भी । भाषा का निर्माण बोली को व्याकरण के नियमों में जकड़ कर किया जाता है । अतः यह मानना होगा कि संस्कृत का विकास प्राकृत बोलियों से हुआ है । प्राकृत मूल में भाषा नहीं, अनेक बोलियों के रूप में रही है । इस दृष्टि से प्राकृत बोली के रूप में पहले है, और संस्कृत भाषा उसका संस्कारित रूप है । दूसरी ओर यदि प्राकृतभाषा की दृष्टि से विचार करें, तो प्राकृत भाषाओं का व्याकरण संस्कृत व्याकरण से प्रभावित है, अतः संस्कृत पहले और प्राकृत (लोकाभाषाएँ) परवर्ती हैं । मूल में प्राकृत अनेक बोलियों से विकसित हुई है, अतः वे अनेक है । संस्कृत भाषा व्याकरणनिष्ठ होने से परवर्ती काल में एक रूप ही रही है । जैन ग्रंथो में भी प्राकृतों के अनेक रूप पाये जाते हैं, यथा-मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री और उनसे विकसित अपभ्रंश । आज जो भी प्राचीन स्तर का जैन साहित्य है, वह सभी इन विविध प्राकृतों में लिखित है । यद्यपि जैनाचार्यों ने ईसा की तीसरी-चौथी शती से संस्कृत भाषा को भी

अपनाया और उसमें भी विपुल मात्रा में ग्रंथो की रचना की, फिर भी उनका मूल आगम साहित्य, आगमतुल्य साहित्य और अन्य विविध विद्याओं का विपुल साहित्य भी प्राकृत भाषा में ही है ।

प्राकृत भाषा में रचित जैन साहित्य में प्राचीनता की अपेक्षा से मुख्यतः आगम साहित्य आता है । आगमों के अतिरिक्त दिगम्बर परम्परा के अनेक आगमतुल्य ग्रंथ भी प्राकृत भाषा में ही रचित हैं । इसके अतिरिक्त जैन साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विद्या 'कथा-साहित्य' भी प्राकृत भाषा में विपुल रूप में प्राप्त होती है । इनके आचार-व्यवहार, खगोल-भूगोल और ज्योतिष सम्बन्धी कुछ ग्रंथ भी प्राकृत भाषा में ही मिलते हैं । जहाँ तक जैनदर्शन सम्बन्धी ग्रंथों का प्रश्न है, सन्मतितर्क (सम्मइसुत्त), नवतत्त्वपयरण, पंचास्तिकाय जैसे कुछ ही ग्रंथ प्राकृत में मिलते हैं । तथापि प्राकृत आगम साहित्य में भी जैनों का दार्शनिक चिन्तन पाया जाता है । इसी क्रम में जैनधर्म के ध्यान और योग सम्बन्धी अनेक ग्रंथ भी प्राकृत भाषा में निबद्ध हैं । प्राकृत साहित्य बहुआयामी है । यदि कालक्रम की दृष्टि से इस पर विचार किया जाये, तो हमें ज्ञात होता है कि जैनों का प्राकृत भाषा में निबद्ध साहित्य ईसा पूर्व पाँचवीं शती से लेकर ईसा की २०वीं शती तक लिखा जाता रहा है । इस प्रकार प्राकृत के जैनसाहित्य का इतिहास लगभग ढाई सहस्राब्दी का इतिहास है । अतः यहाँ हमें इन सब पर क्रमिक दृष्टि से विचार करना होगा ।

जैन प्राकृत आगम साहित्य

प्राकृत जैन साहित्य के इस सर्वेक्षण में प्राचीनता की दृष्टि से हमें सर्वप्रथम जैन आगम साहित्य पर विचार करना होगा । हमारी दिगम्बर परम्परा आगाम साहित्य को विलुप्त मानती है । यह भी सत्य और तथ्य है कि आगम-साहित्य का विपुल अंश और उसके अनेक ग्रंथ आज अनुपलब्ध हैं, किन्तु इस आधार पर यह मान लेना कि आगम साहित्य पूर्णतः विलुप्त हो गया, उचित नहीं होगा । जैनधर्म की यापनीय एवं श्वेताम्बर शाखाएँ आगमों का पूर्ण विलोप नहीं मानती हैं । आज भी आचारांग, सूत्रकृतांग, ऋषिभाषित आदि ग्रंथों में प्राचीन सामग्री अंशतः ही सही, किन्तु उपलब्ध है ।

आचारांग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के अनेक सूत्र और ऋषिभाषित सूत्र इस बात के प्रमाण हैं कि प्राकृत जैन साहित्य औपनिषदिक सूत्रों से यथावत् समानता रखते हैं । वहीं इसिभासियाइं याज्ञवल्क्य आदि २२ औपनिषदिक ऋषियों, अनेक बौद्धभिक्षुओं जैसे- सारिपुत्त, वज्जीयपुत्त और महाकाश्यप, आजीवक मंखलिगोशाल एवं अन्य विलुप्त प्रायः श्रमणधाराओं के ऋषियों के उपदेशों को प्राचीनतम प्राकृत भाषा में यथार्थ रूप से प्रस्तुत करता है । इसिभासियाइं में ४५ ऋषियों के उपदेश संकलित हैं । इनमें मात्र पार्श्व और वर्द्धमान (महावीर) को छोड़कर शेष सभी औपनिषदिक, बौद्ध, आजीवक आदि अन्य श्रमण धाराओं से सम्बन्धित हैं । आश्चर्य यह है कि इनमें से अधिकांश को अर्हत् ऋषि कहकर सम्बोधित किया गया है, जो जैन चिन्तकों की उदारदृष्टि का परिचायक है । ज्ञातव्य है कि यह ग्रंथ जैनधर्म के साम्प्रदायिक घेरे में आबद्ध होने के पूर्व की स्थिति का परिचायक है । ज्ञातव्य है कि जब जैनधर्म साम्प्रदायिक घेरे में आबद्ध होने लगा, तब यह प्राचीनतम प्राकृत का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ भी उपेक्षा का शिकार हुआ, इसकी विषय-वस्तु को दसवें अंग आगम से हटाकर प्रकीर्णक के रूप में डाला गया । सद्भाग्य यही है कि यह ग्रंथ आज भी अपने वास्तविक स्वरूप में सुरक्षित है । प्राकृत और संस्कृत के विद्वानों से मेरी यह अपेक्षा है कि इस ग्रंथ के माध्यम से भारतीय संस्कृति की उदार और उदात्त दृष्टि को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न करें । ज्ञातव्य है कि अन्य जैन आगमों में ऋषिभाषित के अनेक सन्दर्भ आज भी देखे जाते हैं । [यह ऋषिभाषित सूत्र अनेक स्थलों से प्रकाशित है तथा इस सूत्र पर P.H.D. शोध ग्रंथ भी प्रकाशित है तथापि गुजरात-राजकोट से पुनः हिन्दी तथा गुजराती दोनों भाषाओं में अलग-अलग शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है ।]

जैन आगम साहित्य के वर्गीकरण और संख्या का प्रश्न :-

जैन आगमों का वर्गीकरण दो रूपों में पाया जाता है- अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य । प्राचीनकाल से श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में आगमों को अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य ऐसे दो विभागों में

बाँटा जाता है । अंगप्रविष्ट ग्रंथों की संख्या १२ (बारह) मानी गयी है और इनके नामों को लेकर भी दोनों परम्पराओं में कोई मतभेद नहीं है । उन दोनों में बारह अंगो के निम्न नाम भी समान रूप से माने गये हैं – १. आचारांग २. सूत्रकृतांग, ३. स्थानांग, ४. समवायांग, ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र), ६. ज्ञाताधर्मकथा, ७. उपासकदशा, ८. अन्तकृत्दशा, ९. अनुत्तरोपातिकदशा, १०.प्रश्नव्याकरण, ११. विपाकसूत्र और १२. दृष्टिवाद । दोनों परम्पराएँ इस संबंध में भी एकमत है कि वर्तमान में दृष्टिवाद अनुपलब्ध है । यद्यपि दिगम्बर परम्परा यह स्वीकार करती है कि उसके दो आगम तुल्य ग्रंथ है, वे दृष्टिवाद के आधार पर निर्मित हुए हैं । अंगबाह्यों के सम्बन्ध में दोनों परम्पराओं में आंशिक एकरूपता और आंशिक मतभेद देखा जाता है । दिगम्बर परम्परा अंग बाह्य की संख्या १४ मानती है, जबकि श्वेताम्बर परम्परा ऐसा कोई स्पष्ट निर्देश नहीं करती है । तत्त्वार्थसूत्र के श्वेताम्बर मान्य स्वोपज्ञ-भाष्य में अंग बाह्य को अनेक प्रकार का कहा गया है । दिगम्बर परम्परा की तत्त्वार्थ की टीकाओं और धवला में १४ अंग बाह्यों के नामों के जो निर्देश उपलब्ध हैं, उनमें उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, कल्प, व्यवहार, कल्पिकाकल्पिक, महाकल्पिक, पुण्डरिक, निशीथ आदि हैं । ज्ञातव्य है कि धवला में अंग बाह्यों के जो १४ नाम गिनाये हैं, उनमें कल्प और व्यवहार भी है । धवला में कप्पाकप्पीय, महाकप्पीय, पुण्डरिक और महापुण्डरिक- ये चार नाम तत्त्वार्थभाष्य की अपेक्षा अधिक है और उसमें भाष्य में उल्लिखित दशा और ऋषिभाषित को छोड़ दिया गया है । साथ ही इन नामों में से पुण्डरीक और महापुण्डरीक को छोड़कर शेष सभी ग्रंथ श्वेताम्बर परम्परा में भी मान्य हैं । कल्पाकल्पिक का उल्लेख नन्दीसूत्र में है, किन्तु अब यह ग्रंथ उपलब्ध नहीं है । शेष सभी ग्रंथ श्वेताम्बर परम्परा में आज भी उपलब्ध माने जाते हैं । श्वेताम्बर परम्परा में सूत्रकृतांग में पुण्डरीक नामक एक अध्ययन भी है ।

जहाँ तक आगम साहित्य के वर्गीकरण का प्रश्न है, श्वेताम्बर परम्परा में दो प्रकार के वर्गीकरण उपलब्ध होते हैं – १. नन्दीसूत्र का प्राचीन वर्गीकरण और २. जिनप्रभ की 'विधिमार्ग प्रपा' का आधुनिक

वर्गीकरण । नन्दीसूत्र का प्राचीन वर्गीकरण लगभग ईसा की पाँचवीं शताब्दी का है, जबकि आधुनिक वर्गीकरण प्रायः ईसा की १३वीं-१४वीं शती से प्रचलन में है । नन्दीसूत्र के प्राचीन वर्गीकरण में आगमों को सर्वप्रथम अंगप्रविष्ट और अंग बाह्य, ऐसे पूर्व में प्रचलित दो विभागों में ही बाँटा गया है । किन्तु इसकी विशेषता यह है कि वह अंगबाह्य ग्रन्थों के प्रथमतः दो विभाग करता है – १. आवश्यक और २. आवश्यक व्यतिरिक्त। पुनः आवश्यक के सामायिक आदि छह विभाग किये गये हैं । आवश्यक व्यतिरिक्त को पुनः कालिक और उत्कालिक ऐसे दो विभागों में बाँटा गया है । इसमें कालिक के अंतर्गत ३१ ग्रंथ और उत्कालिक के अंतर्गत २९ ग्रंथ हैं । इस प्रकार नन्दी सूत्र में १२ अंगप्रविष्ट, ६ आवश्यक, ३१ कालिक और २९ उत्कालिक कुल ७८ ग्रंथ उल्लेखित हैं, किन्तु मूल पाठ में संख्या निर्देश नहीं है । इनमें से कुछ वर्तमान में अनुपलब्ध भी हैं । पूर्ण सूची इस प्रकार है –

श्रुत (आगम) साहित्य – (१) अंग प्रविष्ट और (२) अंगबाह्य ।

(१) अंग प्रविष्ट –१. आचारांग, २. सूत्रकृतांग, ३. स्थानांग, ४. समवायांग, ५. व्याख्या प्रज्ञप्ति (भगवती), ६. ज्ञाताधर्मकथा, ७. उपासकदशा, ८. अन्तकृद्दशा, ९. अनुत्तरोपपातिकदशा, १०. प्रश्नव्याकरण, ११. विपाकसूत्र, १२. दृष्टिवाद

(२) अंगबाह्य – (१) आवश्यक और (२) आवश्यक व्यतिरिक्त ।

आवश्यक – १. सामायिक, २. चतुर्विंशतिस्तव, ३. वन्दना, ४. प्रतिक्रमण, ५. कायोत्सर्ग, ६. प्रत्याख्यान ।

आवश्यक व्यतिरिक्त-(१) कालिक और (२) उत्कालिक ।

(१) कालिक – १. उत्तराध्ययन, २. दशाश्रुतस्कन्ध, ३. कल्प, ४. व्यवहार, ५. निशीथ, ६. महानिशीथ, ७. ऋषिभाषित, ८. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ९. द्वीपसागर प्रज्ञप्ति, १०. चन्द्रप्रज्ञप्ति, ११. क्षुल्लिकाविमानप्रविभक्ति, १२. महल्लिकाविमानप्रविभक्ति, १३. अंगचूलिका, १४. वग्गचूलिका, १५. विवाहचूलिका, १६. अरुणोपपात, १७. वरुणोपपात, १८. गरुडोपपात, १९.

धरणोपपात, २०. वैश्रमणोपपात, २१. वेलन्धरोपपात, २२. देवेन्दोपपात, २३. उत्थानश्रुत, २४. समुत्थानश्रुत, २५. नागपरिज्ञापिका, २६. निरयावलिका, २७. कल्पिका, २८. कल्पावतंसिका, २९. पुष्पिका, ३०. पुष्पचूलिका, ३१. वृष्णिदशा ।

(२) उत्कालिक – १. दशवैकालिक, २. कल्पिकाकल्पिक ३. चुल्लकल्पश्रुत, ४. महाकल्पश्रुत, ५. महानिशीथ, ६. राजप्रश्नीय, ७. जीवाभिगम, ८. प्रज्ञापना, ९. महाप्रज्ञापना, १०. प्रमादाप्रमाद, ११. नन्दी, १२. अनुयोगद्वार, १३. देवेन्द्रस्तव, १४. तन्दुलवैचारिक, १५. चन्द्रवेध्यक, १६. सूर्यप्रज्ञप्ति, १७. पौरुषीमण्डल, १८. मण्डलप्रवेश, १९. विद्याचरण विनिश्चय, २०. गणिविद्या, २१. ध्यानविभक्ति, २२. मरणविभक्ति, २३. आत्मविशोधि, २४. वीतरागश्रुत, २५. संलेखनाश्रुत, २६. विहारकल्प, २७. चरणविधि, २८. आतुरप्रत्याख्यान, २९. महाप्रत्याख्यान ।

जहाँ तक श्वेताम्बर परम्परा में प्रचलित आधुनिक वर्गीकरण का प्रश्न है, उसकी चर्चा के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि उसकी स्थानकवासी और तेरापंथी की परम्पराएँ मात्र ३२ ही आगम मान्य करती है । श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा में भी दो मान्यताएँ है – (१) ४५ आगमों की और (२) ८४ आगमों की । यहाँ यह ज्ञातव्य है कि ८४ आगमों की सूची के अंतर्गत ३२ और ४५ आगमग्रंथ भी सम्मिलित हो जाते हैं । स्थानकवासी एवं तेरापंथी परम्परा ११ अंग, १२ उपांग, ४ छेद, ४ मूल और १ आवश्यक ऐसे ३२ आगम मान्य करती है । श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा में भी ११ अंग, १२ उपांग के नाम समान हैं । स्थानकवासी परम्परा द्वारा मान्य ४ मूल में – (१) उत्तराध्ययन और (२) दशवैकालिक दोनों नाम समान हैं । नन्दीसूत्र और अनुयोगद्वार को श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा चूलिका सूत्र में रख देती है । ६ छेद सूत्रों में महानिशीथ और जीतकल्प – ये दो नाम अधिक है। चार नाम समान हैं । मूल में नन्दी और अनुयोगद्वार के स्थान पर आवश्यक और पिण्डनिर्युक्ति ये दो नाम

आते हैं । १० प्रकीर्णक स्थानकवासी और तेरापंथी परम्परा को मान्य नहीं हैं । श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परम्परा द्वारा मान्य ८४ आगमों की सूची निम्न है, इसमें बत्तीस और पैंतालीस प्रकार भी समाहित हैं ।

८४ आगम (श्वेताम्बर मू. पू. सम्मत)

१–११ **ग्यारह अंग** – आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थनांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिक, प्रश्नव्याकरण और विपाक सूत्र ।

१२–१३ **बारह उपांग** – औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाजीवाभिगम, प्रज्ञापना, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, कल्पिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका और वृष्णिदशा । अन्तिम पाँचों का संयुक्तनाम निरयावलिका है ।

२४–२७ **चार मूलसूत्र** – आवश्यक सूत्र, दशवैकालिक, उत्तराध्ययनानि, पिंड निर्युक्ति (अथवा ओघनिर्युक्ति)

२८–२९ **दो चूलिका सूत्र** – नन्दीसूत्र, अनुयोगद्वारसूत्र ।

३०–३५ **छः छेद सूत्र** – निशीथ, महानिशीथ, बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, पंचकल्प (विच्छिन्न)

३६–४५ **दस प्रकीर्णक**–चतुःशरण, आतुरप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तन्दुलवैचारिक, चन्द्रवेध्यक, देवेन्द्रस्तव, गणिविद्या, महाप्रत्याख्यान, वीरस्तव, संस्तारक । (किसी के मत से 'वीरस्तव' और 'देवेन्द्रस्तव' दोनों का समावेश एक में है और 'संस्तारक' के स्थान में 'मरण समधि' और 'गच्छाचारपयन्ना' है ।)

४६ **पर्युषणा कल्पसूत्र** (जिनचरित, स्थविरावलि, सामाचारी)

४७ यतिजीतकल्प (सोमप्रभसूरि)

४८ श्राद्धजीतकल्प (धर्मघोषसूरि)

४९ पाक्षिकसूत्र (आवश्यक सूत्र का अंग है)

५० क्षमापनासूत्र (आवश्यक सूत्र का अंग है)

५१ वंदित्तु (आवश्यक सूत्र का अंग है)

५२ ऋषिभाषित

५३-६२ **वीस अन्य पयन्ना (प्रकीर्णक)** - अजीवकल्प, गच्छचार, मरणसमाधि, सिद्धप्राभृत, तीर्थोद्गारिक, आराधनापताका, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, ज्योतिषकरण्डक, अंगविद्या, तिथिप्रकीर्णक, पिण्डविशुद्धि, सारावली, पर्यन्ताराधना, जीवविभक्ति, कवच प्रकरण, योनिप्राभृत, अंगचूलिया, वग्गचूलिया, वृद्धचतुःशरण, जम्बूपयन्ना ।

६३-८३ ग्यारह निर्युक्ति (भद्रबाहुकृत)

आवश्यकनिर्युक्ति, दशवैकालिकनिर्युक्ति, उत्तराध्ययन निर्युक्ति, आचारांग निर्युक्ति, सूत्रकृतांग निर्युक्ति,सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति (अनुपलब्ध), बृहत्कल्प निर्युक्ति, व्यवहार निर्युक्ति, दशाश्रुतस्कंध निर्युक्ति, ऋषिभाषित निर्युक्ति (अनुपलब्ध), संसक्त निर्युक्ति ।

[निशीथसूत्र निर्युक्ति को लेखक ने नही गिना है]

८४ विशेषावश्यकभाष्य ।

ये ८४ आगम ग्रंन्थ आज भी उपलब्ध हैं ।

-निदेशक, प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (मध्यप्रदेश)

['जिनवाणी' मासिक दिसंबर-१३ से साभार उद्धृत]

०००

परिशिष्ट-७

भगवान महावीर के उपदेशी ग्रंथ : आगम

गुजराती लेखक - श्री गुणवंत बरवालिया

अपार करुणा के अवतार प्रभु महावीर स्वामी ने भव्य जीवों के बोध के लिये उपदेश फरमाये जो गौतम आदि गणधर भगवंतो के द्वारा आगमों के रूप में गू थे हुए हमें आज परंपरा से प्राप्त हैं ।

तीर्थंकर भगवंत को केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न होने पर यथासंयोग यथाविधि देव, मनुष्य और तिर्यंच प्राणी भगवान की वाणी श्रवण करने हेतु समवसरण में पहुँच कर अपने अपने योग्य आसन पर स्थित हो जाते हैं ।

प्राप्त परंपरानुसार भगवान १२ प्रकार की परिषद में मालकोश राग के उच्चारण(लय) में अर्द्धमागधी भाषा में **औपपातिक** सूत्रानुसार यथाक्रम से पहले ९ तत्त्वों, ६ द्रव्यों का निरूपण कर फिर सर्वविरति एवं देशविरति धर्म का निरूपण करते हैं । सभी जीव भगवान के तीर्थंकर नामकर्म के अस्तित्व एव प्रभाव से अपनी अपनी भाषा में समझते हैं । औपपातिक सूत्र का उपरोक्त उपदेश विषय एक उदाहरणरूप समझना ।

जिनका उपादान उत्कृष्ट है, जिनमें गणधर बनने की योग्यता है, वे भगवान का उपदेश सुनकर वहीं दीक्षित होते हैं और दीक्षा अंगीकार करते ही ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम बढने पर उन्हें पूर्वभव में प्राप्त द्वादशांगी श्रुत उपस्थित हो जाता है । क्योंकि शासन की स्थापना के प्रथम दिन ही वे द्वादशांगी की रचना करते हैं वही आगम ज्ञान की अमूल्य परंपरा हमें भी प्राप्त हो रही है ।

वीर निर्वाण ९८० वर्ष बाद आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण को अनुभूति हुई कि मौखिक आगम परंपरा अब अक्षुण्ण चलने वाली नहीं है, मानव की स्मरण शक्ति घटती जा रही है इसलिये वल्लभीपुर

में संत महात्माओं के सहयोग से निरंतर १३ वर्षों के श्रम से आगमों को लिपिबद्ध किया ।

तदन तर अनेक पूर्वाचार्यो ने श्रमण संस्कृति की इस ज्ञानधारा को गतिमान रखने के लिये समय-समय पर आगमों का संपादन, संशोधन, संवर्धन तथा लेखन करके अद्‌भुत योगदान दिया है ।

समग्र मानवजाति के कल्याण की हितचिंता रूप तीर्थंकर नामकर्म का उदय करुणा के सागर प्रभु महावीर स्वामी को सतत उपदेश देने के लिये उत्प्रेरित करता है । जिसके फलस्वरूप विश्व के दर्शन साहित्य को अमूल्य भेंट प्राप्त होती है ।

आगमों का चिंतन, स्वाध्याय एवं परिशीलन अज्ञान अंधकार को दूर करके ज्ञान रूपी दीपक का प्रकाश प्रगट करता है । जैन तत्त्वज्ञान, आचारशास्त्र तथा विचारदर्शन का शुभग समन्वय के साथ संतुलित एवं मार्मिक विवेचन आगमों में भरा है जिससे उन आगमों को जैन परंपरा का जीवन दर्शन कह सकते हैं।

पापवृत्ति और कर्मबंधन में से मुक्त होकर पंचम गति के शाश्वत सुख किस प्रकार प्राप्त किये जा सकते हैं उसे दिखाने के लिये हिंसा आदि दूषणों के परिणाम दिखाकार अहिंसा के परमध्येय की पुष्टि करने के लिये अनेक सद्‌गुणों की प्रतिष्ठा उन आगम शास्त्रों में की गई है । आगम के नैसर्गिक तेज पुंज में से एक छोटी सी किरण भी हमें मिल जाय तो अपना जीवन प्रकाशमय हो जाय । आत्मा को कर्म मुक्त होने की प्रक्रिया में प्रवाहित करने वाले ये आगम आत्म सुधारणा करने के लिये अमूल्य साधन है ।

गणधर भगवंत द्वारा भगवान की वाणी को लेकर सूत्रबद्ध किये गये ये आगम, जीवों के कल्याण के लिये एवं व्यक्ति को ऊर्ध्व गति का पथिक बनाने के लिये प्रेरणा प्रकाश फैलाते हैं ।

अनादिकाल से आत्मा पर लगे हुए कर्मरज को साफ करने की प्रक्रिया अर्थात् आत्मसुधार । आत्मा पर कर्मों के द्वारा विकृति

तथा मलिनता के परत जमे हुए हैं जिससे हम अपनी आत्मा के सच्चे स्वरूप को देख–समझ नहीं सकते । अपार शक्ति के मालिक आत्मा के दर्शन हों जाय अर्थात् आत्म स्वरूप का ज्ञान आभाष हो जाय तो संसार के दुःख रूप जन्म मरण की श्र खला से मुक्ति मिल जाय ।

श्वे॰जैन समाज ने भगवान महावीर स्वामी के वचन एवं गणधरों के द्वारा गुंथन किये आगम जो हमें परंपरा से प्राप्त हो रहे हैं, उनका स्वीकार किया है किंतु दिगंबर जैन समाज ने अपनी ऐसी मान्यता बनाई एवं प्रचारित की कि भगवान के ९८० वर्ष बाद शास्त्रों का लेखन हुआ उसे हम भगवान की वाणी है ऐसा स्वीकार नहीं सकते ।

उनके मतानुसार ऐसे समय में कुंदकुंदाचार्य हुए थे । वे अपनी लब्धि से महाविदेह क्षेत्र में विहरमान तीर्थंकर सीमंधर स्वामी के पास गये, ज्ञान समाधान लेकर आये । फिर तामिलनाडु में गुफा में बैठकर ग्रंथ समयसार, नियमसार आदि शास्त्र रचे ।

(अपने गुरु की या मत चलाने वाले की ऐसी अतिशयोक्तिपूर्व खोटी बातें बनाकर डींग हाँकी जाती हैं, ऐसा रवैया अतिभक्ति से चलता है और आगम की कसोटी पर अपने पूज्य गुरु को बदनाम करता है । यथा– कोई गये, चूलिका लाये; कोई गये, आये, प्रज्ञापना बनाया। दादा भगवान के प्रचारक भी ऐसी बेतुकी बातें अपनी शान के लिये बनाते हैं ।)

वास्तव में सामान्य मानव(१४ पूर्वज्ञान के बिना) अथवा कोई भी साधु-साध्वी महाविदेह में देव सहाय से भी इस काल नहीं जा सकते । ऐसी खोटी बातें पीछे से होने वाले शिष्य प्रशिष्य आतिशयोक्ति से रच देते हैं । यह सब फिजुल की अति होशियारी है और खोटी शेखी लगाना है । दिगंबरो के द्वारा आगमों को नकारने के बावजूद भी वर्तमान श्वे॰ जैन आगमों के तत्त्वज्ञान के उत्कृष्ट साहित्य को पूरे विश्व के विद्वानों ने स्वीकारा है ।

इन आगम ग्रंथो में चार अनुयोगमय सभी विषयों में जगह-जगह जीव में से सिद्ध बनने की प्रक्रिया का निर्देश, संकेत मिलता है । ये आगम शास्त्र जैन शासन की नीव रूप है । इनमें ज्ञान दर्शन चारित्र इस रत्नत्रय की मालिकी प्राप्त कराने के सिद्धांत-नियम आचारों का विशद् विवेचन है । इसमें कहे गये आचार अवश्य मानव की आत्मोन्नति करा सकते हैं ।

इस तरह दिगंबर समाज ने मौजूद सद्शास्त्रों को नकार कर अपनी जिद्द या धुन के अनुरूप नये शास्त्रों की रचना करके उन्हें स्वीकारा है और असली आगमों को नकली आगम होने का निरूपण किया है। फिर भी- ***कीमत घटे नहीं वस्तु नी, भाखे परीक्षक भूल । जेनो जेहवो पारखी, करे मणि नो मूल ।***

ये आगम हमारी आत्मा की उन्नति में किस प्रकार प्रेरक बन रहे हैं उसकी आंतर विचारणा(विषय विचारणा) इस प्रकार हैं-

(१) आचारांग सूत्र :- आचार, यह हमारा प्रथम धर्म है । इस जीवन सूत्र को अपनाने के सफल उपाय आचारांग सूत्र में आचार शुद्धि पूर्वक, जीवन शुद्धि के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये छः प्रकार के जीवों की जयणा-यतना और आचार शुद्धि का मार्ग दर्शाया है तथा आत्म सुधार एवं समाधि की प्राप्ति करने में इन्द्रियविजय की प्रधानता का निरूपण करते हुए कहा है कि- **जे गुणे से मूलठाणे, जे मूलठाणे से गुणे ॥-** जो पाँच इन्द्रियों के विषय है वे ही संसार भ्रमण के मूल कारण है ।

आत्मा से परमात्मा तक की यात्रा का मार्गदर्शन इस शास्त्र में है, साथ ही यह भी बताया है कि आत्मज्ञान प्राप्त किये बिना जगत के समस्त ज्ञान, अज्ञान कहे जाते हैं । अतः आत्मज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक साधकों तथा नवदीक्षितों को इस आचारांग सूत्र का गहन अभ्यास करना चाहिये ।

वैज्ञानिकों ने वनस्पति में जीव होने की शोध की है परंतु

आचारांग में उससे आगे बढते हुए पृथ्वी, पानी, अग्नि, हवा और वनस्पति में भी जीव कहा है । वनस्पति और त्रसप्राणियों में संवेदना है । विदेशी "फोरनट" नामक मेगेजीन में 'Mountain are Grow' निबंध में- पर्वत के अंदर एवं बाहर दोनों वृद्धि होना स्वीकार किया है अर्थात् पृथ्वी की सचेतना स्वीकारी है । क्यों कि जीव जहाँ हो वहीं वृद्धि संभव है ।

आचारांग में भगवान ने कहा है कि मानव को भोगो में सुख का अनुभव होता है परंतु ज्ञानी जनों को योग में परम आनंद की अनुभूति होती है ।

(२) सूयगडांग सूत्र :- इस शास्त्र में जगत के अनेकानेक दार्शनिकों के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए पारस्परिक तुल्यता और भिन्नता के द्वारा उनकी अपूर्णता के प्रति अंगुलि निर्देश किया है । तथा साधु के आचार, वैराग्य एवं संयम के कष्टों का तथा संसार के दुःखों के वर्णन द्वारा जीव के वैराग्य भाव तरफ बढने की प्रेरणा भी इस सूयगडांग सूत्र में है । इस सूत्र में जैनदर्शन की श्रेष्ठता का न्याययुक्त वर्णन किया है । जगत के अन्य दर्शन, जैन दर्शन से किस कारण अलग पड़ते हैं उसके कारण तथा विशेषताएँ इस सूत्र में मिलती है ।

भगवान महावीर ने तार्किक रीति से कहा है कि यदि गंगा से मोक्ष मिलता हो तो गंगा में रहने वाली सभी मछलियों को मोक्ष मिल जायेगा । कहने का तात्पर्य यह है कि स्नान, यह मात्र बाह्य शुद्धि का ही कारण है, आत्मशुद्धि की प्रक्रिया नहीं है । बाह्य शुद्धि का महत्त्व गौण होता है, मोक्षमार्ग में आत्मशुद्धि का ही महत्त्व है।

(३) स्थानांग सूत्र :- विवेक बुद्धि के व्यवस्थित उपयोग के लिये जगत के भिन्न-भिन्न पदार्थों का वर्गीकरण श्री ठाणांग सूत्र में किया गया है । आत्म सुधार के लिये दस संज्ञाओं को, दस राष्ट्रधर्म द्वारा किस तरह संस्कारित किया जा सकता है उसका सुंदर निरूपण स्थानांग सूत्र में हुआ है । वर्षा नहीं हो रही हो तो किस तरह लाना

और किस नदी में किस समय कितना पानी रहेगा, इत्यादि हजारों वर्ष के भविष्य की बात भी इस सूत्र में है । इस शास्त्र में भगवान ने ज्ञान की वृद्धि के दस नक्षत्रों का कथन किया है यथा- मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुष्य, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा, पूर्वाफाल्गुनी, मूल, अश्लेषा, हस्त, चित्रा । इन दस नक्षत्रों में विद्या प्राप्ति का प्रबल पुरुषार्थ करने को कहा है । नक्षत्रों में से जो किरणें निकलती है वे अपने मस्तिष्क पर असर करती है । इन नक्षत्रों के समय खुल्ले छत पर विद्या प्राप्ति के प्रयोग किये जाते हैं । पहले जमाने में गुरुकुल में तपोवन में वृक्ष के नीचे विद्याभ्यास करवाया जाता था । भूकंप के कारणों का भी इस सूत्र में कथन हुआ है ।

(४) समवायांग सूत्र :- जगत के पदार्थों का सम्यक् प्रकार से विशिष्ट ज्ञान इस सूत्र में दिया गया है। यह शास्त्र अनेक प्रकार के विषयों के समन्वय करने के विशिष्ट दृष्टिबिंदु को प्रगट करता है । विरोधी विषयों का समन्वय किस प्रकार करना वह इस सूत्र के अभ्यास से जाना जा सकता है ।

(५) भगवती सूत्र :- इगतालीस विभागों में २ हजार करीब(१९२५) उद्देशक तथा पंद्रह हजार सातसो बावन श्लोक प्रमाण, द्वादशांगी का वर्तमान में सबसे बडा, महा सागर समान गंभीर तथा गूढार्थ वाला यानी 'श्री भगवती सूत्र' है । श्री गौतमस्वामी तथा अन्य साधकों के द्वारा पूछे गये अनेक हजारों (परंपरासे ३६०००) प्रश्नों के सुंदर समाधान रूप इस आगम का एक भी भाव जो आचरण में उतर जाय तो मानव जीवन सार्थक बन जाय ।

साधु जीवन की चर्चा के साथ अणु-परमाणु का वर्णन वैज्ञानिक पद्धति से परम वैज्ञानिक प्रभु महावीर स्वामी ने किया है । किसी के शरीर में कोई देव प्रवेश कर सकता है और वे देव-देवी व्यक्ति को वश में कर सकते हैं ऐसा वर्णन है । हवामान तथा चौमासे के वर्तन की बात कही है । ६ महीने से ज्यादा बादल नहीं रह सकते । उत्कृष्ट ६ महीने में बिखर जाते हैं । घोडे के हृदय तथा कलेजे(लीवर) के बीच

करकर(कक्कड) नामक वायु उत्पन्न होता है । जब घोडा दौडता है, तब यह वायु बाहर निकलती है जिससे वह आवाज उत्पन्न होती है । इससे यह भी स्पष्ट होता है कि भगवान ने प्राणी जगत के शरीर की रचना का भी सूक्ष्मतम ज्ञान दिया था ।

तीर्थंकर भगवान ने साधुओं के लिये श्वेत वस्त्र परिधान करने का ही कथन किया है । गर्मी एवं धूप में रंगीन वस्त्रों से ज्यादा गर्मी लगती है । श्वेत वस्त्रों में कम लगती है ।

(६) ज्ञाता धर्मकथा सूत्र :- इस आगम में महापुरुषों के जीवन की सत्य घटनाओं का तथा उपदेशी कथाओं का विपुल संग्रह है । धर्म कथाओं का श्रवण बाल जीवों के लिये धर्मप्रीति उत्पन्न करने वाला होता है, धर्म मार्ग में स्थिर करने वाला होता है । कथाओं के माध्यम से धर्म तत्त्व के रहस्य सरलता से समझ में आ सकते हैं । पोजिटिव थिंकिंग किस तरह रखना तथा समुदायिक जीवन में समुदाय धर्म किस तरह निभाना इत्यादि बातें उस सूत्र में दर्शाई गई है ।

वास्तुशास्त्र, नगर रचना, जीवन व्यवस्था तथा जीवन शैली में से उत्पन्न होने वाले प्रश्नों का समाधान प्राप्त हो ऐसे अनुभव ज्ञान के इच्छुकों को इस सूत्र का अध्ययन उपयोगी सिद्ध होता है ।

(७) उपासक दशा सूत्र :- इस सूत्र में वीर प्रभू के शासन में हुए दश महाश्रावकों के देशविरति रूप उत्कृष्ट आचार का वर्णन हमें प्रेरणा अमृत का पान कराने वाला है ।

श्रावकों की जीवन शैली, व्यापार पद्धति, संग्रह पद्धति, क्षेत्र, साधन, और न्याय संपन्न वैभव तथा श्रावकों के आय-व्यय एवं सद्व्यवस्था का वर्णन इस सूत्र में है ।

भगवान महावीर के श्रावकों के पास गायों के विशाल गोकुल थे । "जिस घर में गाय है उस घर में आसुरी संपत्ति का प्रवेश नहीं होता है" यह बात इस सूत्र से फलित होती है । परिवार में पत्नि, माता और पुत्रों के स्थान का तथा पिछली उम्र-प्रौढ एवं वृद्धावस्था

(वानप्रस्थ आश्रम) के कर्तव्य का वर्णन भी इस सूत्र में है ।

भगवान महावीर स्वामी ने अपने श्रावक, जो संसार में रहकर आत्म साधना करते हैं वैसे श्रावकों के जीवन का वर्णन अपने श्रीमुख से करके श्रावकों को अपने हृदय में स्थान दिया है यह इस उपासक दशा सूत्र से स्पष्ट होता है ।

(८) अंतगड दशा सूत्र :- केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त कर उसी अंतमुहूर्त में संपूर्ण कर्म क्षयकर मोक्ष जाने वाले ९० महान पुण्यात्माओं का वर्णन इस शास्त्र में है । उन आराधक आत्माओं का जीवन श्रावकों को अपना दूसरा मनोरथ सफल करने अर्थात् दीक्षा लेने में प्रबल प्रेरणा दायक है ।

इस सूत्र में सहनशीलता से सफलता तक की यात्रा का वर्णन है । श्रावक सुदर्शन जब **णमो जिणाणं जीयभयाणं** का जाप एवं ध्यान करता है तब सैकडों किलो के वजन का शस्त्र उनके उपर फेंके जाने पर भी उनको वह शस्त्र नहीं लगता है । जप साधना से उसके आसपास सुरक्षा कवच की रचना हो जाती है । जिससे उसका बचाव होता है । इस घटना का वैज्ञानिक विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि अदृष्ट पदार्थ(शक्ति) दृष्यपदार्थ(स्थूल पदार्थ) को रोक सकता है । सुरक्षा का एक अदृश्य फोर्स अपनी आसपास उत्पन्न होता है । जो मेटल(धातु) को भी रोक सकता है । गोशालक के द्वारा भगवान उपर फेंकी गई तेजो लेश्या के समय भी ऐसा ही हुआ था ।

गजसुकुमार के मस्तक पर अंगारे धरे गये तब उसे दु:ख पीडा नहीं हुई । साधु लोच करते हैं तब शरू में पीडा होती है फिर अभ्यस्त हो जाने पर पीडा कम हो जाती है । इसका अर्थ यह हुआ कि अपने भीतर एनेस्थेसिया सक्रिय हो जाते है अर्थात् अपने अंदर पीड़ाशामक रसायण उत्पन्न होती है । जो नेचरल एनेस्थेसिया है तात्पर्य यह है कि अंदर में ऐसा कोई तत्त्व उत्पन्न होता है जो अपनी सहनशीलता को विकसित करता है । यह शोध का विषय है संशोधन का विषय है ।

(९) अनुत्तरोपपातिक सूत्र :- इस आगम के अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले महात्माओं का जीवन अपने आध्यात्म जीवन को एक नई दिशा देने वाला है । भगवान महावीर की उपदेश धारा से देह के प्रति ममत्व घटाने वाले अतिशय तपधारी साधक जैसे कि धन्ना अणगार वगैरह की साधना और उससे बनी शरीर की अस्थिपंजर दशा का वर्णन इस शास्त्र में है ।

इस सूत्र में से यह भी स्पष्ट होता है कि मनुष्य मात्र आहार से ही जी सकता है ऐसा नहीं है परंतु हवा, प्रकाश आदि से भी जी सकता है । सूर्य प्रकाश से भी जी सकता है ऐसे दृष्टांत है । प्रतिदिन एक चावल का दाना खाकर भी व्यक्ति दीर्घ समय तक जीवित रह सकता है । तात्पर्य यह है कि साधक मानव अनेक दिनों, महिनों तक अनाहार से एवं वर्षों तक अल्पाहार से जीवित रह सकता है ।

(१०) प्रश्नव्याकरण सूत्र :- मंत्र का उपयोग और लब्धि दशा का दर्शन कराने वाला यह शास्त्र है । इस सूत्र के पाँच महापापों का वर्णन पढ कर तो पाप से पीछे हटने की प्रबल प्रेरणा पापात्मा को भी मिलती है । सत्य अहिंसा आदि गुणों के द्वारा विधेयात्मक शक्ति की प्राप्ति किस तरह की जा सकती है उसका वर्णन इस शास्त्र में है । अनेक प्रकार की सिद्धियों, विद्याओं, लब्धियों तथा ऊर्जाओं की प्राप्ति भी इस सूत्र में दर्शाई गई थी ।

वस्तुत: प्राचीन काल में इस आगम में अनेक विद्याओं मंत्रों तथा यंत्रों की बातें थी । परंतु इन विद्याओं का कोई अपात्र अकल्याण हेतु उपयोग न करे, इस आशय से देवर्धिगणि आचार्य के आगम लेखन समय में उसका संकलन-लेखन नहीं किया गया । अनधिकारी शिष्यों को ऐसे ज्ञान का परिचय न मिले उसके लिये जैन शासन की यह विशेष पद्धति अभिवंदनीय है अर्थात् इत्यादि कारणों से पूर्वाचार्यों ने इस आगम के विषय को कुछ बदल दिया था लेखन में वैसे विषयों को नहीं रखा था ।

(११) विपाक सूत्र :- इस सूत्र में वर्णित अज्ञान दशा में बांधे गये कर्मों के भयंकर फल व्यक्ति को पाप कर्मों से दूर रहने की प्रबल प्रेरणा देने वाले हैं । दुष्कृत्य से दु:खविपाक होता है और सुकृत से सुख विपाक होता है यह जानकर अपनी वृत्तियें सुकृत तरफ प्रयाण करें, यह इस शास्त्र का उद्घोष है । जीवन शैली में पाप से बचना है, सत्कर्मों से जीवन को विभूषित करना है, ऐसा उद्देश्य रखने वाले साधकों के लिये इस विपाक सूत्र का अध्ययन विशेष उपकारक है ।

आगमों में ११ अंग आगम के वर्गीकरण के पश्चात् १२ उपांग सूत्रों का वर्गीकरण रखा गया है, उनका स्वरूप इस प्रकार है—

(१२) उववाई सूत्र :- इस सूत्र में भगवान के गुणवैभव एवं शरीर सौष्ठव का तथा गणधर आदि श्रमणों की संयम-तप साधना का दिग्दर्शन है । भगवान का नगर में आगमन होने पर वहाँ का राजा, आनंद उल्लास से तथा भक्तिभाव से देवाधिदेव तीर्थकर प्रभु के दर्शनार्थ जाता है । वह वर्णन पढने से संतो के पास जाने की, वंदन करने की वगैरह विधियों का बोध होता है ।

अपने कर्म ही अपनी सद्गति या दुर्गति के कारण है । कौन से कर्मों से जीव कौन-कौन से स्थानों में उत्पन्न होता है, उसका विविध वर्णन इस सूत्र में है । अपने कर्म ही अपनी गति के कारण होते हैं ऐसे दृष्टिकोण से भगवान महावीर ने "ईश्वर कर्ता हर्ता नहीं परंतु अपना आत्मा एवं आत्म जनित कर्म ही अपने भाग्य विधाता है ।" एवं आत्मा की विभावदशा रागद्वेषादि अध्यवषाय, कर्मों के जनक है । ऐसी विशिष्ट दृष्टि इस आगम में प्रगट करी है ।

(१३) श्री रायप्पसेणीय सूत्र :- गुरु के सानिध्य को प्राप्त करके प्रदेशी राजा के जीवन परिवर्तन को पढकर, पापी से पापी प्राणी भी आध्यात्म की ऊँची दशा तक पहुँच सकता है इस बात की आत्मा में प्रतीति एवं पुष्टी होती है ।

संत समागम व्यक्ति पर कितना उपकार करता है वह उसे

देवलोक के सुख प्राप्त करा सकता है यावत् परम पद मोक्ष को भी प्राप्त करा सकता है ऐसी प्रेरणादायी हकीकत का आलेखन इस सूत्र में हुआ है। अपनी राईट आइडेन्टी ही जानने के इच्छुक साधकों के लिये इस सूत्र का स्वाध्याय बहुत उपकारक होगा ।

(१४) श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र :- इस सूत्र को पढने से जीव अजीव के ज्ञान द्वारा अहिंसा और यतना धर्म का पालन किया जा सकता है । भगवान महावीर स्वामी तथा गणधर प्रभु ने जीवों की विविध प्रकार की वृत्तियों तथा अलग-अलग प्रकृति को जानकर, ध्यान में रखकर ज्ञान भावों का वर्णन इस सूत्र में किया है । यह शास्त्र जीव तथा समस्त क्षेत्र लोक का गहन अभ्यासकारक विशिष्ट ग्रंथ है । जिन साधकों को जीवन की और क्षेत्र लोक की विविध अवस्थाओं को समझने की जिज्ञासा हो उन्हें इस शास्त्र का अक्षरश: अध्ययन मनन करना चाहिये ।

(१५) प्रज्ञापना सूत्र :- इस सूत्र में जैन तत्त्वज्ञान की बहुविध समझ दी गई है । यह सूत्र शरीर विज्ञान, पदार्थ विज्ञान एवं चैतसिक शक्तियों का खजाना है । छ लेश्या तथा परमाणु की गति का वर्णन, योग वगैरह का आलेखन तथा ज्ञान के गहन भंडार समान यह सूत्र छोटा भगवती सूत्र जैसा लगता है।

(१६) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र :- इस सूत्र में प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती जैसे उत्तम पुरुषों के जीवन व्यवहार के परिचय से हमें आत्म उत्थान की उद्भुत प्रेरणा प्राप्त होती है ।

इस सूत्र में अपनी पृथ्वी और उस पृथ्वी में रहे अलग-अलग देश और उनकी भौगोलिक रचना वगैरह का वर्णन किया गया है । जिस क्षेत्र में हम निवास करते हैं इस विशाल भूमि को जंबूद्वीप कहा जाता है । इस सूत्र में मेरुपर्वत और उसके चार वनों का वर्णन मन को प्रफुलित करने वाला है । यों इस सूत्र में भूगोल, खगोल तथा भूत और भावी इतिहास का संयोजन है ।

इस आगम में ज्योतिष विषय का भी खजाना है । प्रत्येक ग्रह नक्षत्र, चंद्र, सूर्य आदि का वर्णन है । चन्द्र सूर्य आदि के अधिष्ठायक देव किस प्रकार की गति कराते हैं वह वर्णन इस सूत्र में हैं ।

(१७-१८) श्री चंद्र-सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र(ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति सूत्र) **:-** इस सूत्र में जैन खगोल के वर्णन को पढकर अर्थात् विशाल लोक तथा प्रकाश क्षेत्र का ज्ञान प्राप्त होने से अपनी लघुता अल्पज्ञता का जो बोध होता है उससे अपने समस्त ज्ञान का अहं नष्ट नेशनाभूत हो जाता है ।

(१९-२३) निरयावलिकादि पाँच सूत्र :- श्रेणिक राजा, कोणिक राजा, बहुपुत्रिका देवी, लक्ष्मी देवी, बलदेव के पुत्रों वगैरह ५२ आत्माओं के पूर्व पश्चात् भव के कथन द्वारा कर्म सिद्धांत तथा संसार के ऋणानुबंध प्रेमानुबंध संबंधों की विचित्रता का बोध इस शास्त्र से होता है ।

भगवान महावीर के जमाने में राजा कैसे होते थे, उनकी राजशैली कैसी होती थी, भरपूर भोग सामग्री के बीच रहते हुए भी वे भगवान के संपर्क में आकार संपूर्ण योगी पुरुष की दशा में कैसे बन जाते थे, वह वर्णन इस सूत्र में दिया गया है ।

अपनी इच्छाएँ अपने लिये ही कैसी भयंकर दुखदायी बन जाती है वह वर्णन बहुपुत्रिका के वर्णन द्वारा जानने को मिलता है । भगवान महावीर के ये पाँच आगम उत्तम तरीकों से अपनी अंतरंग मनोवृत्तियों का दर्शन कराने वाले है ।

जिसे मानसिक सायकोलोजी जानने में रस है उसके लिये इन पाँच आगमों में से अति उपयोगी दृष्टि बिंदु प्राप्त होते हैं । इनमें मन की स्थिरता तथा मन की चंचलता वगैरह अनेक अवस्थाओं का वर्णन हुआ है । कैसी मानसिकता में व्यक्ति दु:खी होता है, और किसमें सुखी होता है, उसका विशेष वर्णन इस सूत्र में है ।

जिसे मनोविज्ञान के विषय में गहरा अध्ययन करना हो उसके लिये ये आगम कथा रूप से एवं साहित्य रूप से मनोविज्ञानिक दृष्टि बिंदु को उजागर करते हैं ।

(२४) उत्तराध्ययन सूत्र :- अर्वाचीन परंपरा में यह सूत्र भगवान महावीर की अंतिम देशना के रूप में समस्त श्वे॰ जैन समाज में अत्यंत श्रद्धा भरा स्थान रखता है । ३६ अध्ययनों में जैन धर्म के मुख्यतम विषयों का प्राय: समावेश हो गया है । जिसका चिंतन तथा आचरण आत्मा को ऊर्ध्व गति प्राप्त कराने वाला है ।

इस शास्त्र के २९ वें अध्ययन में सम्यक् पराक्रम करने योग्य ७३ बोलों के द्वारा साधक दशा में उत्कृष्ट साधना किस प्रकार प्रकट करके मोक्ष मार्ग में आगे कदम बढाना, इसका निर्देश किया गया है । इसमें अनेक प्रकार के कथावर्णन के साथ, गैरसमझ के द्वारा साधक धर्म विमुख बनता हो तब भगवान के आदर्श साधकों का आचरण उसका मार्गदर्शक बन गैरसमझ को दूर कर धर्म में स्थिर करता है ऐसा विशेष वर्णन है ।

(२५) दशवैकालिक सूत्र :- आचार्य शय्यंभव द्वारा रचित यह सूत्र साध्वाचार का अनुपम खजाना है । जो प्रत्येक साधक को आवश्यक रूप से एवं सरलता से उपयोगी है अर्थात् साधना में पहुँचने वाला साधक आवश्यक रूप से इस आगम को कंठस्थ करने का सद्भाग्य प्राप्त करता है । यह सूत्र मुक्तिधाम की महायात्रा रूप है । साधु जीवन के समग्र व्यवहार को समझने का यह एक प्राथमिक सूत्र है । साधुजीवन के त्याग का महत्त्व, गुरू शिष्य का संबंध तथा विनय की बातें इस सूत्र में कही है । इस सूत्र की अंतिम दो चूलिका में संयम से डाँवाडोल मनवाले साधक को अपने संयम धर्म में स्थिर करने वाली हितशिक्षाएँ एवं मार्गदर्शन प्राप्त होते हैं ।

(२६) नंदी सूत्र :- पूज्य देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण ने इस आगम में पाँच ज्ञान का विस्तृत वर्णन किया है । अवधिज्ञान मन:पर्यवज्ञान

और केवलज्ञान ये तीन प्रत्यक्ष ज्ञान है । मतिज्ञान और श्रुतज्ञान ये दो परोक्षज्ञान है । इन पाँच ज्ञान के ग्रहण करने की विधि को प्रदर्शित करने वाला यह नंदी सूत्र, श्रुत साधकों के आत्मिक आनंद का कारण बनता है । इस सूत्र में संघ एवं संघ की व्यवस्था का भी वर्णन है । भगवान महावीर के शासन में होने वाले अनेक आगमधर, श्रुतधर आचार्य आदि महान आत्माओं की गुण गरिमा, स्तुति द्वारा करके उनके प्रति भक्ति प्रगट की है । बुद्धि और बुद्धि की क्षमता के प्रकारों का वर्णन इस शास्त्र में है। स्मरण शक्ति बढाने के उपायों की बात भी इस सूत्र में मिलती है ।

(२७) अनुयोगद्वार सूत्र :- आगमों की व्याख्याओं को समझने की **अद्भुत् कला** अनुयोग द्वार सूत्र से हमें प्राप्त होती है । इस पद्धति को समझ लेने से कठिन सूत्रों को सहज रूप में समझा जा सकता है ।

किसी भी शब्द के अनेक अर्थ हो सकते हैं । शब्दकोष बनाने की कला, एक शब्द के अनेक अर्थ किस तरह प्रगट करने, यह इस आगम में समझाया है । इस शास्त्र में एक ही आवश्यक सूत्र पर अनेक रहस्य भरे दृष्टिबिंदु समझाये हैं । मन की अपार शक्ति के उपयोग द्वारा व्यक्ति किस तरह विकास कर सकता है उसका विषद वर्णन इस सूत्र में है ।

(२८) निशीथ सूत्र :- इस सूत्र में पाप सेवन से हुए मुलगुण उत्तरगुण के भंग के प्रायश्चित्त का निर्देश कर आत्मा को पावन करने की प्रक्रिया बताई गई है । ये छेद सूत्र नियम और प्रतिज्ञाओं के माध्यम से आत्मगुणों की वृद्धि कराने वाले हैं । परिस्थितियों वश नियमों या प्रतिज्ञाओं का भंग होता है, तब उसका सही मार्गदर्शन उपाय दर्शाने वाला शास्त्र छेद सूत्र आगम कहा जाता है ।

साधु जीवन में कब कैसे दोष समान्य विशेष लग सकते हैं और उनका निवारण किस तरह शक्य है वह इस शास्त्र में दर्शाया है । इस सूत्र द्वारा भूलों का पश्चात्ताप, प्रायश्चित्त और विशुद्धिकरण के

उपाय सूचित किये गये है ।

(२९) दशाश्रुतस्कंध सूत्र :- महामोहनीय कर्म के स्थान और नव निदानों का निरूपण साधक को बडे दोषों से दूर रखता है । श्रमण जीवन की मर्यादाएँ तथा आचार शुद्धि के वर्णन होने से गुरुजनों की आज्ञा से इन छेद सूत्रों का अध्ययन किया जा सकता है । इस शास्त्र में आचार्य तथा शिष्य दोनों के कर्तव्य एवं आचारों के वर्णन के साथ साथ श्रावक तथा श्रमण दोनों की उच्च साधनारूप(११-१२) प्रतिमाओं का वर्णन है ।

महामोहनीय कर्म बंध के ३० बोलों में संघ भेद करना एक महा पापकर्म बंध कराने वाला बोल कहा गया है । ***आज के तुच्छ बुद्धि के साधक अपनी तुच्छ सी जिद की मनोदशा में व्यर्थ में ही संघ भेदकर समस्त साधकों में राग-द्वेष का जहर फैलाकर महापाप के भागी बनते किंचित भी संकोच नहीं करते हैं और अपने मान संज्ञा के दुराग्रह एवं जिद में संघ-भेद करके, उत्कृष्ट साधक दिखते हुए भी अपनी हीन मनोवृतियों से महामोहकर्म का बंध करके अपनी सुगति का नाश करते हैं ।***

वास्तव में महान दिखने वाले विख्यात बुद्धिमान एवं होशियार श्रमण, कषायों के वश हुए एक प्रकार के पामर प्राणी है और अपनी संकीर्ण मनोवृत्ति एवं स्वार्थ वृत्ति से अज्ञात दुर्गति के खजाने तैयार करते हुए अपने पापानुबंधी पुण्यों से खोटा यश कमाकर फूलते है । *कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।* ***पूर्व भव के यशनाम कर्म से इस भव में किये पाप अल्प समय दबे रह सकते हैं किंतु समय पर उन दुष्कृत्यों का फल अर्थात् संघ भेद के महापाप का फल अवश्यंभावी होना निश्चित है ।***

(३०) बृहत्कल्प सूत्र :- आचार मर्यादा एवं विधि निषेध रूप नियमों का कथन साधुजीवन की निर्मलता के लिये अत्यंत उपयोगी है । इसमें साधु जीवन की व्यवस्थाओं का वर्णन होने से उच्च कक्षा के अधिकारी साधकों के लिये अनेक प्रकार की मनोवैज्ञानिक

परिस्थिति में से किस प्रकार पार होना उसका मार्गदर्शन है ।

सर्पदंश जहर उतारने के लिये मंत्रोच्चार चिकित्सा की अनुमति सामान्य साधको के लिये दी गई है। विशिष्ट साधक पडिमाधारी जिनकल्पी आदि के लिये यह चिकित्सा निषिद्ध है । पानी में पाँव रखकर नावा में बैठकर विकट समय में नदी पार करने की विधि का निरूपण इस शास्त्र में है । इस प्रकार वर्तमान में जो परंपराएँ नहीं है परंतु भगवान के समय में जो परंपराएँ थी उनका वर्णन इस सूत्र में हैं ।

(३१) व्यवहार सूत्र :- आगम व्यवहार, श्रुतव्यवहार, आज्ञाव्यवहार, धारणा व्यवहार तथा जीतव्यवहार, ये पाँच व्यवहार संयमी जीवन को निर्मल बनाते हैं ।

दो साधु, दो आचार्य उपाध्याय आदि एक जगह एकत्रित होवे तो उनका क्या व्यवहार होता है वह इस सूत्र में दर्शाया है जिससे सामुदायिक सुमेलता का सर्जन होता है । यह सूत्र साधु-साध्वी अथवा चतुर्विध संघ की सुव्यवस्था संबंधी सूचनों का दिग्दर्शन कराने वाला है एवं संघ व्यवस्था का मुख्य शास्त्र है, ऐसा इसके अध्ययन से स्पष्ट होता है ।

(३२) आवश्यक सूत्र :- साधकों को अपनी साधना की विशुद्धि के लिये अवश्य करने योग्य अनुष्ठानों का निरूपण करने वाला यह शास्त्र है । व्यवहार में हम इसको प्रतिक्रमण सूत्र कहते हैं । आत्म विशुद्धि के लिये जो क्रिया अवश्य करने की होती है, उसे आवश्यक कहा गया है ।

आवश्यक सूत्र को ज्ञानियों ने जीवन शुद्धि संयम विशुद्धि की क्रिया कहकर उसे साधना का प्राण कहा है । समभाव की साधना वह **सामायिक** है । तीर्थंकरों की स्तुति रूप **चतुर्विंशति स्तव लोगस्स के पाठ से** श्रद्धा बलवान बनती है । **वंदना** द्वारा साधक का भक्ति भाव प्रगट होता है । **प्रतिक्रमण** पाप से पीछे हटने की प्रक्रिया है । अंतर्मुखी होकर आत्मभाव में स्थिर होने के लिये

कायोत्सर्ग की साधना है और भविष्य के कर्मों का निरोध करने के लिये **प्रत्याख्यान** जरूरी है । यों **छ आवश्यक** की आराधना साधक के आत्म विशुद्धि के लक्ष्य को सफल बनाने में सहायक है।

जो कर्म प्रतिदिन निधत्त रूप से बंधते है वे प्रतिक्रमण करने से निकाचित की कक्षा में जाने से रुक जाते हैं । जिन कर्मों को भोगे बिना क्षय किया जा सकता, वे निधत्त कहे जाते हैं । प्रतिदिन के पापों का प्रतिक्रमण करने में आवे तो पाप की कक्षा निद्धत बन जाती है । परंतु यदि प्रतिक्रमण करने में नहीं आवे तो वे कर्म निकाचित बन सकते हैं । साधक साधु अथवा श्रावक नित्य प्रतिक्रमण करे तो निरंतर परम पद की यात्रा में आगे बढते ही रहते हैं । उनकी गति रुकती नहीं है ।

उपसंहार :- (१) श्वेतांबर स्थानकवासी जैनों की मान्यतानुसार ११ अंग, १२ उपांग, ४ छेद, ४ मूल और आवश्यक सूत्र ये **३२ सूत्र** आत्मसुधार के लिये साधक के किस तरह उपयोगी होते हैं उसकी विचारणा यहाँ क्रमशः की गई है । (२) श्वे॰ मूर्तिपूजक आराधकों की मान्यतानुसार **४५ आगम** शास्त्र है एवं (३) नंदी सूत्र की आगम सूची अनुसार **७३ आगम** है तथा (४) विशाल दृष्टिकोण की अपेक्षा श्वेताम्बर मान्यता में ८४ आगम भी कोई समय कहे जाते रहे हैं । उन सबका संक्षिप्त परिचय या नामांकन आदि की विचारणा जानकारी भी साधक को ध्यान में ले लेनी चाहिये । क्यों कि वह हमारा जैन साहित्य रूप अक्षय ज्ञान कोष है । आगम नियमानुसार योग्य एवं जिज्ञासु कोई भी साधक इस साहित्य के अध्ययन का अधिकारी है ।

जिनशासन की समस्त व्यवस्था के मूलभूत ये आगम ग्रंथ ही है । इसी में से यत्किंचित् आचरण करने से परमपद के मार्ग की प्राप्ति सहज बनती है । क्षण-क्षण(प्रतिक्षण) जागृत रह कर आत्म-सुधार करने की शिक्षा इन आगमों में एवं विशेषकर उत्तराध्ययन सूत्र

में दी गई है । ***॥समयं गोयम मा पमायए ॥***

सोये हुए व्यक्तियों के बीच प्रज्ञासंपन्न पंडित साधक जागृत रहते है वे प्रमाद में विश्वाश नहीं करते, काल(मौत) अति निर्दय है, शरीर दुर्बल है, भारंडपक्षी की तरह सावधान होकर साधकों को विचरण करना चाहिये । **गाथा–**

सुत्तेसु यावि पडिबुद्धजीवी, नो वीससे पंडिए आसुपण्णे ।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंड पक्खी व चरेप्पमत्तो ॥उत्तरा.॥

विश्व के समस्त विषय कोई न कोई तरीके से आगम में समाहित किये गये हैं । व्यक्ति, कुटुम्ब या विश्व की अनेक समस्याओं का समाधान इन आगमों में से मिल सकता है । आगम में प्राप्त होने वाली सूक्तियाँ शुष्क या तर्कवादी ही नहीं है किंतु जिनका जीवन ही प्रयोगशाला बना था ऐसे परम वैज्ञानिक प्रभु महावीर की तप अनुभूति के ऐरण पर घडी हुई परम सत्य की सफल अभिव्यक्ति है ।

इस आगमवाणी के जनक तीर्थंकर गणधर मात्र विचारक या चिंतक ही नहीं थे परंतु स्वयं उत्कृष्ट साधक थे । तत्त्वों या व्रतों को मात्र चिंतन की भूमिका तक ही सीमित नहीं रखकर चारित्र आचार में परिवर्तन करके जीवन को जीते थे । उनकी ही वाणी और विचार, अनुभव शास्त्रभूत बन गये हैं । ये शास्त्र जीव को परम पद प्राप्त कराने में पूर्ण सक्षम है ।

सद्गुरु की आज्ञा लेकर इन शास्त्रों का अध्ययन किया जाय, ज्ञानी गुरु भगवंतो की सेवा में, समागम में इनका अर्थ रहस्यार्थ समझा जाय और उसे निज जीवन में आचरण रूप अवतरित किया जाय तो अवश्य अपने को भी मुक्ति मार्ग और अंत में मुक्ति की प्राप्ति होने वाली ही है इसमें किंचित् भी संदेह को स्थान नहीं है, ऐसा समझना चाहिये ।

इन जिनागमों में, सूत्र सिद्धांत में– विचार, वाणी और वर्तन का, वृत्ति–प्रवृत्ति का तथा निवृत्ति भावना और कर्तव्यों का अद्भुत समन्वय, सुमेल देखने को मिलता है । इस अवसर्पिणी काल में भी तीर्थंकर गणधर १४ पूर्वी आदि के अभाव में भी इस आगम वाणी के २१००० वर्ष चलने का पूरेपूरा विश्वास दर्शाने वाले हमारे ये आगम हमारी ज्ञान आत्मा की अमूल्य निधि के रूप में हमें बडे सद्भाग्य से मिले हैं।

पुष्करावर्त मेघ की वर्षा का असर अनेक वर्षों तक वर्षा न हो तो भी रहता है जिससे वृक्षों पर फल आते रहते हैं और फसलें पकती रहती है । किंतु भगवान महावीर की वाणी, उपदेश धारा रूप पावन मेघ का असर इस पाँचवें आरे के अंत तक अर्थात् २१००० वर्ष तक रहने वाला है । फल और फसल के समान साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका आराधक जीवन जीकर आत्म कल्याण साधन करते रहेंगे, ऐसे ये हमारे परम पावन आगम हमें बडे ही सौभाग्य से प्राप्त हुए हैं । इनके अध्ययन मनन में हमें परिपूर्ण योगों से तल्लीन बनकर आत्म कल्याण की साधना कर लेनी चाहिये ।

००००

नोंट : परिशिष्ट–५ एवं ७ दोनों निबंध 'प्रबुद्ध जैन' मासिक–२०१२ के पर्युषण विशेषांक से साभार उद्धृत एवं हिन्दी में अनुवादित ।